सचित्र

जैन गणितानुयोग

साध्वी डॉ. विजयश्री 'आर्या'

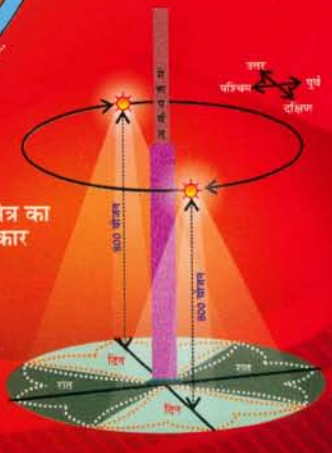

गणितानुयोग दर्शन

- अधोलोक
- मध्यलोक
- ऊर्ध्वलोक
- क्षेत्रमान
- कालमान
- विज्ञान

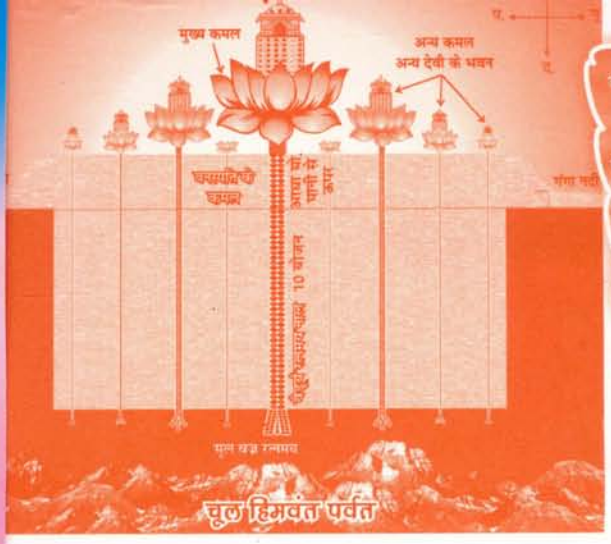

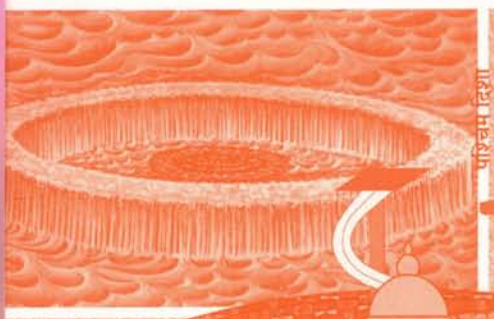

चूलिका
पंडक वन
←१००० योजन→
←३६००० योजन→
तीसरा कांड
अवसर्पिणी काल दस कोड़ाकोड़ी सागरोपम
६२५०० योजन
शनि
चंद्र
गुरु
भरणी
सूर्य
दूसरा कांड
←५०० योजन→
भूमि स्थान पर १०००
१००० योजन ऊँचाई
पहला कांड
अष्ट रूचक प्रदेश
4 कोड़ा कोड़ी सागरोपम सुषम - सुषम
पहला आरा
दूसरा आरा
तीसरा आरा
चौथा आरा
पांचवां आरा
छठवां आरा
पसलियां 256
कल्प वृक्ष
युगलिक
21000 वर्ष दुःषम-दुःषमा
10 क्रोड़ा-क्रोड़ी पल्योपम = एक सागरोपम
4½ योजन
1 गाउ
4 योजन
8 योजन

णमोऽत्थुणं समणस्स भगवओ महावीरस्स

जैन गणितानुयोग

एक बार अवश्य पढ़ें...

भरत ऐरावत महाविदेह आदि अनेक क्षेत्रों, जम्बूद्वीप लवण समुद्र आदि असंख्यात द्वीप-समुद्रों, ऊर्ध्व मध्य अधः तीनों लोकों का विस्तृत विवेचन, समय से लेकर पुद्गल परावर्तन तक अनन्त कालमान, प्रदेश से राजू तक का अति वैज्ञानिक क्षेत्रमान, अन्य जैन गणित सूत्रों व ज्यामितिक आकृतियों के साथ-साथ विज्ञान सम्मत विश्व का दिग्दर्शन कराने वाला **सचित्र संग्रहणीय, पठनीय, सारपूर्ण** एकमात्र उपयोगी ग्रंथ

सृजन : साध्वी डॉ. विजयश्री 'आर्या'

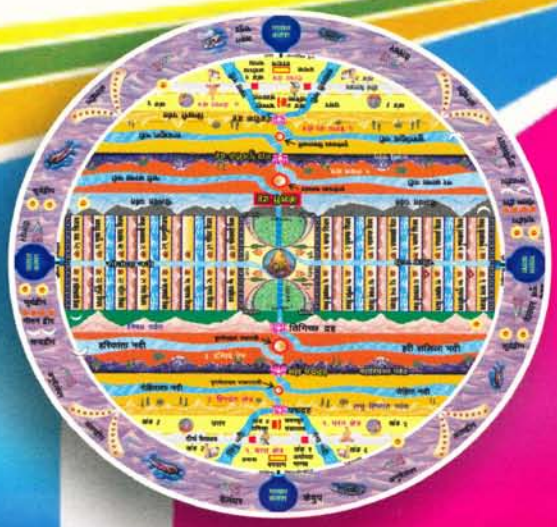

जय आत्म ! ॥ ॐ अर्हं ॥ जय आनंद !

प्रस्तुत ग्रंथ : **जैन गणितानुयोग**

दिव्यकृपा दृष्टि : आचार्य सम्राट् पूज्य श्री देवेन्द्र मुनि जी महाराज
पंजाब प्रवर्तनी महासती श्री केसरदेवी जी महाराज
अध्यात्मयोगिनी महाश्रमणी श्री कौशल्यादेवी जी महाराज

आशीर्वृष्टि : परम पूज्य ध्यानयोगी आचार्य सम्राट् श्री शिव मुनि जी महाराज
प्रज्ञा महर्षि पूज्य प्रवर्त्तक श्री सुमन मुनि जी महाराज
उपप्रवर्तनी महासाध्वी डॉ. श्री सरोजश्री जी महाराज
जैन सुधा महासाध्वी डॉ. श्री मंजुश्री जी महाराज

सृजन सृष्टि : साध्वी डॉ. विजयश्री 'आर्या'

प्रेरणापुष्टि : महासती श्री प्रियदर्शनाश्री जी 'प्रियदा'
महासती डॉ. श्री प्रतिभाश्री जी 'प्राची'
महासती श्री तरुलताश्री जी 'तरु'

प्रथम आवृत्ति : वीर संवत् 2540, विक्रम संवत् 2070, ईस्वी सन् 2014

मूल्य : पाँच सौ रुपये मात्र (Rs. 500/- only)

प्रकाशक : श्री दिवाकर प्रकाशन
ए-7, अवागढ हाउस, अंजना सिनेमा के सामने,
एम.जी. रोड, आगरा-282 002
फोन : 0562-2851165, मो. : 9319203291

प्राप्ति-स्थान : श्री सुमेरचंद जी जैन, 78, सूर्यनगर,
आगरा-282 002 (उ. प्र.) मो. : 9319103000

श्रीमती शकुंतला देवी शांतिलाल जी सांड
1730, आगरा रोड, पोस्ट बॉक्स नं. 34
धूलिया- (महाराष्ट्र) मो. : 09888537724

समर्पणम्

मेरे संयम पथ व पाथेय की प्रदायिका
मेरे ग्रंथ - प्रणयन की आत्मा
सभी श्रेष्ठता व मौलिकता की
आधारस्थली मेरी जीवन क्यारी
को सदा सींचने वाली पंजाब प्रवर्तनी महासती

श्री केसरदेवी जी म. सा. की शिष्यारत्ना
श्रमण संस्कृति की गौरव वाहिका, समत्व साधिका,
आत्म-आराधिका कल्याण की वर्षा करने वाली महामेघ धारा
अध्यात्मयोगिनी महाश्रमणी पूज्या गुरुवर्या
श्री कौशल्या देवी जी म. सा. की
१२वीं पुण्य स्मृति स्वरूपा
सचित्र जैन गणितानुयोग की
यह कृति सविनय-सभक्ति

सादर समर्पित

-साध्वी डॉ. विजयश्री 'आर्या'

जैन गणितानुयोग की दीपमालाएँ

श्रुत प्रेमी

श्रीमान् वीरेन्द्रकुमार जी धाकड़
इन्दौर (म. प्र.)

श्रीमान् एस. एल. बाफना
इन्दौर (म. प्र.)

श्रीमान् विद्यासागर जी जैन
इन्दौर (म. प्र.)

श्रीमान् अरुणकुमार जी जैन
वल्लभ विहार, दिल्ली

श्रीमान् सुदर्शनकुमार जी गांग
बडनेरा, अमरावती (महाराष्ट्र)

स्व. सौ. कौशल्यादेवी की स्मृति में
श्रीमान् मोहनलाल जी कंवरीलाल जी ओस्तवाल
बडनेरा, अमरावती (महाराष्ट्र)

श्रुत स्तम्भ

श्रीमती निर्मला प्रकाशचन्द जी
बाफना, बैंगलोर (कर्नाटक)

श्रीमान् प्रवीणकुमार जी जैन
बंधु त्रिपुटी, अगरबत्ती बाले, इन्दौर (म. प्र.)

श्रुत प्रेरक

श्रीमती प्रेमलता जी
अशोककुमार जी सुराणा, इन्दौर (म. प्र.)

श्रीमती प्रभा धाकड़, इन्दौर (म. प्र.)

श्रीमान् दिलीपकुमार जी धींग, इन्दौर (म. प्र.)

श्रीमान् वर्धमान जी मेहता
मेहता शुगर कं., उदयपुर (राजस्थान)

श्रीमान् प्रकाशकुमार जी सुआलालजी दक
बैंगलोर (कर्नाटक)

श्रीमान् कनकमल जी शाह
अध्यक्ष श्री वर्ध. स्था. जैन संघ, आकोला (महाराष्ट्र)

श्रीमान् महावीर प्रसाद जी जैन, पैंची (म. प्र.)

श्रीमान् इन्दरचंद जी जैन-(एडवोकेट)
अशोकनगर (म. प्र.)

श्रुताधार

श्रीमती कमलाबाई भंवरलालजी भंडारी
दोड्डबालापुर (कर्नाटक)

श्रीमान् महावीर प्रसाद जी जैन
झाँसी (उ. प्र.)

श्रीमती रतनदेवी जी आनन्दीलाल जी मेहता
उदयपुर (राजस्थान)

जैन कॉन्फ्रेंस के निवर्तमान अध्यक्ष
श्री केसरीमल जी
बुरड़, बैंगलोर (कर्नाटक)

जैन कॉन्फ्रोंस के राष्ट्रीय उपाध्यक्ष
श्री सुभाष जी ओसवाल
दिल्ली

श्रीमान् किशनलाल जी चम्पालाल जी, मकाणा,
दोड्डबालापुर (कर्नाटक)

जय सीमन्धर श्रमण संघ जयवंत हो जय महावीर

॥ जय आत्म ॥ ॥ जय आनन्द ॥ ॥ जय देवेन्द्र ॥ ॥ जय ज्ञान ॥ ॥ जय शिव ॥

मंगल संदेश

आचार्य शिवमुनि

जैनधर्म वीतराग धर्म है। वीतराग धर्म में प्रतिपादन का विषय है आत्मा। आत्मा और अनात्मा का ही संसार है। जीव कर्माधीन चार गति चौरासी लाख जीव योनि में अनादिकाल से भ्रमण कर रहा है। जैन आगमों में भूगोल, खगोल एवं अंतरिक्ष सम्बन्धी जितने भी पाठ मिलते हैं, प्राय: उनका संकलन गणितानुयोग में किया गया है। उपाध्याय श्री कन्हैयालाल जी महाराज ने गणितानुयोग पर अथक पुरुषार्थ कर शोध पूर्ण कार्य किया है, उसी आधार पर महासाध्वी श्री विजयश्री जी ने हिन्दी भाषा में सचित्र प्रकाशन करवाने का पुरुषार्थ किया है।

महासाध्वी डॉ. विजयश्री जी 'आर्या' आत्मार्थी साध्वीरत्ना है। आत्मा की साधना में भी आपका पुरुषार्थ है, साथ ही स्वाध्याय के क्षेत्र में आप चारों अनुयोगों पर जो पुरुषाथष कर रहे हैं, वह अनुमोदनीय है।

आपके द्धारा लिखित ग्रंथ जन-जन को स्वाध्याय की ओर आकर्षित करें। उनमें सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन, सत्य-दर्शन, आत्म-दर्शन को उपलब्ध होने की प्यास जगे। वे आत्मा से परमात्मा बनें।

सहमंगल मैत्री,

शिवमुनि

दिनांक : 12

सबका मंगल हो

आचार्य शिवमुनि

स्थान : शिवाचार्य समवसरण, रामा विहार, दिल्ली-81

महासती श्री विजय श्री जी आर्या

द्वारा लिखित, संकलित, संपादित पुस्तकें

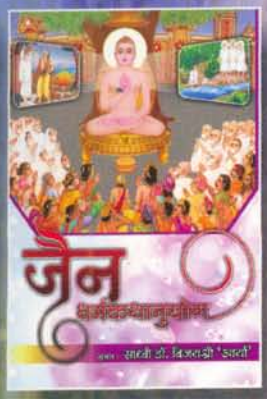
जैन

जैनधर्म की
श्रमणियों का
बृहद्
इतिहास

जैनधर्म की
श्रमणियों का
बृहद्
इतिहास

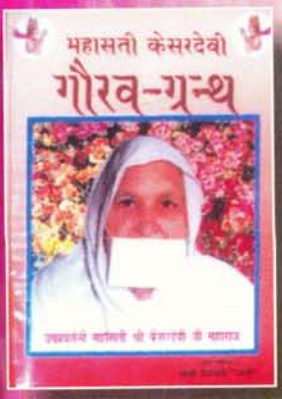
महासती केसरदेवी
गौरव-ग्रन्थ

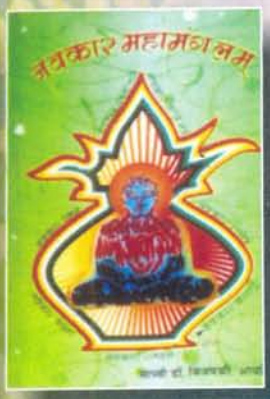
नवकार महामंत्र नम

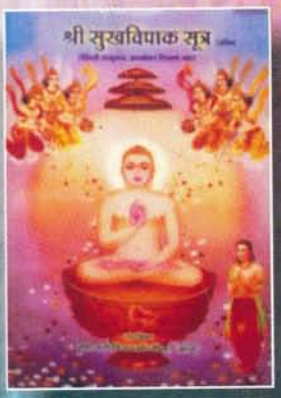
श्री सुखविपाक सूत्र

जैन श्रमणी परम्परा :
एक सर्वेक्षण

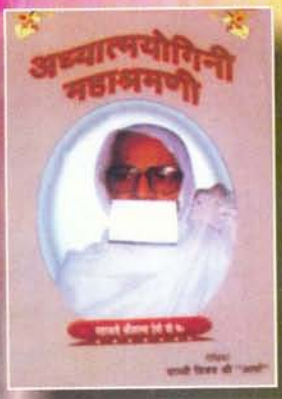
अध्यात्मयोगिनी महाश्रमणी

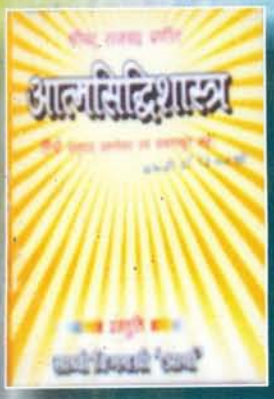
आत्मसिद्धिशास्त्र

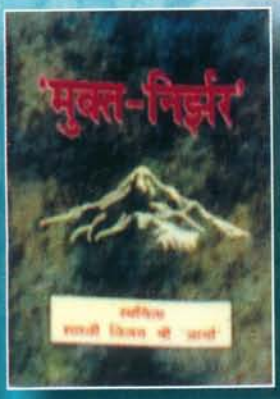
'मुक्त-निर्झर'

कौसल्या काल सुवन

प्रवचन सौरभ

मंगल
प्रभात

अन्तर की पुकार

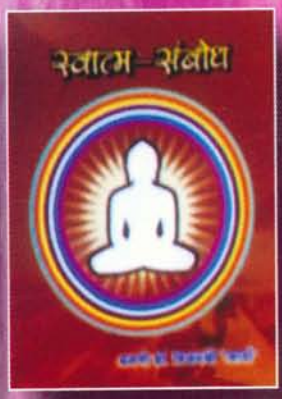
स्वात्म-संबोध

–साध्वी डॉ. विजयश्री 'आर्या'
जैन सिद्धान्ताचार्य

पुरोवाक्

यह विश्व क्या है? कितना बड़ा है? किस आकार व प्रकार का है? इसमें क्या-क्या रहा हुआ है? हम इन्द्रियों से जितना जानते हैं, क्या वही अंतिम सत्य है या अन्य पदार्थ भी विश्व में हैं? इस प्रकार के अनेक प्रश्न विश्व को लेकर मानव मस्तिष्क में उभरते रहे हैं।

प्राचीन वेदज्ञ ऋषि-महर्षियों ने विशालतमा इस पृथ्वी की सीमा जानने की उत्सुकता निम्न शब्दों में अभिव्यक्त की है–**'पृच्छामि त्वां परमन्तं पृथिव्याः।'**–(ऋग्वेद 1/164/34)

श्वेताश्वतर उपनिषद् के ऋषि ने भी यही प्रश्न उठाया है–**'कि कारणं ब्रह्म कुतः स्म जाताः, जीवाम केन क्व च संप्रतिष्ठाः।'** (श्वेता 1/1) अर्थात् हम कहाँ-कहाँ से पैदा हुए हैं और हम सबका अवस्थान किस पर आधारित है?

इससे यह स्पष्ट है कि भारतीय चिन्तक इस पृथ्वी और सृष्टि के विषय में सतत जिज्ञासु थे और उन्होंने अपनी तपोमय अध्यात्म साधना द्वारा जिस सत्य का साक्षात्कार किया, वह उन-उनके धर्मग्रथों में निबद्ध है।

जैन दर्शन में अंग प्रविष्ट और अंगबाह्य आगम साहित्य के इन दोनों विभागों में सृष्टि-विज्ञान सम्बन्धी प्रचुर सामग्री भरी पड़ी है। विशेष तौर पर जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्ति और सूर्यप्रज्ञप्ति तो सृष्टि-विज्ञान की सामग्री से परिपूर्ण आगम है। जिन्हें गणितानुयोग के अन्तर्गत स्थान दिया गया है।

जैनधर्म की आध्यात्मिक दृष्टि—जैनदर्शन आदिकाल से एक निवृत्तिप्रधान धर्म रहा है, अतः इसमें सृष्टि विषयक ज्ञान भौतिक विज्ञान की सीमित परीक्षण-पद्धति पर आधारित न होकर आध्यात्मिक दृष्टि से सर्वज्ञ भगवन्तों द्वारा उपदिष्ट हुआ है। उन्होंने केवलज्ञान की दूरबीन में जो कुछ जाना है देखा है, वही कहा है। उनका ज्ञान आत्मसाक्षात्कार से उद्भुत है। लोक का, सृष्टि का विवेचन जिस प्रकार उन्होंने किया वह काल्पनिक नहीं, वरन् ठोस सत्य है। सर्वज्ञ कथित आगम में संभावना (Theory) नहीं वरन् सत्य (Fact) है, वस्तुस्थिति है, वस्तुविज्ञान है। उन्होंने सृष्टि का वर्णन मात्र मानचित्रों का संग्रहालय या रंग रंखाओं और कोणों-भुजाओं का ज्यामितिक दृश्य दर्शाने के लिये नहीं किया है वरन् स्वगृह की स्थिति का बोध कराने के लिए कहा है अतः वह एक सत्य तथ्य है।

सृष्टि के पूर्ण व वास्तविक स्वरूप को जानकर जीव यह विचार करता है कि इस पुरुषाकार चौदह राजू लोक में मैं अज्ञानवश निरुद्देश्य घूम रहा हूँ। अज्ञान व मोह का नशा मुझे वहाँ नहीं पहुँचने दे रहा जो मेरा शाश्वत घर है। मैं जहाँ-जहाँ इस सृष्टि में भटका, जिसको पाने के लिए मैं हर स्थान पर अटका और आकुल-व्याकुल रहा, वह कितना तुच्छ, स्वल्प और अशाश्वत है। कोल्हू के बैल की तरह आँखों पर अज्ञान की पट्टी बाँधकर मेरी आत्मा ने कभी कहीं और कभी कहीं वास किया। जिस लोक को मैंने अपनी कर्मभूमि बनाया है, वह मात्र एक मंच है, जहाँ कुछ देर के लिये अभिनय करने आया हूँ।

कवि भूधरदास जी ने लोक भावना में इसी मर्म को उद्घाटित करते हुए कहा है–

चौदह राजु उत्तुंग नभ, लोकपुरुष संठाण।
तामे जीव अनादि ते, भरमत है बिन ज्ञान॥

अर्थात् अनन्तकाल से इसी लोक में परिभ्रमण करने के पश्चात् भी इस आत्मा को न अपने मंच का ज्ञान हो रहा है न उसके नैपथ्य का। सम्यक्दर्शन और सम्यक्ज्ञान के दर्पण में जब यह सत्य स्पष्ट होता है तो वह इस अंतहीन चक्रव्यूह से छूटने के उपायों को जानने के लिए उत्सुक होता है। भोगभूमियाँ, कर्मभूमियाँ, नरकावास, देवलोक तथा असंख्य द्वीप-समुद्रों का स्वरूप और परिचय प्राप्त कर पुण्य और पाप के सुफल-दुष्फल आदि से भी सहज परिचित हो जाता है तब वह असत् कर्म से निवृत्त होता हुआ सत्कर्म की ओर अग्रसर होता है और अंत में वह ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी जिसे सिद्धशिला कहा गया है उसकी छत्रछाया में पहुँचकर अमृतत्व को प्राप्त कर लेता है, जहाँ न जन्म है, न मरण, न रोग है, न शोक, न आधि है, न व्याधि, न कोई उपाधि।

संक्षेप में, सृष्टि के स्वरूपादि ज्ञान से मनुष्य को अपनी अनन्त यात्रा का अतीत, वर्तमान और भविष्य स्पष्ट हो जाता है। आचार्य विद्यानन्दि ने तत्त्वार्थ श्लोक वार्तिक में कहा है–"समस्त लोक का तथा पृथ्वी पर स्थित जम्बूद्वीपादि का निरूपण शास्त्रों में न हो तो जीव अपने स्वरूप से ही अपरिचित रह जाएगा। ऐसी स्थिति में आत्म तत्त्व के प्रति श्रद्धान ज्ञान आदि की संभावना भी समाप्त हो जाएगी।"

लोकस्वरूप से धर्मध्यान–जैन परम्परा में लोक स्वरूप का अध्ययन ध्यान के लिए भी महत्त्व रखता है। ध्यान, संवर, निर्जरा और मोक्ष का प्रमुख साधन है। जैसा कि 11वीं शताब्दी के महान जैनाचार्य कलिकालसर्वज्ञ श्री हेमचन्द्र सूरि ने अपने योगशास्त्र (11/1) में कहा है–"स्वर्गापवर्गहेतुर्धर्मध्यानमिति कीर्तितं यावत्" अर्थात् धर्मध्यान मोक्ष व स्वर्ग दोनों का साधक है। धर्मध्यान के चार भेदों में संस्थान विचय एक प्रमुख भेद है। लोक के स्वभाव, आकार तथा लोक स्थित विविध द्वीपों, क्षेत्रों, समुद्रों आदि के स्वरूप चिन्तन में मनोयोग केन्द्रित करना संस्थान विचय धर्मध्यान है। लोकस्वरूप पर विचार करने का विशेष फल है–(1) लेश्याविशुद्धि और (2) वैराग्यवृद्धि।

धर्मध्यान रूप संस्थान विचय में पिण्डस्थ धर्मध्यान की पाँच धारणाएँ कहीं हैं, उनमें पार्थिवी धारणा के अन्तर्गत साधक मध्यलोकवत् क्षीर समुद्र के मध्य जम्बूद्वीप को एक कमल के रूप में चिंतन करता है, इस कमल में मेरू पर्वत को दिव्य कर्णिका के रूप में ध्यान का विषय बनाया जाता है। इस प्रकार मोक्ष का साधनभूत ध्यान लोकस्वरूप व उसकी आकृति के ज्ञान से दृढ़ व पुष्ट बनता है। द्वादश भावनाओं में भी लोकस्वरूप भावना को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। वहाँ लोक के वास्तविक स्वरूप का बार-बार चिन्तन करने का निर्देश दिया है। जिसका फल उपयोग की स्थिरता और चित्त विशुद्धि बताया गया है। लोकस्वरूप पर बार-बार चिन्तन करने से आत्मद्रव्य पर अनुरक्ति और पर पदार्थ से विरक्ति दृढ़ होती है, साथ ही प्रमाद का भी परिहार होता है और सबसे बड़ी उपलब्धि अपने यथार्थ अस्तित्व का बोध होना है।

दिगम्बर ग्रन्थ जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति (13/157) में जम्बूद्वीप के ज्ञान, पठन व श्रवण से मोक्ष प्राप्ति होना कहा है। आचारांग सूत्र में स्पष्ट कहा है–

"जे लोयं वियाणेइ से अप्पं वियाणेइ, जे अप्पं वियाणेइ से लोयं वियाणेइ।"

अर्थात् जो लोक को जानता है वह आत्मा को जानता है और जो आत्मा को जानता है वह लोक को भी जानता है। लोक पुरुषाकृति में है, अतः लोकबोध का अर्थ आत्मबोध ही है। अर्थात् जो लोक है, वही पुरुष है, जो पुरुष है, वही लोक है। इसी को अंग्रेजी में किसी विचारक ने कहा है—

The whole universe is present with us.

अर्थात् समस्त लोक मनुष्य के भीतर है। पुरुष स्वयं में मिनी लोक है।

प्रस्तुत जैन गणितानुयोग ग्रन्थ

प्रस्तुत ग्रन्थ का नाम **"जैन गणितानुयोग"** है। हमारे पूर्वाचार्यों ने सम्पूर्ण आगम-साहित्य को विषय की समानता के आधार पर चार भागों में विभाजित किया है—

(1) **चरणानुयोग**—साधु व श्रावक की आचार-शैली।

(2) **धर्मकथानुयोग**—दृष्टान्त, कथाएँ।

(3) **द्रव्यानुयोग**—जीव-अजीव द्रव्य, नवतत्त्व आदि।

(4) **गणितानुयोग**—गणित के सूत्र, लोक स्वरूप आदि।

प्रस्तुत ग्रंथ गणितानुयोग से सम्बन्धित है। इसमें लोक का तीन भागों में वर्गीकरण करके ऊर्ध्व, मध्य और अधोलोक का वर्णन किया गया है। लोक की संरचना एवं संख्या, जम्बूद्वीप आदि असंख्यात द्वीप-समुद्र, मेरू पर्वत आदि पर्वतों, गंगा-सिंधु आदि महानदियों, चक्रवर्ती की षट्खण्ड विजय यात्रा का क्रम, इसके अतिरिक्त समय से लेकर संख्यात, असंख्यात अनन्त कालमान का स्वरूप व भेद, पल्योपम सागरोपम, उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी, पुद्गल परावर्तन आदि काल का यथोक्त विवेचन तथा क्षेत्रमान में प्रदेश से प्रारम्भ कर सूच्यंगुल, प्रतरांगुल, घनांगुल, जगत् श्रेणी, जगत्प्रतर आदि लोक के विविध मापदण्डों का भी विवेचन है। अंत में वर्तमान विज्ञान के अनुसार विश्व का संदर्शन कराया गया है। पूर्वोक्त वर्णन गणितानुयोग विषय के अन्तर्गत आता है। गणितानुयोग का समग्र स्पर्श करने वाला होने के कारण ग्रंथ का नाम **"जैन गणितानुयोग"** ही सार्थक प्रतीत हुआ।

दिगम्बर परम्परा में यह अनुयोग करणानुयोग के नाम से प्रचलित है। करणानुयोग में लोक वर्णन के अलावा जीवों के अनेक प्रकार के भाव, गुणस्थान, मार्गणा, जीव के भेद और कर्मों का विस्तृत वर्णन भी सम्मिलित है। श्वेताम्बर परम्परा में उक्त विषयों का समावेश द्रव्यानुयोग के अन्तर्गत किया गया है।

ग्रंथ की आधार सामग्री प्रमुखतया पूज्य युवाचार्य मधुकर मुनि जी महाराज एवं भावयोगिनी महासती लीलमबाई द्वारा सम्पादित आगम साहित्य स्थानांग, समवायांग, व्याख्याप्रज्ञप्ति, जीवाजीवाभिगम, जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति, अनुयोगद्वार आदि से संकलित की गई है। इसके अतिरिक्त दिगम्बर ग्रंथ तिलोयपण्णत्ति, त्रिलोकसार, सिद्धान्तसारदीपक तथा श्वेताम्बर ग्रंथ—लघुसंग्रहणी, लोकप्रकाश, बृहत्क्षेत्रसमासटीका एवं जैनतत्त्वप्रकाश, जिणधम्मो, जैनदृष्टिए मध्यलोक जैन भूगोल विशेषांक आदि ग्रंथों का भी विषय की साम्यता स्पष्टता व सरलता हेतु उपयोग किया है। यत्र-तत्र आगम या ग्रंथों में प्राप्त प्राचीन

चित्रों का अनुसरण कर विषय को सुबोध बनाने का प्रयत्न किया गया है, कहीं उनका नवीनीकरण एवं कहीं शास्त्रोक्त रीति से सुधार भी किया है। कुछ आकृतियाँ—रुचकद्वीप, अढ़ाई द्वीप के बाहर सूर्य-चन्द्र की संख्या, घनाकार लोक की आकृतियाँ आदि नई भी निर्मित की हैं।

आभार प्रदर्शन—लगभग चार वर्ष पूर्व हस्तिनापुर के शांत एकान्त वातावरण में अनुयोग प्रवर्तक पूज्य श्री कन्हैयालाल जी महाराज 'कमल' के अनुयोग ग्रंथों को देखकर सारपूर्ण, सरल, संक्षिप्त भाषा में लेखनी चलाने का विचार मन-मस्तिष्क में उभरा, तब 'जैन चरणानुयोग' एवं 'जैन धर्मकथानुयोग' नाम से दो पुस्तकें प्रकाश में आईं। उक्त दोनों पुस्तकों का विमोचन जैनधर्म एवं दर्शन के मर्मज्ञ विद्वान् माननीय **डॉ. सागरमल जी जैन** (निदेशक प्राच्य विद्यापीठ, शाजापुर) के कर-कमलों से सम्पन्न हुआ। उन्होंने उक्त ग्रंथद्वय की उपयोगिता की मुक्त कंठ से सराहना की और शेष दो अनुयोगों पर भी कार्य करने की प्रेरणा दी। उस समय गणितानुयोग जैसे क्लिष्ट विषय पर लिखना अत्यन्त कठिन कार्य प्रतीत हो रहा था। जैसा कि कवि कालिदास ने रघुवंश प्रारम्भ करने से पूर्व लिखा है—

क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्व चाल्पविषया मतिः।
तितीर्षुदुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम्॥

अपनी अल्प मति को देखते हुए मुझे यह प्रयास लघु नौका से समुद्र को पार करने जैसा प्रतीत हुआ। किन्तु मेरे एक मास शाजापुर प्रवास के समय माननीय डॉ. साहब ने जब तत्सम्बन्धित 15-20 ग्रंथ मुझे प्रदान किये तो दुष्कर लगने वाला कार्य भी सरलता से गतिशील होता गया। कल्याण मन्दिर स्तोत्र की वे दो पंक्तियाँ बरबस स्मरण हो आईं—

यद्वा दृतिस्तरति यज्जलमेष नून—
मन्तर्गतस्य मरुतः स किलानुभावः।

अर्थात् मशक को समुद्र में तिराने का श्रेय जैसे उसके अन्दर रही हुई हवा को जाता है, उसी प्रकार इस दुष्कर कार्य की सिद्धि का श्रेय भी उन ग्रंथकारों को जाता है, जो आकाशदीप की भाँति मेरा पथ प्रशस्त करते रहे।

इनके साथ ही मेरी बाल लेखनी को प्रौढ़ता प्रदान कराने वाले **परम श्रद्धेय आचार्यसम्राट् श्री देवेन्द्र मुनि जी म. सा.** तथा मेरी अनवरत अन्तःप्रेरिका **पूज्या गुरुवर्या श्री केसरदेवी जी म. सा.** एवं शांतमूर्ति **पूज्या श्री कौशल्यादेवी जी महाराज** के प्रति भी मैं सदैव श्रद्धानत हूँ, जिनके आशीर्वाद की छाया में विघ्न रूपी ताप का सहज शमन हो जाता है।

परम पूज्य आचार्यसम्राट् श्री शिवमुनि जी म. सा. की मैं सदैव ऋणि हूँ, जो विशाल धर्मशासन के अधिशास्ता होते हुए भी मेरी प्रत्येक कृति में अपना अनमोल मंगल संदेश भेजकर मुझे अनुगृहित एवं उत्साहित करते हैं मेरी सहवर्तिनी **साध्वी तरुलताश्री जी** भी सर्वात्मना समर्पित रहकर सहयोग प्रदान करती हैं, उन्हें मैं अन्तःकरण से आशीर्वाद देती हूँ।

ग्रंथ की साज-सज्जा, चित्रांकन, प्रकाशन आदि की दृष्टि से अथ से इति पर्यन्त सजाने-संवारने की कला में निपुण **भाई संजय सुराणा** का आभार मानना उनकी कला का अपमान करना है। मैं प्रमुदित मन से उनके उज्जवल भविष्य की कामना करती हूँ। ग्रंथ के प्रूफ संशोधन एवं शुद्धिकरण हेतु महावीर नगर इंदौर की सुज्ञा **युवती रत्ना मनीषा सुराणा** का आत्मीयता पूर्ण प्रतिभा सम्पन्न सहयोग हृदय की गहराईयों में अंकित हो गया है। वैसे ही ग्रंथ प्रकाशन में **गुरुभक्त श्री प्रवीण जैन बंधु त्रिपुटी** (अगरबत्ती परिवार, इन्दौर) का प्रमोदभाव, अनन्य गुरुभक्त **सुश्रावक प्रकाश बाफना-निर्मला बाफना** (बैंगलोर) का समर्पण भाव, **श्री महावीर प्रसाद जैन** (झांसी), **श्रीमान् चम्पालाल जी सा. मकाणा** एवं **श्रीयुत विकास भंडारी** (बैंगलोर) की आस्था, जैन कॉन्फ्रेंस के निवर्तमान अध्यक्ष **श्री केसरीमल जी बुरड़**, राष्ट्रीय उपाध्यक्ष **भाई श्री सुभाष जी ओसवाल** के साथ-साथ **मातेश्वरी श्रीमती रतनदेवी जी मेहता** एवं अन्य श्रुत प्रेमी, श्रुत अनुमोदक सभी दानदाताओं का श्रद्धापूर्ण अनुदान ग्रंथ रूपी माला में मौक्तिक के समान अनुस्यूत है, उन सभी के प्रति मैं मंगल कामना प्रेषित करती हूँ।

अत्यंत सावधानी रखने पर भी पाठ भेद, दृष्टिभेद, लिपिभेद प्रिंट की अशुद्धि आदि के कारण त्रुटियाँ सम्भावित है। अतः सुधी पाठक हमें सूचित करें, ताकि आगामी संस्करण में उनका सुधार हो सके। यह ग्रंथ मुमुक्षु पाठकों की तत्त्व जिज्ञासा को संतुष्ट करे, लोकभावना को पुष्ट करे, सर्वज्ञ के ज्ञान की अगाधता का बोध कराए, अरिहंत देव के प्रति दृढ़ आस्थावान बनाए, इसी मंगल मनीषा के साथ.....।

सर्व मंगल मांगल्यम्, सर्व कल्याणक कारणं।
प्रधानं सर्वधर्माणाम्, जैनं जयति शासनम्॥

जिनशासन सदैव जयवन्त हो! जयवन्त हो!!

गणितानुयोग का गर्भ

(अनुक्रमणिका)

क्रम	विषय	पृष्ठ संख्या
	अध्याय 1 : लोक वर्णन	
	• **लोक अधिकार**	
1.	लोक और अलोक	3
2.	अलोक में लोक की स्थिति	3
3.	लोक का संस्थान	4
4.	लोक का परिमाण	4
5.	लोक का घनफल	5
6.	लोक में त्रसनाड़ी	6
7.	वलयाकार लोक	6
8.	सम्पूर्ण लोक के मध्य स्थान	7
9.	दिशाओं का निर्णय	7
10.	दस दिशाओं के नाम	8
	अध्याय 2 : अधोलोक	
	• **नरक अधिकार**	
1.	सात नरक पृथ्वियाँ : नाम और स्वरूप	9
2.	नरकों में वलय की स्थिति	12
3.	नरकावासों के आकार व प्रकार	13
4.	नरकावासों की विशालता	15
5.	नरकावासों की भूमि	15
6.	नारकियों के उत्पत्ति स्थान	16
7.	नारकी जीवों की संख्या	16
8.	नारकी जीवों के लेश्या-परिणाम	16
9.	नरक के जीवों की वेदना	17
10.	सैंकड़ों वेदनाओं में साता के कुछ क्षण	17
11.	नरक में उत्पन्न जीव	18
12.	नारकियों की गति	19
	• **भवनपति देव**	
13.	भवनपति देवों के इन्द्र	20
14.	भवनपतियों के भवन	20
15.	परमाधर्मी देव	21
16.	परमाधर्मी देवों की जलचर मनुष्यों में उत्पत्ति	23
	अध्याय 3 : मध्यलोक	
	• **व्यन्तर और वाणव्यन्तर देव**	
2.	व्यन्तरों के आवास	24
3.	व्यन्तर देवों की ऋद्धि	25
4.	व्यन्तर देवों में उत्पत्ति के कारण	25
	• **मेरू पर्वत**	
5.	मेरु पर्वत के चार वन	26
6.	अभिषेक शिलाएँ	30
7.	तीर्थंकर जन्मोत्सव विधि	30
8.	मेरु पर्वत की चूलिका	31
9.	मेरु पर्वत के नाम	31
	• **जम्बूद्वीप**	
10.	जम्बूद्वीप नाम	33
11.	जम्बूद्वीप की जगती	33
12.	पद्मवरवेदिका	33
13.	वनखण्ड	34
14.	जम्बूद्वीप के चार द्वार	34
15.	जम्बूद्वीप में सात क्षेत्र	36
	• **भरत क्षेत्र**	
16.	दक्षिणार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध भरत	36
17.	वैताढ्य पर्वत	37
18.	तमिस्रा व खण्डप्रपात गुफा	37
19.	उमग्नजला व निमग्नजला महनदियाँ	38

क्रम	विषय	पृष्ठ संख्या
20.	विद्याधर श्रेणियाँ	39
21.	आभियोगिक श्रेणियाँ	39
22.	ऋषभकूट पर्वत	39
23.	चुल्लहिमवंत पर्वत और पद्मद्रह	40
24.	चुल्लहिमवंत के 11 कूट	41
●	**षट्खण्ड पृथ्वी पर चक्रवर्ती की विजय यात्रा**	
25.	चक्रवर्ती के 13 तेले	45
26.	चक्रवर्ती के 14 रत्न	46
27.	नौ निधियाँ	47
●	**कालचक्र**	
28.	कालचक्र की अवधि	49
29.	अवसर्पिणी (अपकर्ष) काल	49
30.	कल्पवृक्षों के नाम	51
31.	भोगभूमि में उत्पत्ति के कारण	51
32.	कुलकरों के उत्पत्ति	52
33.	तीर्थंकर जन्म व कर्मभूमि का प्रारम्भ	52
34.	चौबीस तीर्थंकरों के नाम	53
35.	तीर्थंकरों का अन्तरकाल	53
36.	चक्रवर्ती	53
37.	नौ बलदेव	54
38.	नौ वासुदेव	54
39.	नौ प्रतिवासुदेव	54
40.	दुषम काल के 30 लक्षण	54
41.	उत्सर्पिणी (उत्कर्ष काल)	57
●	**जम्बूद्वीप का हैमवत क्षेत्र**	
43.	शब्दापाती वृत्तवैताढ्य	60
44.	महाहिमवान वर्षधर पर्वत	60
45.	महापद्म द्रह और उससे निर्गत नदियाँ	61
●	**हरिवर्ष क्षेत्र**	
47.	विकटापाती वृत्त वैताढ्य	63
48.	निषध पर्वत	63
49.	तिगिंछ द्रह और उससे निर्गत नदियाँ	63
●	**महाविदेह क्षेत्र**	
50.	महाविदेह क्षेत्र का विस्तार	65
51.	महाविदेह के चार विभाग	65
52.	सोलह वक्षस्कार पर्वत	67
53.	बारह अन्तरनदियाँ	67
54.	महाविदेह की विजय	68
●	**देवकुरु-उत्तरकुरु क्षेत्र**	
55.	युगल पर्वत	72
56.	देवकुरु उत्तरकुरु के द्रह	72
57.	कंचनगिरी पर्वत	72
58.	चार गजदन्त (वक्षस्कार) पर्वत	73
59.	नीलवान वर्षधर पर्वत	74
60.	केसरी द्रह और उससे निर्गत नदियाँ	74
●	**रम्यक्वर्ष क्षेत्र**	
61.	रुक्मि वर्षधर पर्वत	75
62.	महापुण्डरीक द्रह और नरकान्ता व रुप्यकूला महानदियाँ	75
●	**हैरण्यवत क्षेत्र**	
63.	शिखरी वर्षधर पर्वत	76
64.	पुण्डरिक द्रह और सुवर्णकूला, रक्त व रक्तवती महानदियाँ	76
●	**ऐरवत क्षेत्र**	76
65.	छप्पन अन्तर्द्वीप	82
●	**लवण समुद्र**	84
66.	चार महापाताल कलश	86
67.	लघु पाताल कलश	86
68.	जल शिखा	86
69.	जलवृद्धि (भरती व ओट)	87
70.	जलवृद्धि का समय	87
71.	जलवृद्धि रोकने वाले वेलंधर देव	87

क्रम	विषय	पृष्ठ संख्या
72.	लवण समुद्र का अधिष्ठायक देव और उनका निवास	88
73.	दृश्यमान समुद्र एवं लवण समुद्र	88
•	**धातकीखण्ड द्वीप**	
75.	जम्बूद्वीप और धातकीखण्ड के मेरू पर्वत में अंतर	89
•	**कालोदधि समुद्र**	
•	**पुष्कर द्वीप**	
78.	मानुषोत्तर पर्वत	92
79.	आभ्यन्तर पुष्करार्द्ध द्वीप	92
•	**अढ़ाई द्वीप**	
81.	अढ़ाई द्वीप में तीर्थंकरों की संख्या	94
82.	अढ़ाई द्वीप के बाहर की स्थिति	95
•	**अढ़ाई द्वीप के बाहर द्वीप-समुद्र**	
84.	नन्दीश्वर द्वीप	97
85.	कुण्डल द्वीप	98
86.	रुचक द्वीप	98
87.	अरुणोदक समुद्र का विकार—तमस्काय	100
•	**ज्योतिषी देव**	
89.	समभूतला पृथ्वी से ज्योतिष चक्र का अंतर	103
90.	ज्योतिष्क के मंडल	104
91.	काल गणना का आधार सूर्य और चन्द्र	105
92.	तारा विमान व उसके देव	105
93.	तारा विमान का मेरु आदि से अंतर	106
94.	एक तारा विमान से दूसरे तारा विमान का अंतर	106
95.	तारा देवों की ऋद्धि	107
96.	ध्रुवतारा	107
97.	सूर्य ज्योतिष्क	108
98.	सूर्य मंडल	108
99.	सूर्य मंडल का क्षेत्र	108
100.	सूर्य के बाह्य-आभ्यन्तर मंडल एवं परिक्रमा परिमाण	108
101.	सूर्य के उदय-अस्त की व्यवस्था	110
102.	जम्बूद्वीप में दिन-रात्रि का विभाग	110
103.	रात्रि-दिवस की हानि-वृद्धि का प्रमाण	111
104.	दक्षिणायन-उत्तरायण	112
105.	छाया का प्रमाण	113
106.	पौरुषी का प्रमाण	113
107.	भारतीय ऐरवतीय सूर्य	114
108.	दोनों सूर्यों के स्वतन्त्र मार्ग	114
109.	सूर्य की मुहूर्त्त गति	114
110.	ताप-अंधकार क्षेत्र	115
111.	सूर्य प्रकाश का प्रमाण	116
112.	सूर्य मंडल का मेरु से अंतर	116
113.	सूर्य मंडलों के मध्य अंतर	117
114.	दो सूर्यों के मध्य अंतर	118
115.	उदय-अस्त के समय सूर्य का लाल वर्ण	119
116.	चन्द्र ज्योतिष्क देव	119
117.	चन्द्र मंडल एवं उनकी संख्या	120
118.	चन्द्र मंडल की लम्बाई-चौड़ाई व अंतर	120
119.	चन्द्र की मुहूर्त्त गति	120
120.	चन्द्र मंडल की हानि-वृद्धि एवं तिथियों की व्यवस्था	121
121.	चन्द्र मंडल और सूर्य मंडल में अंतर	123
122.	नक्षत्र ज्योतिष्क व उनके देव	123
123.	नक्षत्र मंडल की नियत व्यवस्था	123
124.	नक्षत्र मंडल और मेरु के मध्य अंतर	124
125.	नक्षत्रों का परिभ्रमण क्षेत्र	124
126.	कुल, उपकुल और कुलोपकुल नक्षत्र	124
127.	चन्द्र के मार्ग में नक्षत्रों का संचार	125
128.	मास नक्षत्र और उनकी अहोरात्रियाँ	126

क्रम	विषय	पृष्ठ संख्या
129.	ग्रह ज्योतिष्क और उनके देव	129
130.	वाहन जाति के ज्योतिष्क देव	130
131.	चर-अचर ज्योतिष्कि	130
132.	अढ़ाई द्वीप में कुल ज्योतिष्क संख्या	130
133.	द्वीप-समुद्रों में चन्द्र-सूर्य की संख्या निकालने की विधि	131
134.	सूर्य-चन्द्र की दो-दो पंक्तियाँ	131
135.	मनुष्य क्षेत्र के बाहर चन्द्र-सूर्य का अंतर	133
136.	ज्योतिष्क देवों की गति	135
137.	महर्द्धिक का क्रम	135
138.	सूर्य विषयक ज्ञातव्य 38 बिन्दु	135
139.	चन्द्र विषयक ज्ञातव्य 25 बिन्दु	137

अध्याय 4 : ऊर्ध्वलोक

- **बारह कल्पोपपन्न देवलोक**

1.	सौधर्म-ईशान आदि देवलोक	139
2.	आठ कृष्णराजियाँ	141
3.	नौ लोकान्तिक देव	142
4.	नवग्रैवेयक	145
5.	पाँच अनुत्तर विमान	145
6.	देवों के विमान : आकार व प्रकार	146
7.	विमानों का स्वरूप	146
8.	देवों का उपपात	147
9.	देवों का दिव्य स्वरूप	148
10.	देवों के प्रकार	149
11.	कल्पोपपन्न देवों के दस प्रकार	149
12.	देवियों की उत्पत्ति-स्थिति व प्रकार	152

- **सिद्धशिला**

13.	सिद्धक्षेत्र में सिद्धों की अवस्थिति	153
14.	मोक्ष के योग्य अधिकारी	155

क्रम	विषय	पृष्ठ संख्या

अध्याय 5 : क्षेत्र व काल मान

1.	प्रदेश से रज्जू तक का क्षेत्रमाप	156
2.	अंगुल के तीन भेद	157
3.	सूची, प्रतर और घन	158
4.	आठ प्रकार का क्षेत्रमाप	160
5.	ज्यामितिक आकृतियाँ	161
6.	काल-मान के दो प्रकार	162
7.	समय का स्वरूप	164
8.	संख्यात काल मान के भेद	164
9.	असंख्यात काल मान	165
10.	पल्योपम काल के भेद	165
11.	सागरोपम काल के भेद	166
12.	गणना संख्या के तीन प्रकार	167
13.	संख्यात का स्वरूप	167
14.	असंख्यात का निरूपण	169
15.	अनंत का निरूपण	169
16.	पुद्गल परावर्तन	170

अध्याय 6 : विज्ञानसम्मत विश्व

1.	पृथ्वी पर जीव सृष्टि	172
2.	जीव विकास का क्रम	172
3.	पृथ्वी के पाँच विभाग	173
4.	एशिया खण्ड में भारतवर्ष	174
5.	भारतवर्ष की मुख्य नदियाँ	174
6.	ज्योतिष मंडल व चन्द्रमा	176
7.	चन्द्र का क्षेत्रफल	176
8.	सूर्यमण्डल	177
9.	तारे तथा प्रकाशवर्ष	177
10.	नीहारिकाएँ	178
11.	आकाशगंगा	178
12.	ग्रहों की सूर्य से दूरी	178

चित्र सूची

क्रम	विषय	पृष्ठ संख्या
	अध्याय 1 : लोक वर्णन के चित्र	
1.	चौदह राजुलोक का समग्र दर्शन	2
2.	अनन्त अलोकाकाश के मध्य लोक	3
3.	पुरुषाकृति में लोक	4
4.	त्रिशराव सम्पुटाकृति में लोक	4
5.	लोक का घनाकार निकालने की आकृतियाँ	5
6.	समचतुरस्र घनाकार लोक	6
7.	वलय से आवेष्टित लोक	6
8.	वायु एवं जल पर स्थित पृथ्वी	7
9.	लोक का घनफल, राजू एवं तीनों लोकों के...	7
10.	रुचक प्रदेशों से निकलती दस दिशाएँ	8
	अध्याय 2 : अधोलोक के चित्र	
1.	अधोलोक	9
2.	रत्नप्रभा पृथ्वी के तीन काण्ड	10
3.	प्रथम नरकावास का एक प्रस्तर	10
4.	नरक पृथ्वियों का झालर जैसा आकार	13
5.	आवलिका प्रविष्ट नरकावास	13
6.	प्रस्तर में आवलिका प्रविष्ट और प्रकीर्णक	14
7.	सातवीं नरक के पाँच नरकावास	14
8.	रत्नप्रभा पृथ्वी के आंतरों में भवनपति व व्यन्तर देवों के आवास	20
9.	15 प्रकार के परमाधर्मी देव	22
	अध्याय 3 : मध्यलोक के चित्र	
1.	व्यंतर और वाणव्यन्तरों के स्थान	25
2.	मेरुपर्वत और चार वन	27
3.	भद्रशाल वन और उसके आठ विभाग	28
4.	नंदनवन	29
5.	पंडक वन पर अभिषेक शिलाएँ	30
6.	जम्बूद्वीप	32
7.	जम्बू वृक्ष	33
8.	जम्बूद्वीप की जगती	34
9.	जम्बूद्वीप के चार द्वार	35
10.	जम्बूद्वीप का द्वार प्रमाण	35
11.	जम्बूद्वीप का दक्षिणार्ध और उत्तरार्ध भरत क्षेत्र	37
12.	वैताढ्य पर्वत का परिमाण	37
13.	दीर्घ वैताढ्य पर्वत और नौ कूट	38
14.	गुफाएँ, नदियाँ और प्रकाश मंडल	39
15.	पद्मद्रह	40
16.	गुफा का द्वार खोलता सुषेण सेनापति	43
17.	चक्रवर्ती की षट्खण्ड विजययात्रा का क्रम	45
18.	चक्रवर्ती के चौदह रत्न	47
19.	चक्रवर्ती की नवनिधियाँ	48
20	कालचक्र	50
21.	गंगा-सिंधु के तट पर 72 बिल	56
22.	शब्दापाती वृत्त वैताढ्य पर्वत	61
23.	नदी की जिह्विका	62
24.	छह महाद्रह व उनसे निकलती 14 महानदियाँ	64
25.	पूर्व-पश्चिम महाविदेह तथा देवकुरु-उत्तरकुरु क्षेत्र	66
26.	महाविदेह क्षेत्र की एक विजय	68
27.	महाविदेह के चार मुखवन	71
28.	जम्बूद्वीप के 190 विभाग	77
29.	छप्पन अन्तर्द्वीप	82
30.	अन्तर्द्वीप का प्रमाण	83
31.	लवण समुद्र में गोतीर्थ और जल शिखा	84
32.	वेलंधर पर्वत	85
33.	लवण समुद्र	85
34.	महापाताल कलश	86
35.	लघुपाताल कलश	87
36.	लवण समुद्र में गोतीर्थ और जलवृद्धि जलशिखा और वेल	88
37.	धातकीखंड द्वीप	90
38.	कालोदधि समुद्र	91

क्रम	विषय	पृष्ठ संख्या
39.	अढ़ाई द्वीप	93
40.	नंदीश्वर द्वीप	98
41.	कुंडल द्वीप	99
42.	रुचक द्वीप	99
43.	असंख्य द्वीप-समुद्र	101
44.	तमस्काय का बाह्य दर्शन	102
45.	तमस्काय के अंदर का दृश्य	102
46.	मेरु पर्वत की प्रदक्षिणा करता ज्योतिष चक्र	104
47.	एक तारे से दूसरे तारे का अन्तर	106
48.	ध्रुव तारा	107
49.	सूर्य का सामान्य दर्शन	108
50.	सूर्य का वर्तुलाकार मंडल	108
51.	जीवा कोटी के ऊपर सूर्य मंडल	108
52.	सर्वाभ्यन्तरमंडल से सर्वबाह्यमंडल में जाते सू. के 183 मार्ग	109
53.	सर्वबाह्यमंडल से सर्वाभ्यन्तरमंडल में जाते सूर्य के 183 मार्ग	109
54.	सूर्य के उदय-अस्त की व्यवस्था	110
55.	उदयास्त समय का अन्तरमान	111
56.	जम्बूद्वीप में दिन-रात्रि का विभाग करते दो सूर्य	112
57.	रात्रि-दिवस की हानि-वृद्धि का प्रमाण	112
58.	भारतीय ऐरवतीय सूर्य	113
59.	दोनों सूर्यों का स्वतन्त्र मार्ग	113
60.	बाह्य आभ्यंतर मंडल में सूर्य की मुहूर्त्त गति	114
61.	ताप क्षेत्र का आकार	116
62.	कर्क व मकर संक्रांति में सूर्य	117
63.	सूर्य मंडल का मेरु पर्वत से अंतर	117
64.	सूर्य मण्डल के मध्य अंतर	118
65.	दोनों सूर्यों के मध्य अंतर अथवा मंडल की लम्बाई-चौड़ाई	118
66.	उदय-अस्त के समय सूर्य का लालवर्ण	119
67.	चन्द्र विमान	120
68.	पृथ्वी पर चन्द्रदर्शन एवं तिथियाँ	121
69.	नित्य राहु से होने वाली पाक्षिकी हानि-वृद्धि	122
70.	पर्व राहु से चन्द्रग्रहण	122
71.	चन्द्र के मार्ग में नक्षत्रों का संचार	126
72.	नक्षत्रों की आकृति व उनके तारे	128
73.	अढ़ाई द्वीप में सूर्य व चन्द्र की पंक्तियाँ	132
74	अढ़ाई द्वीप के बाहर सूर्य-चन्द्र	134

अध्याय 4 : ऊर्ध्वलोक के चित्र

1.	ऊर्ध्वलोक	140
2.	कृष्णराजियाँ और लोकान्तिक विमान	142
3.	वैमानिक देवों के आवलिकाबद्ध और पुष्पावकीर्ण विमान	147
4.	वैमानिक के प्रतरों का दूरवर्ती दर्शन	148
5.	सिद्धशिला और सिद्धात्माएँ	154

अध्याय 5 : क्षेत्र व कालमान के चित्र

1.	क्षेत्रमाप : अंगुल से धनुष तक	157
2.	भरत क्षेत्र में बाहा आदि आकृति	161
3.	आठ प्रकार के चतुर्भुज	162
4.	त्रिभुज आदि की आकृतियाँ	162
5.	घन की विविध आकृतियाँ	163
6.	अन्य क्षेत्र की आकृतियाँ	163
7.	त्रिज्या, व्यास, क्षेत्रफल	163
8.	पल्योपम काल माप का घनवृत्तपल्य	165
9.	जघन्य परित्त असंख्यात का कल्पित माप	168

अध्याय 6 : विज्ञानसम्मत विश्व के चित्र

1.	वर्तमान पृथ्वी के पाँच विभाग	173
2.	भारतवर्ष की मुख्य नदियाँ	175
3.	विज्ञानसम्मत सौरमंडल	176
4.	ईगल नेबुला	179
5.	स्वान नेबुला	179
6.	आकाशगंगा	180

सचित्र

जैन गणितानुयोग

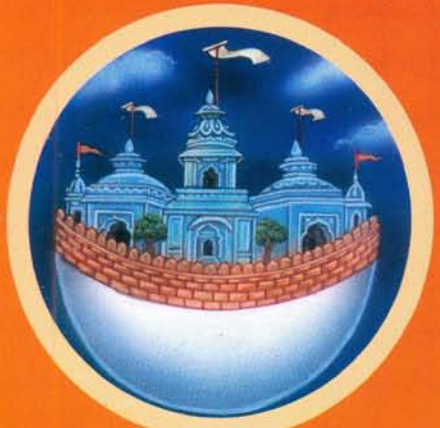

लेखक : साध्वी डॉ. विजयश्री 'आर्या'

चौदह राजुलोक

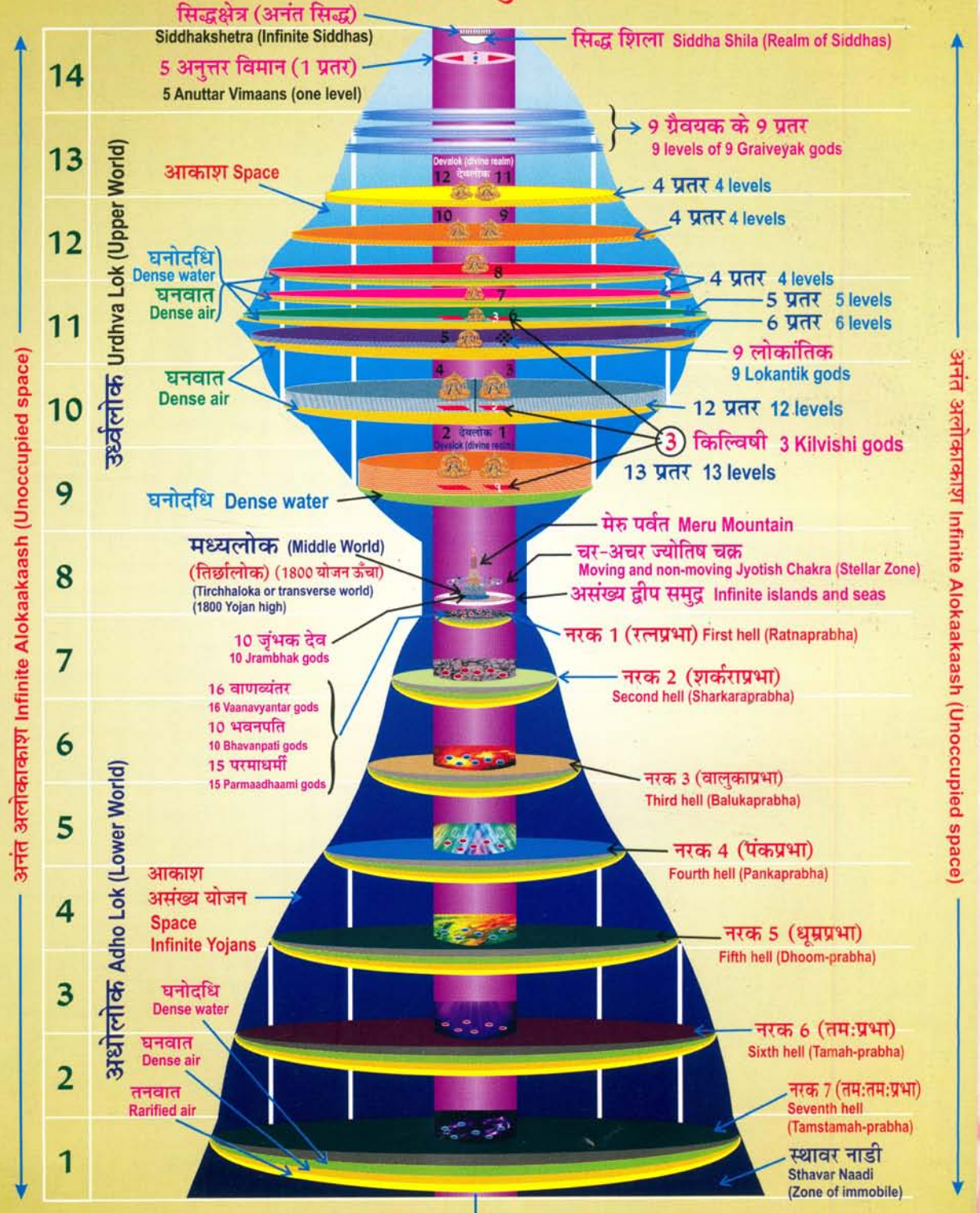

चित्र क्र. 1

अध्याय 1 : लोक वर्णन

नमिऊण असुर-सुर-गरूल-भुयंग-परिवंदिए।
गय किलेसे अरिहे सिद्धायरिए उवज्झाए सव्वसाहूणं॥

(चंद्रप्रज्ञप्तिसूत्र, गाथा-2)

असुर-सुर-गरूड़ और नागकुमारों से वंदित, क्लेश रहित अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, और सर्व साधुओं को नमस्कार करके गणितानुयोग प्रारम्भ किया जा रहा है।

जैन गणितानुयोग चारों गतियों का दर्पण सदृश है। इसमें लोक, अलोक, देवलोक, सूर्य, चन्द्र आदि ग्रह-नक्षत्र, भरत, ऐरावत, महाविदेह आदि कर्मभूमि तथा देवकुरू, उत्तरकुरू आदि अकर्मभूमि क्षेत्र, जम्बूद्वीप आदि द्वीप, लवण समुद्र आदि समुद्र, वैताढ्य व सुदर्शन मेरू आदि पर्वत, मनुष्यलोक, उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी काल, समय, पल्योपम, सागरोपम आदि काल, सात नरक, भवनपति-वाणव्यंतर देव आदि गणितीय विषयों का समावेश है । एक प्रकार से यह अनुयोग जैन भूगोल-खगोल के सम्यक् ज्ञान का सागर है।

लोक अधिकार

लोक और अलोक—लोक शब्द 'लुक्' धातु से निष्पन्न है, जिसका अर्थ है—देखना। **'लोक्यते-अवलोक्यते इति लोकः'** अर्थात् जो-जो स्थान और उसमें रहे हुए जो-जो द्रव्य सर्वज्ञ-सर्वदर्शी भगवान के द्वारा अवलोकित है, वह स्थान लोक है। उत्तराध्ययन सूत्र (28/7) में लोक को इस प्रकार परिभाषित किया है—

धम्मो अहम्मो आगासं कालो पुग्गल जंतवो।
एस लोगोत्ति पन्नत्तो, जिणेहिं वरदंसिहिं॥

अर्थात् आकाश के जितने भाग में धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, काल, जीव और पुद्गल विद्यमान है, वह 'लोक' है। इसके विपरीत जहाँ उक्त पाँच द्रव्य नहीं है, शुद्ध आकाश ही आकाश है, वह **'अलोक'** है। आकाश लोक-अलोक दोनों में ही है, अतः आकाश का ही एक भाग **'लोकाकाश'** व दूसरा भाग **'अलोकाकाश'** कहा जाता है। **(चित्र क्रमांक 1 : सामने के पृष्ठ पर देखें।)**

अलोक में लोक की स्थिति—अलोक पोले गोले के आकार का अनन्तानन्त, अखण्ड, अमूर्तिक और चारों ओर केवल आकाशमय (पोलार) है। इस अनन्तानन्त अलोकाकाश के बहुमध्य भाग में लोक उसी प्रकार स्थित है जैसे विशाल स्थान के मध्य में एक छींका लटका हो। **(चित्र क्रमांक 2)**

अनन्त अलोकाकाश के मध्य लोक

चित्र क्र. 2

लोक का संस्थान—अनन्त असीम आकाश के बहुमध्य भाग में स्थित सान्त और ससीम इस लोक का वही आकार बनता है, जो धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय का आकार है। दूसरे शब्दों में, जिस आकार से धर्म और अधर्म द्रव्य लोकाकाश में स्थित है, उसी आकार से लोक स्थित है।

त्रिशराव सम्पुटाकृति में लोक

चित्र क्र. 3

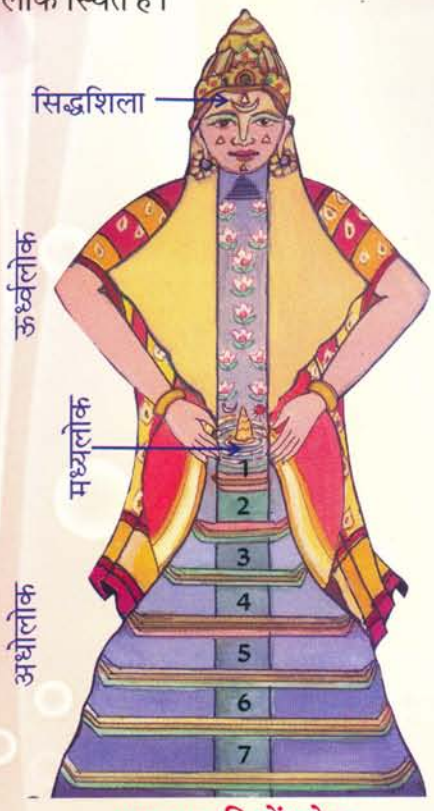

पुरूषाकृति में लोक

चित्र क्र. 4

भगवती सूत्र (11/10) में लोक को **'सुप्रतिष्ठक आकार'** का कहा गया है। सुप्रतिष्ठक आकार का अर्थ है— **त्रिशरावसम्पुटाकार**। एक शिकोरा (शराव) उल्टा, उस पर एक शिकोरा सीधा, फिर उस पर एक उल्टा रखने से जो आकार बनता है, उसे **त्रिशरावसम्पुटाकार** कहते हैं। इस प्रकार से बने आकार में नीचे चौड़ाई अधिक और मध्य में कम होती है। पुनः ऊपर चौड़ाई अधिक होती है और अन्त में पुनः कम हो जाती है। अन्यत्र समग्र लोक का आकार पुरूष-संस्थान भी बतलाया गया है। दोनों हाथ कमर पर रखकर जैसे कोई पुरूष वैशाख संस्थान की तरह पैर चौड़े रखकर खड़ा हो, वैसा ही आकार लोक का है। **(चित्र क्रमांक 3, 4)**

लोक का परिमाण—लोक के तीन परिमाण हैं—ऊँचाई, मोटाई और चौड़ाई। इसमें सम्पूर्ण लोक की ऊँचाई 14 राजू प्रमाण है। राजू का परिमाण निम्न प्रकार से कल्पित किया गया है—3,81,12,970 मन वजन वाला एक भार; ऐसा 1000 भार का गोला कोई ऊपर से नीचे फैंके, वह गोला 6 मास, 6 दिन, 6 पहर, तथा 6 घड़ी में जितने स्थान को लाँघ जाए उतने विशाल क्षेत्र को एक राजू कहते हैं अथवा निमेष मात्र (एक पलक झपकने) में एक लाख योजन पार कर जाने वाला देव छह मास तक उसी गति से चलता रहे तो वह एक राजू पार करता है, इस प्रकार से भी राजू का प्रमाण कल्पित किया गया है, ऐसे 14 राजू प्रमाण ऊँचा यह लोक है।

लोक की मोटाई सर्वत्र 7 राजू है। परन्तु चौड़ाई विभिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न है। यह लोक नीचे सात राजू चौड़ा है। फिर ऊपर अनुक्रम से चौड़ाई में एक-एक प्रदेश कम होता-होता सात राजू की ऊँचाई पर मध्यलोक में एक राजू चौड़ा रह गया है। पुनः मध्यलोक से एक-एक प्रदेश बढ़ते-बढ़ते ऊपर साढे तीन राजू की ऊँचाई पर पाँच राजू चौड़ा है, फिर आगे क्रम से घटता-घटता अंतिम लोक के अग्रभाग पर एक राजू चौड़ा है।

लोक का घनफल—लोक को घनाकार समचतुरस्त्र करने के लिए अधोलोक जो कि नीचे 7 राजू चौड़ा, ऊपर एक राजू चौड़ा तथा 7 राजू ऊँचा व सर्वत्र 7 राजू मोटा है। उसे यदि कल्पना से दो समभागों में बाँटा जाय तो नीचे की ओर 3½ राजू व ऊपर की ओर ½ राजू चौड़े तथा 7 राजू ऊँचे दो खंड प्राप्त होते हैं। इनमें पूर्ववर्ती भाग को यथावत् रखते हुए पश्चिम वाले भाग को उल्टा करके इसके साथ जोड़ दिया तो 7 राजू मोटा, 7 राजू ऊँचा व 4 राजू चौड़ा एक खंड बन जाता है। **(चित्र क्रमांक 5)**

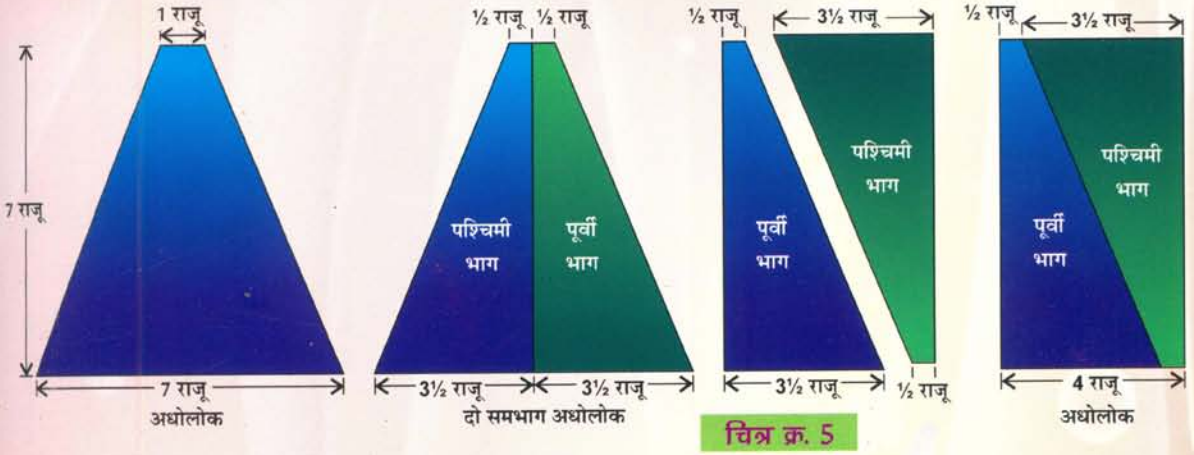

चित्र क्र. 5

इसी प्रकार ऊर्ध्वलोक जो कि 7 राजू ऊँचा, मध्य में 5 राजू चौड़ा तथा ऊपर व नीचे 1-1 राजू चौड़ा है उसके 3½ राजू ऊँचे दो भाग करें। अब ऊपर वाले भाग को पूर्व से पश्चिम दो बराबर भाग करने पर नीचे 2½ राजू व ऊपर ½ राजू चौड़े तथा 3½ राजू ऊँचे दो खंड प्राप्त होते हैं। इसमें पूर्व दिशावर्ती भाग को यथावत् रखते हुए पश्चिम वाला भाग उल्टा करके उसके साथ जोड़ने पर 3½ राजू ऊँचा, 3 राजू चौड़ा एवं 7 राजू मोटा खंड बनता है। इसी प्रकार की क्रिया नीचे वाले भाग के साथ दोहराने से उक्त माप का ही दूसरा खंड बनता है। दोनो खंडों को ऊपर-नीचे साथ में रखने पर 7 राजू की मोटाई वाला, 7 राजू ऊँचा व 3 राजू चौड़ा खंड प्राप्त होता है। **(चित्र क्रमांक 6)**

चित्र क्र. 6

ऊर्ध्वलोक व अधोलोक के इस प्रकार प्राप्त खंडों को ऊँचाई के समानान्तर साथ में जोड़ कर रखने पर 7 राजू ऊँचा, 7 राजू चौड़ा और 7 राजू मोटा एक खंड प्राप्त होता है। यह समचतुरस्त्र घनाकार लोक है, जिसका घनफल लंबाई × चौड़ाई × ऊँचाई (7 × 7 × 7) करने पर 343 राजू होता है। **(चित्र क्रमांक 7)**

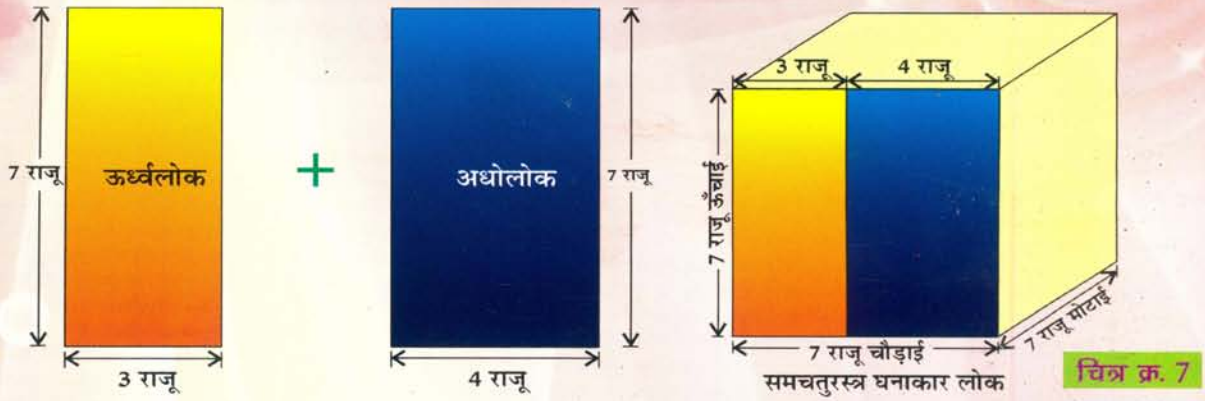

चित्र क्र. 7

लोक में त्रसनाड़ी—तीनों लोकों के बीचोंबीच में 1 राजू चौड़ी, 1 राजू मोटी तथा ऊपर से नीचे तक 14 राजू लम्बी त्रसनाड़ी है। त्रसनाड़ी के अंदर ही सभी त्रसजीव—नारकी, देव, मनुष्य तथा बेइन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक तिर्यंच जीव पाये जाते हैं। एकेन्द्रिय जीव त्रसनाड़ी के अंदर और बाहर दोनों स्थानों पर हैं। त्रसजीव भी स्वल्प समय के लिये त्रसनाड़ी के बाहर तीन कारणों से पाये जाते हैं, जैसे—1. किसी त्रसजीव ने त्रसनाड़ी के बाहर स्थावर जीव के रूप में उत्पन्न होने की आयु बाँधी हो, तो वह मारणान्तिक समुद्घात करके अपने आत्म प्रदेशों को त्रसनाड़ी के बाहर फैलाता है। 2. त्रसजीव आयु पूर्ण करके, विग्रहगति से जब त्रसनाड़ी के बाहर आता है। 3. केवलि समुद्घात करते समय जब केवली के आत्म-प्रदेश चौथे-पाँचवें समय में सम्पूर्ण लोक में फैलते हैं।

वलयाकार लोक—जैसे सर्प सब ओर से कांचली से वेष्टित होता है और वृक्ष त्वचा से, उसी प्रकार इस लोकाकाश को चारों तरफ से वेष्टित करके तीन वलय है। ये तीनों वलय अप्काय तथा वायुकायिक जीवों के शरीर स्वरूप स्थिर स्वभाव वाले हैं। घनोदधिवलय गोमूत्र के रंग का है, घनवातवलय काले रंग की मूंग के समान एवं तनुवातवलय अनेक रंगों वाला है।

सर्वप्रथम लोक को चारों ओर वेष्टित करके घनोदधि (जमा हुआ पानी) है, इसको वेष्टित करके घनवात (पिण्डिभूतवायु) है और इसको वेष्टित करके तनुवात (पतली/हल्की वायु) है। तनुवात के चारो ओर अनन्त अलोकाकाश है। लोक के नीचे घनोदधि की मोटाई 20 हजार योजन है, ऊपर क्रमशः कम होते-होते मध्यलोक के पार्श्व में इनकी मोटाई क्रमशः 5, 4, 3 हजार योजन है और ऊर्ध्वलोक के ऊपर इनकी मोटाई क्रमशः 2 कोस, 1 कोस और 1575 धनुष है।[1] **(चित्र क्रमांक 8)**

चित्र क्र. 8 : वलय से आवेष्टित लोक

1. लोक के चारों ओर वलय की मान्यता दिगंबर एवं कुछ श्वेताम्बर आचार्यों की भी है। (देखें—जैन तत्त्व प्रकाश पृ. 45)

वायु के आधार पर उदधि और उदधि के आधार पर पृथ्वी कैसे ठहर सकती है? इस प्रश्न का स्पष्टीकरण करते हुए कहा गया है—कोई पुरूष वैज्ञानिक ढंग की बनी थैली को हवा भर कर फुला दे। फिर उसके मुँह को फीते से मजबूत गाँठ देकर बाँध दे तथा इस थैली के बीच के भाग को भी बाँध दे। ऐसा करने से थैली में भरे हुए पवन के दो भाग हो जाएँगे, जिससे थैली डुगडुगी जैसी लगेगी। तब थैली का मुँह खोलकर ऊपर के भाग में से हवा निकाल दे और उसकी जगह पानी भरकर फिर थैली का मुँह बंद कर दे और बीच का बन्धन खोल दे। ऐसा करने पर जो पानी थैली के ऊपरी भाग में भरा गया है, वह ऊपर के भाग में ही रहेगा नीचे नहीं जाएगा, क्योंकि ऊपर के भाग में जो पानी है, उसका आधार थैली के नीचे के भाग की वायु है। जैसे थैली में हवा के आधार पर पानी ऊपर रहता है, वैसे ही वायु के आधार पर उदधि और उदधि के आधार पर पृथ्वी प्रतिष्ठित है। **(चित्र क्रमांक 9)**

वायु एवं जल पर स्थित पृथ्वी

चित्र क्र. 9

सम्पूर्ण लोक के मध्य स्थान—चौदह राजू परिमाण यह लोक सर्वत्र सम नहीं है। कहीं चौड़ा है तो कहीं संकड़ा है। प्रदेशों की हानि-वृद्धि के कारण यह विषम भाग वाला है। किन्तु रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊपरी भाग में दो क्षुल्लक प्रतर हैं। वे दोनों सम और सबसे छोटे हैं। इन दोनों प्रतरों में प्रदेशों की हानि-वृद्धि नहीं होती। ऊपर के क्षुल्लक प्रतर से ऊपर की ओर तथा नीचे के क्षुल्लक प्रतर से नीचे की ओर लोक की वृद्धि होती है। इन दोनों प्रतरों की लम्बाई-चौड़ाई समान एक राजू परिमाण है। इन दो क्षुल्लक प्रतरों में तिर्छालोक का मध्य भाग है। यही आठ रुचक प्रदेश हैं जिनमें से दस दिशाएँ निकली हैं। सम्पूर्ण लोक का मध्यभाग रत्नप्रभा पृथ्वी के आकाश खण्ड के असंख्यातवें भाग का उल्लंघन करने के बाद है। अधोलोक का मध्य भाग चौथी पंकप्रभा पृथ्वी का आधे से अधिक आकाश खंड पार करने के बाद आता है। तथा ऊर्ध्वलोक का मध्यभाग सनत्कुमार एवं माहेन्द्र देवलोक के ऊपर और ब्रह्मदेवलोक के नीचे रिष्ट नामक तीसरे प्रतर में है। **(चित्र क्रमांक 10)**

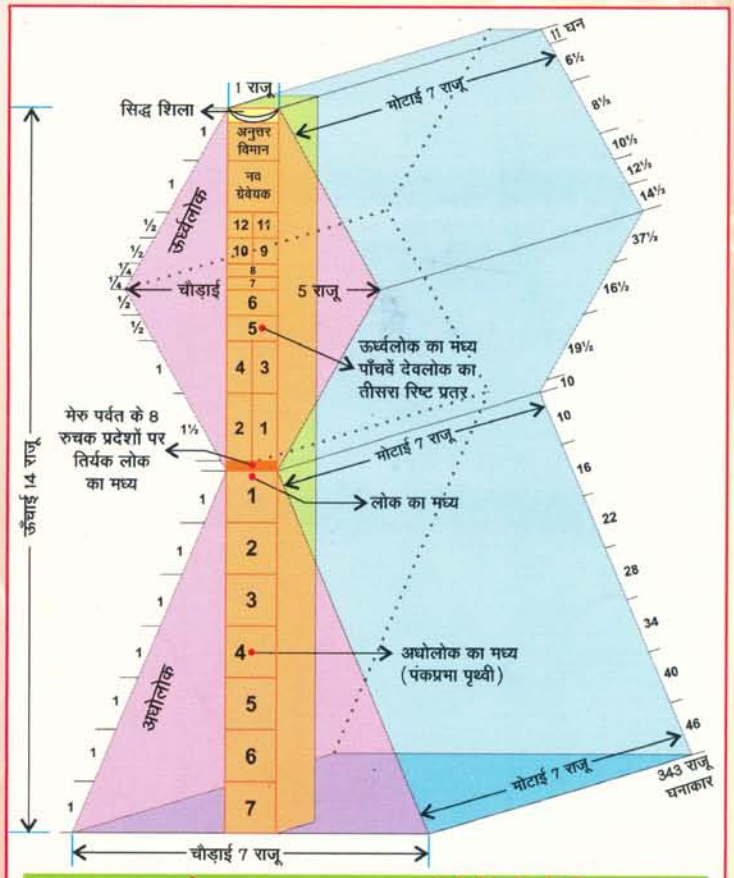

चित्र क्र. 10 : लोक का घनफल, राजू एवं तीनों लोकों के मध्य स्थान

दिशाओं का निर्णय—जंबूद्वीप के मेरु पर्वत के बहुसम मध्य भाग में

रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊपर और नीचे के दो क्षुल्लक (लघुतम) प्रतरों में तिरछालोक के मध्य भाग रूप गाय के स्तन के आकार के आठ रूचक प्रदेश हैं। जो चार ऊपर की ओर तथा चार नीचे की ओर सदा अवस्थित रहते हैं। इन रूचक प्रदेशों से ही पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण—ये चार दिशा, ईशान, आग्नेय, नैऋत्य व वायव्य—ये चार विदिशा तथा ऊर्ध्व और अधः—इस प्रकार 10 दिशाएँ निकली हैं। ऊर्ध्व-अधो दिशा ऊपर से नीचे तक चार-चार प्रदेशी हैं। विदिशाएँ आदि से अन्त तक एक-एक प्रदेशी हैं तथा चार दिशाएँ प्रारम्भ में दो-दो प्रदेशी है, फिर आगे दो-दो प्रदेश बढ़ते जाते हैं। मेरु पर्वत उत्तर दिशा में है, इसी प्रकार रात्रि में जिस दिशा में ध्रुवतारा दिखाई देता है, वह भी उत्तर दिशा है। उसके पीछे की दक्षिण दिशा है। उसकी दाँयी ओर पूर्व दिशा और बाँयी ओर पश्चिम दिशा होती है। इस दृष्टि से निर्णित हुई चारों दिशाओं को आगम में क्षेत्र दिशा कहा है। चार दिशाओं के बीच की दिशाएँ विदिशा कहलाती हैं जैसे उत्तर-पूर्व के मध्य का कोण 'ईशानकोण', पूर्ण-दक्षिण के मध्य का कोण 'आग्नेय कोण', दक्षिण-पश्चिम के मध्य का कोण 'नैऋत्य कोण' और पश्चिम-उत्तर के मध्य का कोण 'वायव्य' कोण है। **(चित्र क्रमांक 11)**

दिशाओं का यह निर्धारण क्षेत्र की दृष्टि से (Naumenal Point of View) है, व्यवहार में सूर्य से दिशा का निर्णय किया जाता है—अर्थात् जिधर सूर्य का उदय होता है, वह पूर्व दिशा मानी जाती है और फ़िर इसके आधार पर अन्य दिशा विदिशाओं का निर्धारण किया जाता है। इस प्रकार निर्णित हुई दिशा को आगम में 'ताप' दिशा कहते हैं। क्षेत्र दिशा निश्चित और स्थायी है। ताप दिशा में सूर्य के मंडल बदलते रहने के कारण पूर्व दिशा में सूर्योदय और पश्चिम दिशा में सूर्यास्त निश्चित एक स्थान पर नहीं होता। किंचित् स्थान परिवर्तन होता है। इस प्रकार पूरे जम्बूद्वीप के अलग-अलग तरफ के क्षेत्रों की अपेक्षा दिशा बदल जाती है। सूर्य-चन्द्र आदि मेरू पर्वत को केन्द्र में रखकर अयन मार्ग (Spiral root) में भ्रमण करते हैं।

दस दिशाओं के नाम—प्रत्येक दिशा के अधिपति देव के आधार से इन दिशाओं के नाम इस प्रकार हैं—(1) पूर्व दिशा के अधिपति देव 'इन्द्र' हैं, अतः इसे 'ऐन्द्री' दिशा कहते हैं। (2) अग्निकोण के स्वामी अग्निदेव हैं, अतः इसे 'आग्नेयी' कहते है। (3) दक्षिण दिशा के अधिपति 'यम' हैं, अतः इसे 'याम्या' दिशा कहते हैं। (4) नैऋत्यकोण के स्वामी 'नैऋति' हैं, अतः यह 'नैऋत्य' दिशा है। (5) पश्चिम दिशा के अधिपति 'वरुण' देव हैं, इस कारण इसे 'वारुणी' कहते हैं। (6) वायव्य कोण के स्वामी 'वायु' देव हैं, अतः यह 'वायव्य' दिशा कहलाती है। (7) उत्तर दिशा के अधिपति 'सोम' देव होने से उसे 'सौम्या' कहते हैं। (8) ईशानकोण के अधिपति 'ईशान' देव हैं, अतः उसे 'ईशान' दिशा कहते हैं। (9) ऊर्ध्व दिशा में अंधकार नहीं है, वह निर्मल है, अतः उसे 'विमला' दिशा कहते हैं। (10) अधोदिशा में गाढ़ अंधकार होने से उसे 'तमा' दिशा कहा है। इन दशों दिशाओं का उत्पत्ति स्थान आठ रुचक प्रदेश हैं।

चित्र क्र. 11

अध्याय 2 : अधोलोक

लोक के तीन भाग हैं—अधोलोक, मध्यलोक और ऊर्ध्वलोक। अधोलोक को पाताललोक या नरकलोक भी कहते हैं। यह मेरूपर्वत के समतल के नीचे 900 योजन की गहराई के बाद गिना जाता है। इसकी ऊँचाई सात राजू, चौड़ाई नीचे सात राजू और ऊपर एक राजू है। इस अधोलोक में सात पृथ्वियाँ हैं जो उत्तरोत्तर नीचे हैं और एक-दूसरे के मध्य असंख्यात योजन के अंतर से स्थित है। इन सात पृथ्वियों के नाम इस प्रकार है—

1. रत्नप्रभा,
2. शर्कराप्रभा,
3. बालुकाप्रभा,
4. पंकप्रभा,
5. धूमप्रभा, 6. तम:प्रभा,
7. महातम:प्रभा। **(चित्र क्रमांक 12)**

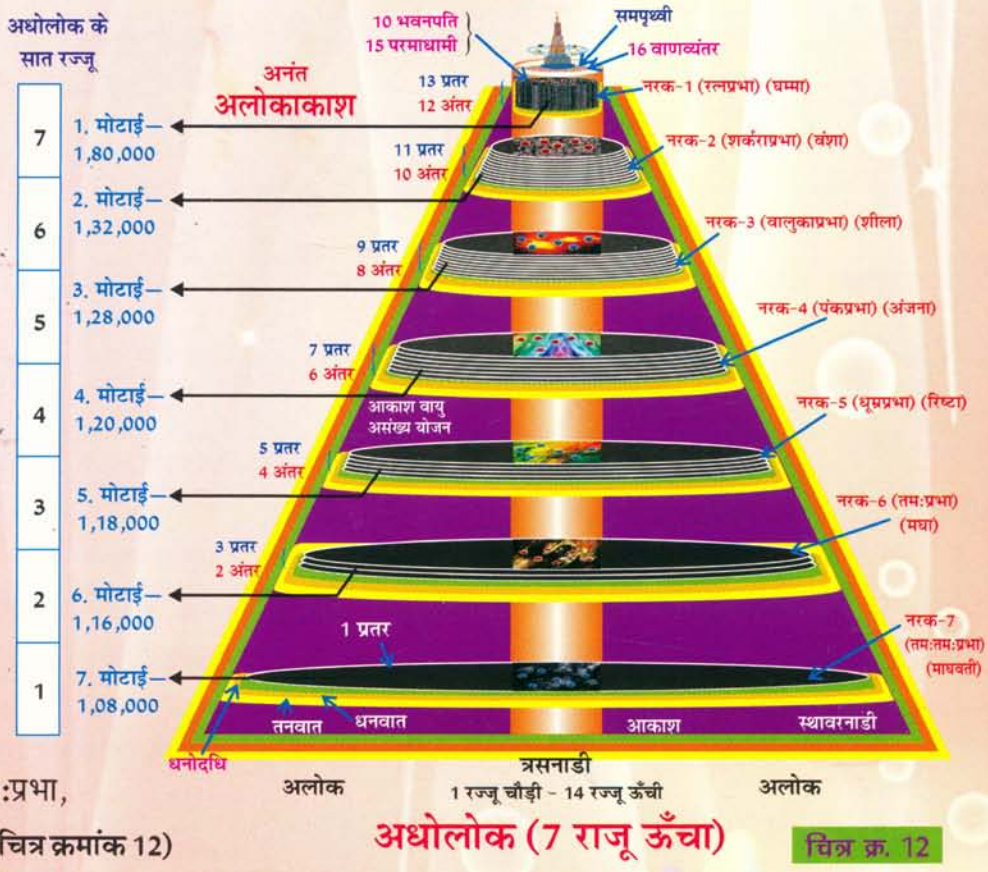

अधोलोक (7 राजू ऊँचा) चित्र क्र. 12

❑ सात नरक पृथ्वियाँ

1. **रत्नप्रभा पृथ्वी**—रत्नों की प्रधानता होने से इस पृथ्वी को रत्नप्रभा कहते हैं। इस नरक पृथ्वी की ऊँचाई एक राजू और घनाकार विस्तार दस राजू प्रमाण है। इसके तीन काण्ड (हिस्से) हैं। सबसे ऊपर का प्रथम **'खरकाण्ड'** है, जो रत्नप्रचुर है। उसकी मोटाई 16 हजार योजन है, उसके 16 विभाग हैं, प्रत्येक विभाग 1000 योजन मोटे हैं और रत्न, वज्र, वैडूर्य आदि 16 जाति के रत्नों की प्रधानता वाले हैं। उसके नीचे का दूसरा काण्ड **'पंकबहुल'** है, जिसकी मोटाई 84 हजार योजन है। उसके नीचे का तीसरा काण्ड **'जलबहुल'** है, जिसकी मोटाई 80 हजार योजन है। तीनों काण्डों की मोटाई कुल मिलाकर 1 लाख 80 हजार योजन है। उसमें से ऊपर और नीचे एक-एक हजार योजन छोड़कर बीच में 1 लाख 78 हजार योजन का पोलार है। इसमें तेरह

प्रस्तर (पाथड़ा) हैं और बारह अन्तर है।[1] प्रत्येक प्रस्तर 3000 योजन के और प्रत्येक अन्तर 11583⅓ योजन के ऊँचे है। इनमें ऊपर के दो आंतरे छोड़कर शेष 10 अन्तरों में असुरकुमार आदि दस प्रकार के भवनपति देव रहते हैं। तीन-तीन हजार योजन वाले तेरह ही प्रस्तरों में एक हजार योजन ऊपर और एक हजार योजन नीचे छोड़कर मध्य में एक हजार योजन की पोलार है, जिसमें 30 लाख नरकावास हैं। इनमें असंख्यात कुम्भियाँ है और असंख्यात नैरयिक जीव हैं। इनका देहमान उत्कृष्ट 7¾ धनुष 6

पहली नारकी के तीन कांड

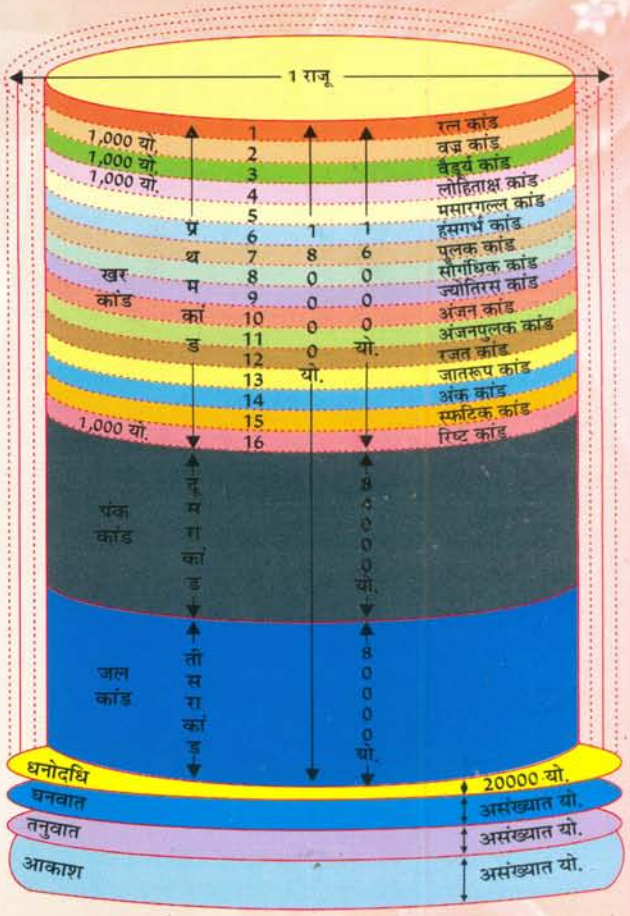

चित्र क्र. 13

प्रथम नरकावास का एक प्रस्तर

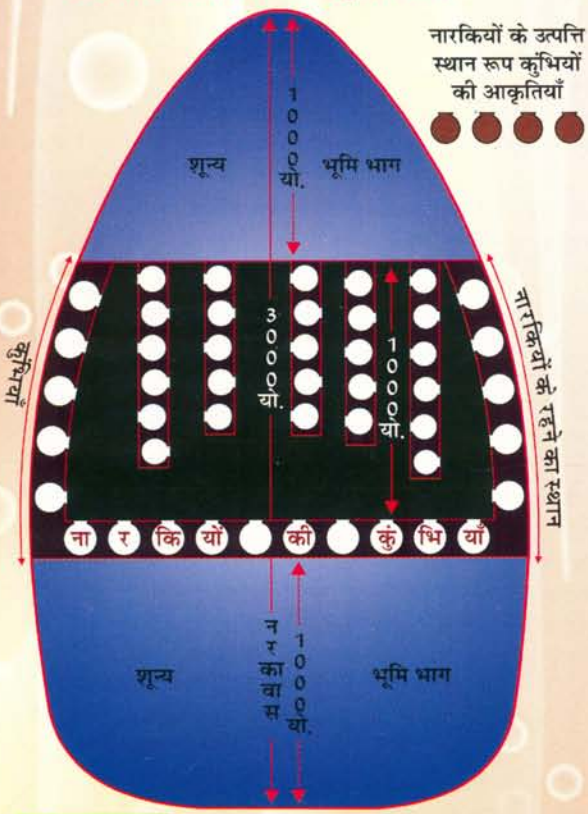

चित्र क्र. 14

अंगुल है तथा आयुष्य जघन्य 10 हजार वर्ष और उत्कृष्ट एक सागरोपम है। **(चित्र क्रमांक 13-14)**

2. शर्कराप्रभा पृथ्वी—दूसरी नरक की पृथ्वी शर्करा (कंकर) सदृश होने से '**शर्कराप्रभा**' कहलाती है। यह पृथ्वी एक राजू की ऊँचाई और 17 राजू के घनाकार विस्तार में स्थित है। इसमें 1 लाख 32 हजार योजन का पृथ्वीपिण्ड है। उसमें से एक-एक हजार योजन ऊपर-नीचे के भाग को छोड़कर 1 लाख 30 हजार योजन की पोलार है। इस पोलार में 11 प्रस्तर और

1. जैसे मकान में मंजिलें होती हैं वैसे ही नरक में भी मंजिलें होती हैं। नरक की मंजिल को अंतर कहते हैं। जैसे मंजिलों के बीच में छत—पृथ्वीपिंड रहता है, वैसे ही अंतरों के बीच के पृथ्वी-पिण्ड को 'पाथड़ा' कहा जाता है । पाथड़ों के मध्य पर्वतीय गुफाओं के समान पोलार शून्य प्रदेश होता है, उसी में नरकावास होता है ।

10 अन्तर है। प्रत्येक प्रस्तर 3 हजार योजन का और प्रत्येक अन्तर 9700 योजन का है। अन्तर खाली है और प्रत्येक प्रस्तर के मध्य में 1 हजार योजन की पोलार में 25 लाख नरकावास है। इनमें असंख्यात कुम्भियाँ और असंख्यात नैरयिक जीव है। इनका देहमान उत्कृष्ट 15½ धनुष और 12 अंगुल है और आयु जघन्य एक सागरोपम तथा उत्कृष्ट 3 सागरोपम है। इसमें तथा आगे की भूमियों में काण्ड नहीं है, क्योंकि उनमें शर्करा, बालुका आदि सर्वत्र एक-से हैं।

3. बालुकाप्रभा पृथ्वी—बालुका (रेत) प्रधान होने से इस भूमि का नाम '**बालुकाप्रभा**' है। यह एक राजू की ऊँचाई में तथा 22 रज्जू घनाकार विस्तार में स्थित है। इसमें 1 लाख 28 हजार योजन का पृथ्वी पिण्ड है। उसमें से ऊपर एवं नीचे का एक-एक हजार योजन छोड़कर बीच में 1 लाख 26 हजार योजन की पोलार है। इसमें 9 प्रस्तर व 8 अन्तर है। प्रत्येक प्रस्तर 3 हजार योजन का है और प्रत्येक अन्तर 12 हजार 375 योजन का है। अन्तर सब खाली हैं। प्रत्येक प्रस्तर के मध्य एक हजार योजन की पोलार में 15 लाख नरकावास हैं। इसमें असंख्यात कुम्भियाँ और असंख्यात नारकीय जीव हैं। इनका देहमान उत्कृष्ट 31¼ धनुष का और आयुष्य जघन्य तीन और उत्कृष्ट सात सागरोपम की है।

4. पंकप्रभा पृथ्वी—कीचड़ की अधिकता होने से चौथी नरक भूमि को पंकप्रभा कहते हैं। यह एक राजू की ऊँचाई में और 28 राजू घनाकार विस्तार में अवस्थित है। इसमें 1 लाख 20 हजार योजन का पृथ्वीपिंण्ड है। ऊपर नीचे का एक-एक हजार योजन छोड़कर बीच में 1 लाख 18 हजार योजन की पोलार है। इसमें 7 प्रस्तर और 6 अन्तर है। प्रत्येक प्रस्तर 3 हजार योजन का एवं प्रत्येक अन्तर 16166⅔ योजन का है। सब अन्तर खाली है प्रत्येक प्रस्तर के मध्य में एक हजार योजन की पोलार में दस लाख नरकावास हैं। जिनमें असंख्यात कुंभिया व असंख्यात नैरयिक जीव है। इन नारकी जीवों का देहमान उत्कृष्ट 62½ धनुष का होता है। आयु जघन्य 7 सागरोपम और उत्कृष्ट 10 सागरोपम की होती है।

5. धूमप्रभा पृथ्वी—धुएँ की अधिकता के कारण इस पाँचवी नरक भूमि को '**धूमप्रभा**' कहते हैं। एक रज्जू की ऊँचाई में तथा 34 रज्जू घनाकार में यह स्थित है। इसमें 1 लाख 18 हजार योजन का पृथ्वीपिण्ड है। उमसें से 1000 योजन ऊपर और 1000 योजन नीचे छोड़कर बीच में 1 लाख 16 हजार योजन की पोलार है इसमें पाँच प्रस्तर और चार अन्तर है। प्रत्येक प्रस्तर तीन हजार योजन और प्रत्येक अन्तर 25250 योजन का है। अन्तर खाली है। प्रत्येक प्रस्तर के मध्य में 1000 हजार योजन की पोलार में 3 लाख नरकावास हैं। जिनमें असंख्यात कुम्भियाँ और असंख्यात नैरयिक जीव हैं। इन जीवों का देहमान उत्कृष्ट 125 धनुष का और आयुष्य जघन्य 10 सागरोपम तथा उत्कृष्ट 17 सागरोपम का है।

6. तम:प्रभा पृथ्वी—अंधकार की प्रचुरता के कारण छठी नरक पृथ्वी को 'तम:प्रभा' कहा जाता है। यह एक राजू की ऊँचाई तथा चालीस राजू घनाकार विस्तार में स्थित है। इसमें 1 लाख 16 हजार योजन का पृथ्वी पिण्ड है। उसमें से 1000 योजन ऊपर और 1000 योजन नीचे छोड़कर बीच में 1 लाख 14 हजार योजन की पोलार है। इस पोलार में तीन प्रस्तर और दो अन्तर है। प्रत्येक प्रस्तर तीन हजार योजन का और प्रत्येक अन्तर 52 हजार 500 योजन का है। अन्तर खाली है और प्रत्येक प्रस्तर के मध्य एक हजार योजन की पोलार में 99995 (पाँच कम एक लाख) नरकावास हैं। इनमें असंख्यात कुम्भियाँ हैं जिसमें असंख्यात

नारकीय जीव रहते हैं। इन जीवों का देहमान उत्कृष्ट 250 धनुष का तथा आयु जघन्य 17 सागरोपम व उत्कृष्ट 22 सागरोपम की है।

7. महातम:प्रभा पृथ्वी—घने अंधकार की अधिकता के कारण यह भूमि **'महातम:प्रभा'** पृथ्वी कहलाती है। यह एक राजू ऊँची और 46 राजू घनाकार विस्तार में स्थित है। इसमें एक लाख आठ हजार योजन मोटा पृथ्वी पिण्ड है। उसमें से 52½ हजार योजन नीचे और 52½ हजार योजन ऊपर छोड़कर बीच में तीन हजार योजन की पोलार है। उसमें एक ही प्रस्तर है, अन्तर नहीं है। प्रस्तर में **'काल', 'महाकाल', 'रौरव' (रूद्र), 'महारौरव' (महारूद्र) और 'अप्रतिष्ठान'** नामक पाँच नरकावास हैं। इन नरकावासों में असंख्यात कुम्भियाँ हैं जिनमें असंख्यात नारकी जीव रहते हैं। इन जीवों का देहमान उत्कृष्ट 500 धनुष का और आयुष्य 22 सागरोपम एवं उत्कृष्ट 33 सागरोपम का है। सातों नरकों में अपने देहमान (अवगाहना) से दुगुनी अवगाहना उत्तर वैक्रिय द्वारा नारकी कर सकते हैं।

❐ नरकों में वलय की स्थिति

सातों नरक पृथ्वियाँ घनोदधि, घनवात तथा तनुवात—इन तीन वलयों पर स्थित हैं। नरक पृथ्वियों को चारों ओर (सभी दिशा-विदिशा) से वेष्टित करके रहे हुए होने के कारण इन्हें 'वलय' कहते हैं।

सर्वप्रथम नरक पृथ्वियों के नीचे के किनारों को स्पर्श करके घनोदधि (जमा हुआ पानी) वलय है, इसको वेष्टित करके घनवात (पिण्डिभूत वायु) है। इसको वेष्टित करके तनुवात (पतली/हल्की वायु) है। घनोदधि 20 हजार योजन मोटा है, उसके नीचे घनवात असंख्यात योजन का फिर तनुवात असंख्यात योजन का फिर असंख्यात योजन का आकाश है। सातों नरक पृथ्वियों के नीचे इसी क्रम से घनोदधि आदि विद्यमान है।

तीनों वलयों की ऊँचाई नरक पृथ्वीपिण्ड की मोटाई के समान है और चौड़ाई निम्न प्रकार से है—

नरक पृथ्वी	घनोदधि	घनवात	तनुवात	तीनों वलय की चौड़ाई और अलोक से अंतर
1.	6 योजन +	4½ योजन +	1½ योजन	= 12 योजन
2.	6⅓ योजन +	4¾ योजन +	1½ + 1/12 योजन	= 12⅔ योजन
3.	6⅔ योजन +	5 योजन +	1½ + 2/12 योजन	= 13⅓ योजन
4.	7 योजन +	5¼ योजन +	1¾ योजन	= 14 योजन
5.	7⅓ योजन +	5½ योजन +	1¾ + 1/12 योजन	= 14⅔ योजन
6.	7⅔ योजन +	5¾ योजन +	1¾ + 2/12 योजन	= 15⅓ योजन
7.	8 योजन +	6 योजन +	2 योजन	= 16 योजन

पहली नरक पृथ्वी के चरमान्त से चारों दिशाओं में अलोक 12 योजन दूर है और सातवीं नरक के पृथ्वीपिण्ड के चरमान्त से 16 योजन दूर है। पृथ्वीपिण्ड और उसके नीचे रहे घनोदधि आदि झालर के आकार हैं और चौतरफ रहे घनोदधि आदि वलयाकार है।

सात नरक पृथ्वियों का झालर का आकार

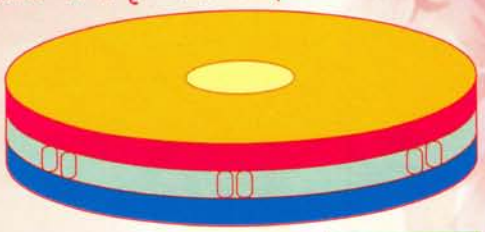

चित्र क्र. 15

❑ नरकावासों के आकार व प्रकार

सातों नरकों में कुल मिलाकर 49 प्रस्तर, 42 अंतर और 84 लाख नरकावास है। ये सभी प्रस्तर 3000 योजन ऊँचाई वाले हैं। उनमें नीचे और ऊपर के 1000-1000 योजन छोड़कर मध्य के 1000 योजन की पोलार में नारकियों के दो प्रकार के आवास हैं—(1) आवलिका प्रविष्ट और (2) प्रकीर्णक नरकावास।

(1) आवलिका प्रविष्ट नरकावास के प्रत्येक प्रस्तर के मध्य में एक मुख्य केन्द्रभूत नरकावास होता है, उसकी चारों दिशाओं और विदिशाओं में पंक्तिबद्ध विमान होते हैं। मध्य का नरकावास गोल और उसकी दिशा-विदिशा की प्रथम पंक्ति के आठ नरकावास त्रिकोण होते हैं। उनके चारों ओर के आठ नरकावास चतुष्कोण तथा उनके चारों ओर आठ नरकावास गोल हैं। उसके बाद अनुक्रम से त्रिकोण, चतुष्कोण और गोल—इस प्रकार आवलिक प्रविष्ट विमान तीन-तीन आकार के हैं। इन सब आवासों के ऊपर चबूतरे (पीठ) का मध्यभाग अंदर से गोल, बाहर से चतुष्कोण और नीचे तीक्ष्ण नोंकदार शस्त्र जैसा है।

अवलिका प्रविष्ट नरकावास तीनों ओर से देखने पर

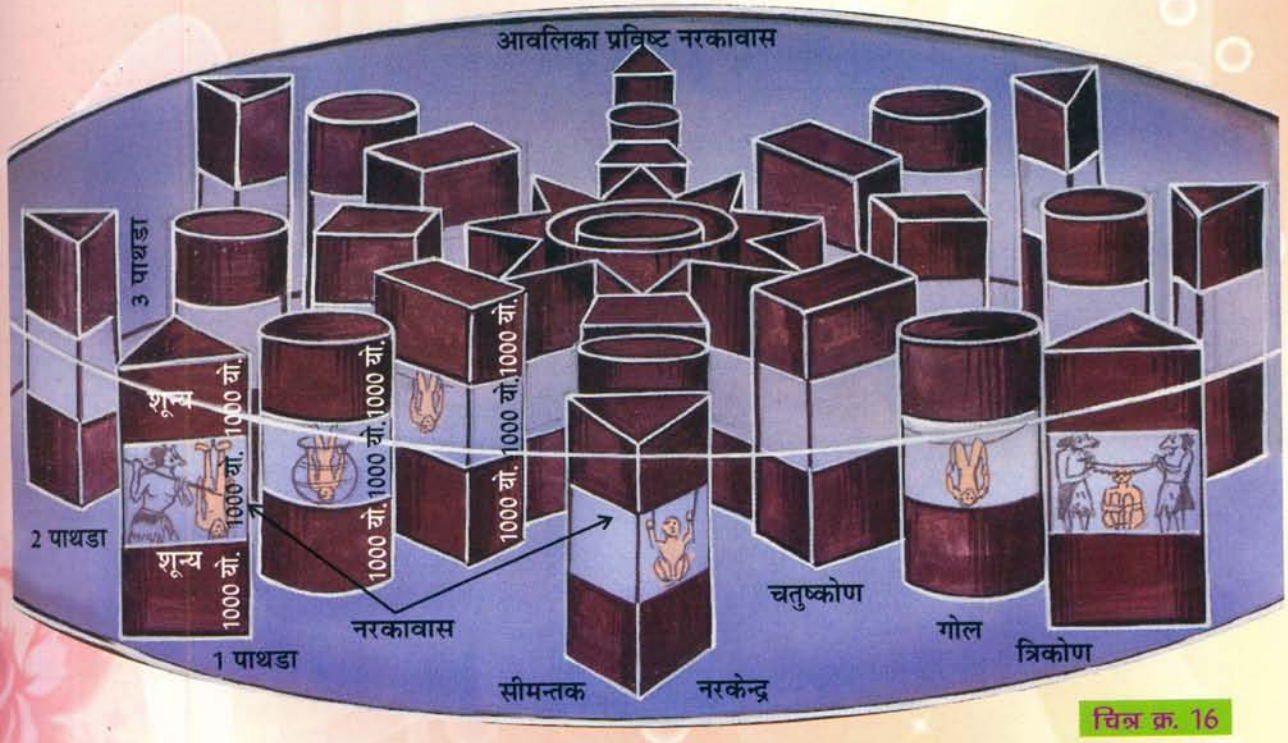

चित्र क्र. 16

चित्र क्र. 17 : प्रस्तर में आवलिका प्रविष्ट और प्रकीर्णक नरकवास

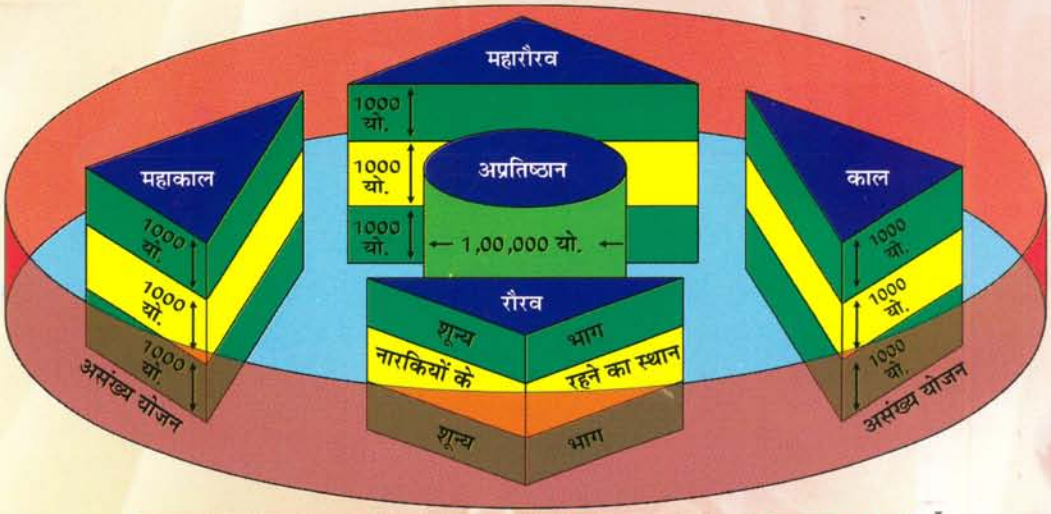

चित्र क्र. 18 : सातवीं नरक पृथ्वी के पाँच नरकवास (तीन ओर से)

(2) प्रकीर्णक नरकावास पंक्तिबद्ध विमानों के बीच-बीच में पुष्पावकीर्ण (विविध आकृति वाले) होते हैं। ये सब अंदर से गोल बाहर से त्रिकोण, चतुष्कोण और नीचे नोंकदार शस्त्र जैसे हैं।

प्रथम नरक की एक प्रस्तर का उदाहरण—जैसे प्रथम नरक का मध्य प्रथम प्रस्तर 'सीमंतक' नाम का है, उसकी चारों दिशा में 49-49 और विदिशा में 48-48 पंक्तिबद्ध नरकावास है। इस प्रकार एक सीमंतक (इन्द्रक) + 49 × 4 = 196 दिशागत और + 48 × 4 = 192 विदिशागत नरकावास कुल 389 आवलिकाबद्ध नरकावास प्रथम प्रस्तर में है। इसी प्रकार 13 प्रस्तर में 13 इन्द्रक और आठों दिशा की कुल 4433 पंक्तिबद्ध तथा शेष 29,95,563 प्रकीर्णक नरकावास हैं। सब मिलाकर 30 लाख नरकावास प्रथम नरक में हैं।

सातों नरकों में प्रत्येक प्रस्तर के मध्य में एक इन्द्रक (मुख्य) नरकावास और उसकी दिशा-विदिशा में एक-एक न्यून नरकावास समझना चाहिये।

सातवीं नरक पृथ्वी में एक ही प्रस्तर है। उसके मध्य में 'अप्रतिष्ठान' नाम का इन्द्रक नरकावास है। उसकी दिशा में चार नरकावास हैं। विदिशा में नरकावास नहीं है तथा इस नरक में प्रकीर्णक नरकावास भी नहीं हैं।

आवलिकाबद्ध और प्रकीर्णक नरकावास

	प्रथम नरक	दूसरी नरक	तीसरी नरक	चौथी नरक	पाँचवीं नरक	छठी नरक	सातवीं नरक
आवलिका प्रविष्ट नरकावास	4433	2695	1485	707	265	63	5
प्रकीर्णक नरकावास	29,95,567	24,97,305	14,98,515	9,99,293	2,99,735	99,932	—
कुल नरकवास	30 लाख	25 लाख	15 लाख	10 लाख	3 लाख	99,995	5

नरकावासों की विशालता—सातवीं नरक का अप्रतिष्ठान नरकावास एक लाख योजन का लम्बा-चौड़ा और गोलाकार है। पहली नरक का सीमांतक नरकावास 45 लाख योजन का लम्बा-चौड़ा और गोलाकार है। शेष सभी नरकावास असंख्यात योजन विस्तार वाले हैं। वे इतने विस्तृत हैं कि तीन चुटकी बजाए, उतने समय में एक लाख योजन विस्तार वाले जम्बूद्वीप के 21 चक्कर लगाकर वापिस आ जावे ऐसी शीघ्रगति वाला देव छह महीने तक निरन्तर चलता रहे, तो भी किसी नरकावास का पार पा सकता है, किसी का नहीं।

नरकावासों की भूमि—अतीव अंधकार पूर्ण नरक की भूमि मरे हुए कुत्ते, गधे, सूअर आदि जानवरों के अत्यंत सड़े हुए माँस और विष्ठा आदि से भी अत्यंत दुर्गंधमय है। यदि सातवीं नरक की मिट्टी का एक कण भी यहाँ आ जाए तो यहाँ के 25 कोस तक के जीव मर जाए। ऐसी दुर्गंधमय मिट्टी का वे नारकी जीव भक्षण करते हैं।

नरकावासों की भूमि हमेशा मल-मूत्र, विष्ठा, श्लेष्म, कफ आदि गंदगी से व्याप्त रहती है। माँस, नख, केश, दाँत, चर्म आदि से आच्छादित श्मशान जैसी भूमि होती है। वहाँ की भूमि का स्पर्श इतना तीक्ष्ण और पीड़ाजनक है, जैसी एक हजार बिच्छुओं के एक साथ काटने से होती है। कहा भी है—

तहाँ भूमि परसत दुःख इसो।
वीछू सहस डसे तन तिसो॥

रोम-रोम काँप उठे, कान के परदे फट जाए, ऐसी भयंकर चीखें वहाँ निरन्तर चलती रहती हैं। नारकियों की करूण चीत्कारों से वहाँ का वातावरण सदा अशांत बना रहता है।

नारकियों का उत्पत्ति स्थान—नारकी जीव नरकावासों की दीवारों में बिल के आकार के योनिस्थान जिन्हें 'कुम्भी' कहा जाता है, वहाँ '**अहो सिरो कटटुं उवेइ दुग्गं**' अर्थात् सिर नीचा और पाँव ऊपर करके उत्पन्न होता है। ये कुम्भियाँ चार प्रकार की होती हैं—1. ऊँट की गर्दन के समान टेढ़ी-मेढ़ी, 2. घी की कुप्पी के समान मुख संकड़ा और अधोभाग चौड़ा, 3. डिब्बे जैसी ऊपर-नीचे समान परिमाण वाली और 4. अफीम के डोडे जैसी—पेट चौड़ा और मुख संकड़ा।

एक मुहूर्त काल में ही वे नारकी वहाँ छहों पर्याप्तियों से पूर्ण हो जाते हैं। पूर्ण देहमान वाले होने से संकरी कुम्भी में बुरी तरह से फँस जाते हैं, कुम्भी की तीखी धारें उन्हें चारों ओर से चुभती है और नारकी जीव वेदना से तिलमिलाने लगते हैं। उस समय पहली से तीसरी नरक तक परमाधर्मी देव तथा शेष नरकों में पूर्वोत्पन्न नारकी जीव उन्हें चीमटे या संडासी से पकड़कर खींचते हैं। नारकी जीव खण्ड-खण्ड होकर उसमें से निकलते हैं। इस प्रकार उत्पत्ति के प्रथम क्षण से ही वे घोर मारणान्तिक वेदना का अनुभव करते है, किन्तु मरते नहीं, क्योंकि ये अनपवर्त्तनीय आयुष्य वाले होते हैं।[1] उनका शरीर छिन्न-भिन्न होकर भी पारे की तरह पुनः मिल जाता है। जब तक आयुष्य पूर्ण नहीं होता, तब तक वे इसी प्रकार मृत्यु तुल्य वेदना का क्षण-प्रतिक्षण वेदन करते रहते हैं।

नारकी जीवों की संख्या—प्रत्येक नरक में असंख्यात नारकी हैं। असत्कल्पना से कोई एक-एक नारकी की प्रतिसमय गिनती करता चला जाय तो असंख्यात उत्सर्पिणी और असंख्यात अवसर्पिणी बीत जाने पर भी एक नरक के संपूर्ण नारकी नहीं गिने जा सकते। ये सभी नारकी नपुसंक होते हैं, इनमें स्त्री-पुरूष का भेद नही होता।

नारकी जीवों के लेश्या-परिणाम—पहली नरक भूमि से दूसरी और दूसरी से तीसरी इस प्रकार सातवीं नरक भूमि तक के नारक अशुभ, अशुभतर और अशुभतम शरीर रचना वाले हैं। उन नरकों में स्थित नारकों की लेश्या, परिणाम, देह, वेदना और विक्रिया भी उत्तरोत्तर अशुभ है। रत्नप्रभा में कापोत लेश्या है। शर्कराप्रभा में भी कापोत है, पर रत्नप्रभा से अधिक तीव्र संक्लेशकारी है। बालुकाप्रभा में कापोत-नील लेश्या है। पंकप्रभा में नील लेश्या है। धूमप्रभा में नील-कृष्ण लेश्या है। तमःप्रभा में कृष्ण लेश्या है और महातमःप्रभा में भी कृष्ण लेश्या है, पर तमःप्रभा से तीव्रतम है।

---

1. आयु दो तरह की होती है—अपवर्तनीय और अनपवर्तनीय । जो आयु बन्ध-कालीन स्थिति के पूर्ण होने से पहले ही भोगी जा सके वह अपवर्तनीय और जो आयु बन्ध कालीन स्थिति के पूर्ण होने से पहले न भोगी जा सके वह अनपवर्तनीय आयु कहलाती है। औपपातिक जीव (नारकी और देव), चरम-शरीरी (जन्मान्तर किए बिना इस शरीर से मोक्ष जाने वाले), उत्तम पुरूषों (तीर्थंकर, चक्रवर्ती, वासुदेव आदि) और असंख्य वर्षों की आयु वाले जीव अनपवर्तनीय आयु वाले ही होते हैं।

नरक के जीवों की वेदना—नारकी जीवों को प्रमुख रूप से तीन प्रकार की वेदना होती है—1. परमाधर्मीदेवकृत वेदना, 2. क्षेत्रकृत वेदना, और 3. परस्परकृत वेदना।

1. परमाधर्मीकृत वेदना—परमाधर्मिक एक प्रकार के असुरदेव होते हैं, जो प्रथम तीन नरकों तक जाकर नारकियों को अनेक प्रकार से पीड़ित करते रहते हैं। उन्हें रोते व चिल्लाते देखकर बहुत खुश होते हैं।

2. क्षेत्रकृत वेदना—नारकियों को दस प्रकार की क्षेत्र वेदना निरंतर होती है—1. शीतवेदना, 2. उष्णवेदना, 3. क्षुधा वेदना, 4. पिपासा वेदना, 5. कण्डु-खुजली वेदना, 6. परजन्य-परजनित या परतंत्रता का कष्ट, 7. भय, 8. शोक, 9. जरा-बुढ़ापा, 10. व्याधि वेदना—ये सभी वेदनाएँ सातों नरकों में उत्तरोत्तर असंख्यात गुणा अधिक हैं। पहली तीन नरकों में उष्ण वेदना, चतुर्थ में उष्ण शीत, पाँचवी में शीतउष्णवेदना अर्थात् यहाँ शीत की प्रधानता है, उष्णता कम। छठ्ठे में शीत और सातवें में महाशीत वेदना है। उष्णता और शीतता की यह वेदना नरकों में इतनी सख्त होती है कि इस वेदना को भोगने वाला नारकी यदि मनुष्यलोक की भीषण गर्मी या कड़कड़ाती सर्दी में आ जाए तो उसे बड़े आराम से नींद आ सकती है। छठी और सातवी नरक में नारकी को हमेशा 5,68,99,585 रोग उदय में रहते है, एवं भयंकर वेदना उत्पन्न करते हैं।

3. परस्परकृत वेदना—नारकी जीवों को परमाधर्मीदेवकृत एवं क्षेत्रकृत वेदना तो है ही, साथ ही वे आपस में भी एक-दूसरे को पीड़ित एवं प्रताड़ित करते रहते हैं। वे अनेक प्रकार के तीक्ष्ण और दुसह्य शस्त्रों की विकुर्वणा करके एक-दूसरे पर प्रहार करते हैं। विक्रिया द्वारा वे दूसरों को अतिकर्कश, कटुक, निष्ठुर वचन बोलकर दुसह्य वेदना देते हैं। यह विकुर्वणा रूप वेदना पाँचवीं नरक तक समझनी चाहिए। छठी और सातवी नरक में तो नारक जीव वज्रमय मुख वाले लाल और गोबर के कीड़े के समान बड़े-बड़े कुन्थुओं का रूप बनाकर एक-दूसरे के शरीर पर चढ़ते हैं और काट-काटकर अंदर तक घुस जाते हैं। जैसे इक्षु का कीड़ा इक्षु को खा-खाकर छलनी कर देता है, वैसे ही वे एक-दूसरे के शरीर को छलनी करके वेदना पहुँचाते रहते हैं।

सैंकड़ों वेदनाओं में साता के कुछ क्षण—जीवाभिगमसूत्र में कहा है कि यद्यपि नरक में निमेष मात्र भी सुख नहीं है, तथापि कुछ अपवाद है—

उववाएण व सायं नेरइओ देव-कम्मुणा वा वि।
अज्झवसाण निमित्तं, अहवा कम्माणुभावेणं॥

(तृतीय प्रतिपत्ति, तृतीय उद्देशक गाथा—6)

1. उपपात—अग्नि या शस्त्र आदि के बिना सहज रूप में मृत्यु को प्राप्त हुआ जीव जब नरक में जाता है, तब उत्पत्ति के समय असाता का वेदन नहीं करता है। **2. देव प्रभाव से**—कोई जीव पूर्वभव के मित्र देव के प्रभाव से स्वल्प समय के लिए साता का वेदन करता है। **3. अध्यवसाय से**—कोई सम्यक्दृष्टि नैरयिक विशिष्ट शुभ अध्यवसाय से बाह्य क्षेत्रज आदि वेदनाओं के होते हुए भी असाता का अनुभव नहीं करता है। **4. कल्याणक पर**—तीर्थंकरों के च्यवन जन्म, दीक्षा, केवलज्ञान तथा निर्वाण कल्याणक के अवसर पर नैरयिक जीव क्षण भर के लिए साता का अनुभव करते हैं।

नरकों की तालिका

नरक	यौगिक नाम	रौढ़िक नाम	49 प्रतर	आंतरा	84 लाख नरकावास	पृथ्वी की मोटाई (योजन में)	नरक की पृथ्वी	जन्म का अंतर	उत्कृष्ट आयु	अवधि ज्ञान की सीमा	उत्कृष्ट अवगाहना
1	रत्नप्रभा	घम्मा	13	12	30 लाख	1 लाख 80 हजार	रत्न के समान	24 मुहूर्त	1 सागर	4 कोस	$7^{3/6}$ धनुष 6 अंगुल
2	शर्कराप्रभा	वंशा	11	10	25 लाख	1 लाख 32 हजार	कंकर के समान	7 दिन	3 सागर	3½ कोस	15½ धनुष 12 अंगुल
3	बालुकाप्रभा	शिला	9	8	15 लाख	1 लाख 28 हजार	रेत के समान	15 दिन	7 सागर	3 कोस	31¼ धनुष
4	पंकप्रभा	अंजना	7	6	10 लाख	1 लाख 20 हजार	कीचड़ युक्त	1 मास	10 सागर	2½ कोस	62½धनुष
5	धूमप्रभा	अरिष्ठा	5	4	3 लाख	1 लाख 18 हजार	धुँए युक्त	2 मास	17 सागर	2 कोस	125 धनुष
6	तम:प्रभा	मघा	3	2	5 कम 1 लाख	1 लाख 16 हजार	अंधकारपूर्ण	4 मास	22 सागर	1½ कोस	250 धनुष
7	महातम:प्रभा	माघवती	1	1	पाँच	1 लाख 8 हजार	घना अंधकारपूर्ण	6 मास	33 सागर	1 कोस	500 धनुष

विशेष—नरकों में नारकियों के 10 प्राण, 6 पर्याप्तियाँ, 4 संज्ञा, 3 ज्ञान, 3 अज्ञान, 3 दर्शन, 3 अशुभ लेश्या, भव्यत्व अभव्यत्व, पारिणामिक भाव, आर्त और रौद्र ये 2 ध्यान तथा पहले से चौथा गुणस्थान होता है।

नरक में उत्पन्न जीव—नरक में घोर पाप करने वाले मनुष्य व तिर्यंच ही उत्पन्न होते हैं, देव और नारकी नहीं। मनुष्य में भी कर्मभूमि के मनुष्य ही नरक में जा सकते हैं अकर्मभूमि के नहीं। तिर्यंच जीवों में असंज्ञी जीव पहली नरक, सरीसृप, गोधा नकुल आदि जीव दूसरी नरक, पक्षी तीसरी नरक, सिंह चौथी नरक, सर्प पाँचवी नरक, स्त्रियाँ छठी नरक तक उत्पन्न होती हैं, सातवीं नरक में केवल नर मत्स्य व मनुष्य ही उत्पन्न होते हैं अर्थात् प्रथम नरक में पाँचों प्रकार के संज्ञी व असंज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय, दूसरी नरक में पाँचों प्रकार के संज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय, तीसरी नरक में भुजपरिसृप छोड़कर शेष चार चौथी नरक में खेचर भी छोड़कर शेष तीन, पाँचवीं नरक में स्थलचर भी छोड़कर शेष दो, छठी नरक तक एक जलचर तिर्यंच पंचेन्द्रिय और सातवीं नरक में जलचर स्त्री छोड़कर जलचर पुरुष और नपुंसक तिर्यंच पंचेन्द्रिय उत्पन्न हो सकते हैं। गर्भज मनुष्य सात नरक तक उत्पन्न हो सकते हैं।

सातवीं नरक में उत्पन्न होने वाले पाँच जीवों के नाम जीवाभिगमसूत्र में आते हैं—1. **जमदग्निपुत्र परशुराम** (21 बार पृथ्वी को क्षत्रिय विहीन करने वाला), 2. **लच्छविपुत्र दृढायु**, 3. **उपरीचर वसुराजा** (पर्वत और नारद के मध्य '**अज**' शब्द के अर्थ को लेकर होने वाले विवाद में अज का अर्थ '**बकरा**' कर हिंसामय यज्ञ को प्रोत्साहन देने वाला), 4. **कौरव्य गोत्रीय अष्टम चक्रवर्ती सुभूम** (पृथ्वी को सात बार ब्राह्मणों से रहित करने वाला), 5. **चुलनीसुत ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती** (अत्यंत भोगासक्त तथा क्रूर अध्यवसायी)।

नारकियों की गति—नरक से निकलने के बाद नारकी जीव मनुष्य या तिर्यंच ही बनता है, देव या नारकी नहीं बनता। उसमें भी पहली तीन नरकों के जीव मनुष्य जन्म पाकर तीर्थंकर पद पा सकते हैं, चौथी नरक के जीव मनुष्य-गति में निर्वाण पद भी पा सकते हैं। पाँचवी नरक के जीव मनुष्य बनकर संयम का लाभ ले सकते हैं। छठी नरक से निकले हुए देश-विरति (श्रावक-धर्म) और सातवीं नरक से निकले हुए जीव सम्यक्त्व प्राप्त कर सकते हैं। भाव यह है कि नारकीय जीवों का सदा के लिए पतन नहीं हो जाता है। वह नरक से निकलकर, मनुष्य-जन्म लेकर सत्य, अहिंसा की साधना द्वारा अपने भविष्य को उज्ज्वल बना सकता है।

❐ अधोलोक में भवनपति देव

अधोलोक में केवल नारकियों का ही निवास नहीं है, वरन् भवनपतिदेवों के भी भवन हैं। अधोलोक में एक राजू विस्तार वाली और एक लाख 80 हजार योजन की मोटी जो रत्नप्रभा नाम की प्रथम पृथ्वी है, उसके एक हजार योजन ऊपर और नीचे छोड़कर शेष मध्यगत एक लाख 78 हजार योजन क्षेत्र में 13 पाथड़े व 12 आंतरे हैं। उन 12 अंतरों में से ऊपर के दो आंतरे छोड़कर शेष दस आंतरों में अलग-अलग जाति के भवनपतिदेव रहते हैं। इन अंतरों में उनके विमान नहीं होते, बल्कि भवन होते हैं। ये देव उन भवनों में निवास करते हैं, अत: ये भवनपति कहलाते हैं। ये दस प्रकार के हैं -

(1) असुरकुमार, (2) नागकुमार, (3) सुपर्णकुमार, (4) विद्युतकुमार, (5) अग्निकुमार, (6) द्वीपकुमार, (7) उदधिकुमार, (8) दिशाकुमार, (9) वायुकुमार, (10) स्तनितकुमार

भवनपति देवों का स्वरूप—ये सब भवनपतिदेव '**कुमार**' इसलिए कहे जाते हैं, क्योंकि वे कुमार की भाँति देखने में प्राय: सुंदर मनोहर तथा सुकुमार होते हैं व मधुर गति वाले तथा क्रीड़ाप्रिय होते हैं। ये देव अत्यन्त शक्तिशाली भी होते हैं। एक चुटकी बजाए उतनी देर में जंबूद्वीप की 21 बार प्रदक्षिणा कर सकते हैं। ये देव किसी पुरूष की आँख की भौंह पर 32 प्रकार के नाटक कर लेते हैं, फिर भी उस व्यक्ति को कष्ट नहीं होता। राजप्रश्नीय सूत्र में इन देवों द्वारा किये गये नाटक का विस्तार से वर्णन आता है।

भवनपति देवों का देहमान 7 हाथ प्रमाण है। इन्हें 2 दिन से लेकर 9 दिन तक में भोजन करने की इच्छा होती है। ये मन इच्छित कार्य को साधने वाले होते हैं। ये देव दो से नौ मुहूर्त में श्वासोच्छ्वास लेते है। इनकी आयुष्य जघन्य 10,000 वर्ष तथा उत्कृष्ट एक सागरोपम है।

असुरकुमार देव परम लावण्य युक्त मोटी काया वाले होते हैं। ये एक पलक झपकने मात्र में संपूर्ण जंबूद्वीप की प्रदक्षिणा कर सकते हैं। **नागकुमार** देवों का मस्तक और मुखमंडल अतीव शोभायुक्त होता है। ये मृदु व ललित गति वाले होते हैं तथा अपने फण से सारे जंबूद्वीप को ढक सकते हैं। **सुपर्णकुमार** देवों का गर्दन और उदर भाग अतीव सुशोभित होता है। ये देव अपने पंख द्वारा सारे जंबूद्वीप को ढक सकते हैं। **विद्युतकुमार** देव स्निग्ध अवयव वाले, ज्योति स्वभावी होते है। ये पूरे जंबूद्वीप में बिजली का प्रकाश फैला सकते है। **अग्निकुमार** देवों का सम्पूर्ण देह मानोन्मान प्रमाणयुक्त होता है। ये देव पूरे जंबूद्वीप को जलाकर भस्म कर सकते हैं। **द्वीपकुमार** देवों का स्कंध और वक्षस्थल, भुजा और अग्रहस्त विशेष शोभित होता है। ये देव पूरे जंबूद्वीप को एक हाथ पर स्थापन कर सकते हैं। **उदधिकुमार** देवों का उरू व कटि भाग अधिक शोभा-सम्पन्न

होता है। पूरे जंबूद्वीप को ये देव जल से भर सकते हैं। **दिशाकुमार** देवों की जंघाएँ व पैर अत्यंत मजबूत व शोभित होते हैं। ये देव अपने पैर की एड़ी द्वारा पूरे जंबूद्वीप को कंपायमान कर सकते हैं। **वायुकुमार** देव स्थिर, पुष्ट, सुदंर व गोल गालों वाले होते हैं। ये देव संपूर्ण जंबूद्वीप को हवा से प्रकम्पित कर सकते हैं। **स्तनित कुमार** स्निग्ध अवयवी, गंभीर नाद वाले जातिवंत देव हैं। इन्हें मेघकुमार देवों के नाम से भी जाना जाता है। ये चाहें तो संपूर्ण जंबूद्वीप को मेघ से आच्छादित कर सकते हैं।

भवनपति देवों के इन्द्र—भवनपति देवों का नेतृत्व करने वाले 20 इन्द्र होते हैं। इन देवों के भवन दक्षिण व उत्तर इन दो दिशाओं में विभाजित होने के कारण दोनों दिशाओं के इन्द्र भिन्न-भिन्न हैं। दक्षिण दिशा के इंद्र को दक्षिणार्ध भवनपति इंद्र व उत्तर दिशा के इंद्र को उत्तरार्ध भवनपति इंद्र कहते हैं। इस तरह 10 इंद्र उत्तरार्ध के व 10 दक्षिणार्ध के मिलकर भवनपति देवों के 20 इंद्र होते हैं। भवनपति देवों के प्रत्येक इन्द्र को 33 त्रायस्त्रिंशक देव, 4 लोकपाल, 4 सपरिवार अग्रमहिषियाँ, 3 परिषद्, 7 सेना, 7 सेनाधिपति होते हैं। उत्तर-दक्षिण के असुरकुमार इन्द्रों को क्रमशः 60,000 और 64,000 सामानिक देव और उससे चार गुणे अधिक आत्मरक्षक देव होते हैं। शेष नवनिकाय देवेन्द्रों के छह-छह हजार सामानिक देव और उससे चार गुणा आत्मरक्षक देव हैं।

चित्र क्र. 19 : रत्नप्रभा पृथ्वी के प्रस्तर-अंतर और भवनपति वाणव्यन्तर देवों के आवास

भवनपतियों के भवन—दक्षिणार्ध भवनपति इंद्रों के कुल भवन 4 करोड़ 6 लाख तथा उत्तरार्ध भवनपति इंद्रों के 3 करोड़ 66 लाख भवन हैं। अर्थात् कुल 7,72,00,000 भवन होते हैं। ये सभी भवन बाहर से गोल एवं अंदर से सम चतुष्कोण (चौरस) और तल में पुष्कर कर्णिका के आकार के हैं। ये सभी रत्नमय महाप्रकाश युक्त और समस्त सुख सामग्रियों से परिपूर्ण हैं। इनमें छोटा से छोटा भवन जंबूद्वीप के बराबर है अर्थात् एक लाख योजन का है और सबसे बड़ा भवन असंख्यात द्वीप समुद्रों के बराबर अर्थात् असंख्यात योजन का है। संख्यात योजन के भवन में संख्यात देव-देवियों का और असंख्यात योजन के भवन में असंख्यात देव-देवियों का निवास है। **(चित्र क्रमांक 19)**

भवनपति देवों की तालिका								
भवनपति का नाम	देह वर्ण	वस्त्र वर्ण	चिह्न	उत्तरार्ध इन्द्र	भवन	दक्षिणार्द्ध इन्द्र	भवन	कुल भवन
1. असुरकुमार	श्याम	लाल	चुड़ामणी	बलीन्द्र	30 लाख	चमरेन्द्र	34 लाख	64 लाख
2. नागकुमार	अतिश्वेत	हरा	सर्प	भूतानेन्द्र	40 लाख	धरणेन्द्र	44 लाख	84 लाख
3. स्वर्णकुमार	कनक गौर	सफेद	गरूड़	वेणुदालीन्द्र	34 लाख	वेणुदेवेन्द्र	38 लाख	72 लाख
4. विद्युतकुमार	लाल	हरा	वज्र	हरिसहेन्द्र	36 लाख	हरिकान्तेन्द्र	40 लाख	76 लाख
5. अग्निकुमार	लाल	हरा	कलश	अग्निमाणवेन्द्र	36 लाख	अग्निशिखेन्द्र	40 लाख	76 लाख
6. द्वीपकुमार	लाल	हरा	सिंह	विशिष्ठेन्द्र	36 लाख	पूर्णेन्द्र	40 लाख	76 लाख
7. उदधिकुमार	श्वेत	हरा	मगर	जलप्रभेन्द्र	36 लाख	जलकान्तेन्द्र	40 लाख	76 लाख
8. दिक्कुमार	स्वर्ण जैसा	श्वेत	हाथी	अमिवाहनेन्द्र	36 लाख	अमीतगतेन्द्र	40 लाख	76 लाख
9. पवनकुमार	हरा	गुलाबी	अश्व	प्रभंजनेन्द्र	46 लाख	वेलम्भेन्द्र	50 लाख	96 लाख
10. स्तनित कुमार	स्वर्ण जैसा	सफेद	शराव युगल	महाघोषेन्द्र	36 लाख	घोषेन्द्र	40 लाख	76 लाख

❐ परमाधर्मी देव

परमाधर्मी असुरकुमार देवों की एक निम्न जाति है। ये बहुत क्रूर स्वभाव वाले, निन्द्य प्रवृत्ति वाले और कुतूहलप्रिय होते हैं। इन्हें दूसरों को सताने व परेशान करने में आनंद मिलता है। ये प्रथम तीन नरकों में जाकर नारकी जीवों को भयंकर दु:ख और यातना देते हैं। इसलिये इन्हें परम अधार्मिक='**परमाधर्मी**' या '**यमपुरूष**' कहा जाता है। **(चित्र क्रमांक 20)** इनके नाम और कार्य इस प्रकार हैं—

(1) **अम्ब**—ये नारकी जीवों को आकाश में ले जाकर नीचे पटक देते हैं।

(2) **अम्बरीश**—ये छूरी वगैरह से नारकी जीवों के छोटे-छोटे टुकड़े कर देते हैं।

(3) **श्याम**—ये रस्सी या लात-घूसों से नारकी जीवों को मारकर भयंकर कष्टकारी स्थानों में ले जाकर पटक देते हैं।

(4) **शबल**—ये नारक जीवों के शरीर की आँतें, नसें और कलेजे आदि को बाहर निकाल लेते हैं।

(5) **रूद्र**—ये भाला-बर्छी आदि नुकीले शस्त्रों में नारकों को पिरो देते हैं।

(6) **उपरूद्र**—ये नारकों के अंगोपांगों को फाड़ देते हैं।

(7) **काल**—ये नारकों को कड़ाही में पकाते हैं।

(8) **महाकाल**—ये नारकों के माँस के खण्ड-खण्ड करके उन्हें जबर्दस्ती खिलाते है।

(9) **असिपत्र**—ये अपनी वैक्रिय शक्ति द्वारा तलवार जैसे तीक्ष्ण पत्तों वाले वृक्षों का वन बनाकर उनके पत्ते नारकों पर गिराते हैं और नारकों के शरीर के तिल जितने छोटे-छोटे टुकड़े कर डालते हैं।

(10) **धनुष**—ये धनुष से तीखे बाण फैंककर नारकों के कान, नाक आदि अवयवों का छेदन करते है।

15 प्रकार के परमाधार्मिक देव

(1) अम्ब

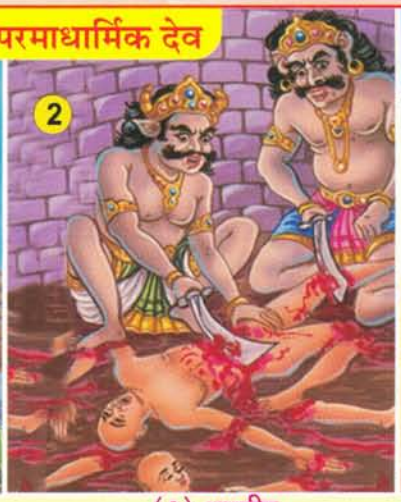

(2) अम्बरीष

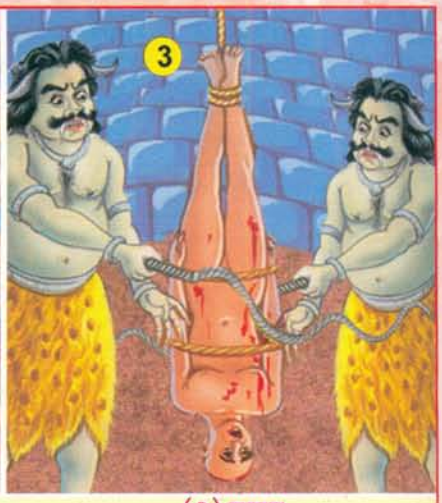

(3) श्याम

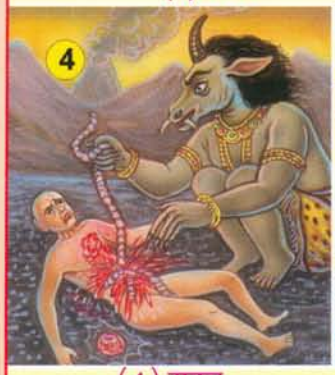

(4) सबल

(5) रुद्र (रौद्र)

(6) महारुद्र (महारौद्र)

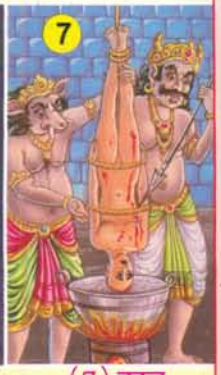

(7) काल

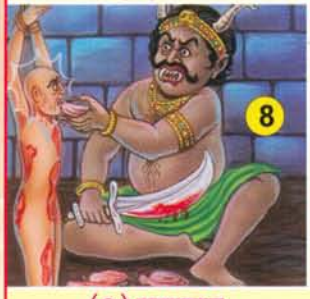

(8) महाकाल

(9) ईसिपत्र

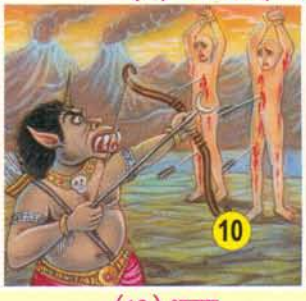

(10) धनुष

(11) कुम्भ

(12) बालुक

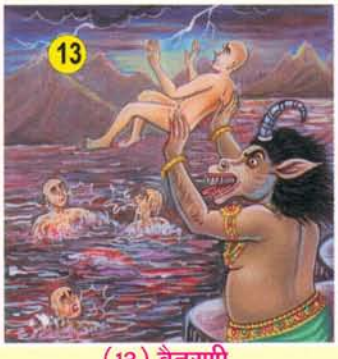

(13) वैतरणी

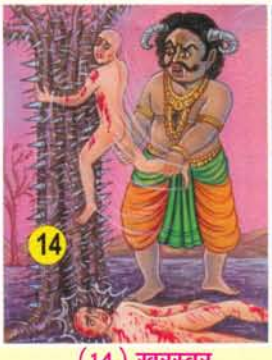

(14) खरस्वर

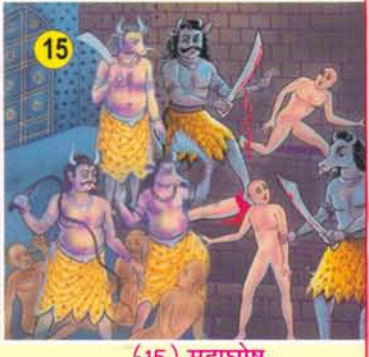

(15) महाघोष

चित्र क्र. 20

(11) **कुम्भ**—ये नारकियों को नींबू की तरह चीर-फाड़ कर उसमें नमक मिर्च आदि भरकर कुम्भी में पकाते हैं।

(12) **बालुक**—ये भड़भूंजे की तरह नारकियों के शरीर को उष्ण रेती में चने आदि की तरह भूंजते हैं।

(13) **वेतरणी**—ये असुर वेतरणी नदी पर ले जाकर नारकियों को शिला पर पछाड़-पछाड़कर मारते हैं तथा माँस रूधिर आदि पदार्थो से उबलती हुई नदी में नारकियों को फैंक देते है।

(14) **खरस्वर**—ये देवता शाल्मलि वृक्षों पर नारकियों को बिठलाकर हवा चलाते हैं उनके तीखें पत्तो से नारकियों के अंग कट जाते हैं। कई बार शाल्मलि वृक्षों पर चढ़ाकर करूण चीत्कार करते हुए नारकियों को खींचते हैं।

(15) **महाघोष**—ये देव घोर अन्धकार से व्याप्त संकरे कोठे में नारकियों को ठूँस-ठूँस कर खचाखच भरते हैं और वहीं रोक रखते हैं।

परमाधर्मी देवों में ऐसे जीव जन्म लेते है, जो अग्नि, जल और वनस्पति के अनन्त जीवों की घात करके अज्ञानतप करते हैं। वे स्वल्प पुण्यों के उदय से मरकर निम्न जाति के परमाधर्मी देव बन जाते हैं तथा पूर्व जन्म के कुसंस्कारों से प्रेरित होकर नारकी जीवों को दुख देते हैं।

परमाधर्मी देवों की जलचर मनुष्यों में उत्पत्ति

नारकी जीवों को दु:ख देने वाले परमाधर्मी देव भी मरकर सूअर, बकरे, मुर्गे आदि नीच योनियों में उत्पन्न होते हैं अथवा अंडगोलिक जलचर मनुष्य बनते हैं। ग्रंथों में इन मनुष्यों के विषय में ऐसा वर्णन आता है कि ये श्यामवर्णी, कठोर स्पर्शी और घोर भयानक दृष्टि वाले वज्रऋषभनाराच संघयण के धारक महापराक्रमी माँस-मदिरा और स्त्री लोलुपी होते हैं। ये साढ़े 12 हाथ की अवगाहना और संख्यात वर्ष की आयु वाले होते हैं।

ये जलचर मनुष्य सिंधुनदी जहाँ लवण समुद्र में मिलती है, वहाँ से दक्षिण दिशा में 55 योजन दूर एक वेदिका में 12½ योजन लम्बी जगह पर 47 अंधकारमय गुफाओं में जन्म लेते हैं। वहाँ समुद्र की गहराई 3½ योजन है।

यहाँ से 31 योजन दूर रत्नद्वीप है। वहाँ के मनुष्य वज्र निर्मित घट्टियों को माँस-मदिरा से लिप्तकर तूंबों से बने वाहन में डालकर समुद्र में आते हैं। माँसलोलुपी जलचर मनुष्य माँस-मदिरा के लालच में उन घट्टियों में गिरते हैं। रत्नद्वीपवासी मनुष्य दो-तीन दिन के पश्चात् शस्त्रसज्जित होकर वहाँ आते हैं और उन घट्टियों को चारों ओर से घेर लेते हैं। घट्टियों को एक वर्ष तक घुमाने पर भी उनकी हड्डियाँ टूटती नहीं हैं। इतने समय तक भयंकर वेदना को सहन करने के बाद वे मृत्यु प्राप्त करके नरक में उत्पन्न होते हैं।

रत्नद्वीपवासी उनके शरीर से अंडगोलिक को निकालकर चमरी गाय की पूँछ के बाल से गूँथकर कान में लटकाते हैं और रत्न प्राप्त करने के लिये समुद्र में प्रवेश करते हैं। अंडगोलिक के प्रभाव से मत्स्य आदि जलचर जीव उन्हें तकलीफ नहीं देते और वे सुखपूर्वक रत्न प्राप्त कर लेते हैं।

इस प्रकार परमाधर्मी देव अनेक क्षुद्रयोनियों में असंख्य या अनन्तकाल परिभ्रमण करते रहते हैं।

अध्याय 3 : मध्यलोक

मध्यलोक एक राजू प्रमाण लंबा-चौड़ा 1800 योजन की ऊँचाई वाला तथा दस राजू घनाकार विस्तार वाला है। समतल भूमि अर्थात् मेरुपर्वत के मध्य में स्थित आठ रूचक प्रदेशों से 900 योजन ऊपर और 900 योजन नीचे इस प्रकार कुल 1800 योजन का क्षेत्र '**मध्यलोक**' कहलाता है। मध्यलोक में जंबूद्वीप से लेकर स्वयंभूरमण समुद्र पर्यंत असंख्यात द्वीप समुद्र एक राजू प्रमाण तिर्यक् समभूमि पर तिरछे व्यवस्थित हैं, अत: इसे '**तिर्यक्लोक**' या '**तिरछालोक**' भी कहते हैं। इसके अलावा मुख्य रूप से मनुष्यों का निवास स्थान यहाँ होने से इसे '**मनुष्यलोक**' भी कहा जाता है।

मध्यलोक में 790 योजन ऊपर से लेकर 900 योजन क्षेत्र में ज्योतिष्क चक्र अवस्थित है। नीचे के 900 योजन में 10 योजन नीचे से लेकर 800 योजन तक के क्षेत्र में वाणव्यन्तर और व्यन्तर देवों के आवास हैं। इन दोनों के बीच अर्थात् रत्नप्रभा पृथ्वी की छत पर मनुष्य और तिर्यंचों का निवास है।

❐ व्यंतर व वाणव्यन्तर देव

'वि' अर्थात् विविध प्रकार के 'अंतर' अर्थात् आश्रय जिनके हों, वे व्यंतर हैं। भवन, नगर और आवासों में विविध जगहों पर रहने के कारण ये देव '**व्यंतर**' कहलाते हैं तथा जो देव वनों के विविध पर्वतान्तरों, कंदरान्तरों आदि आश्रयों में रहते है, और वन में परिभ्रमण करने के शौकिन होते हैं, वे **वाणव्यंतर देव** हैं।

❐ व्यंतरों के आवास

ये दोनों जाति के देव चंचल स्वभाव के होते हैं। इन्हें गीत, नृत्य, संगीत बहुत प्रिय होता है। अत: अपने मनोहर नगरों में देवियों के साथ नृत्य गान करते हुए पूर्वोपार्जित पुण्यों के फल का अनुभव करते हुए विचरते हैं। इनके आवास समतल भूमि के नीचे 900 योजन तक है यह क्षेत्र मध्यलोक में आता है। अर्थात् रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊपर का जो एक हजार योजन का पृथ्वीपिंड है, उसमें ऊपर-नीचे 100-100 योजन छोड़कर शेष 800 योजन की पोलार में असंख्यात सुंदर नगर हैं, वे असंख्यात द्वीप-समुद्र तक फैले हुए हैं इनमें 8 प्रकार के व्यंतर जाति के देव रहते हैं। जैसे—(1) **पिशाच**, (2) **भूत**, (3) **यक्ष**, (4) **राक्षस**, (5) **किन्नर**, (6) **किंपुरूष**, (7) **महोरग** एवं (8) **गन्धर्व** तथा ऊपर के 100 योजन में 10 योजन ऊपर और 10 योजन नीचे छोड़कर बीच में 80 योजन की पोलार में भी असंख्यात नगर हैं और इन नगरों में आठ प्रकार के 'वाणव्यंतर जाति' के देव रहते है। उनके नाम हैं—(1) **आनपन्नी**, (2) **पानपन्नी**, (3) **इसीवाइ**, (4) **भूइवाइ**, (5) **कन्दिय**, (6) **महाकन्दिय**, (7) **कोहण्ड**, (8) **पयंग देव**। **(चित्र क्रमांक 21)**

व्यंतर और वाणव्यंतरों के आवास अति विस्तृत होते हैं। इनका छोटा से छोटा नगर भरतक्षेत्र के बराबर मध्यम महाविदेह क्षेत्र के बराबर और बड़ा से बड़ा जंबूद्वीप के बराबर है। ये सभी नगर बाहर से गोल अन्दर से चौरस तथा नीचे कमल कर्णिका के आकार में संस्थित हैं। उनके चारों ओर विस्तृत खाईयाँ हैं।

व्यंतर देवों की ऋद्धि—स्थान की अपेक्षा से इन दोनों जाति के देवों के दो-दो विभाग हैं—दक्षिण विभाग और उत्तर विभाग। इन विभागों में रहने वाले 16 प्रकार के देवों की एक-एक जाति में दो-दो इन्द्र हैं, अत: कुल 32 इन्द्र हैं। प्रत्येक इन्द्र के 4-4 हजार सामानिक देव, 16-16 हजार आत्मरक्षक देव, 4-4 अग्रमहिषियाँ हैं। प्रत्येक अग्रमहिषी के एक-एक हजार का परिवार है। सात अनीक हैं, तीन परिषद् हैं। आभ्यंतर परिषद् के 8000 देव, मध्यम परिषद् के 10 हजार देव और बाह्य परिषद् के 12 हजार देव हैं।

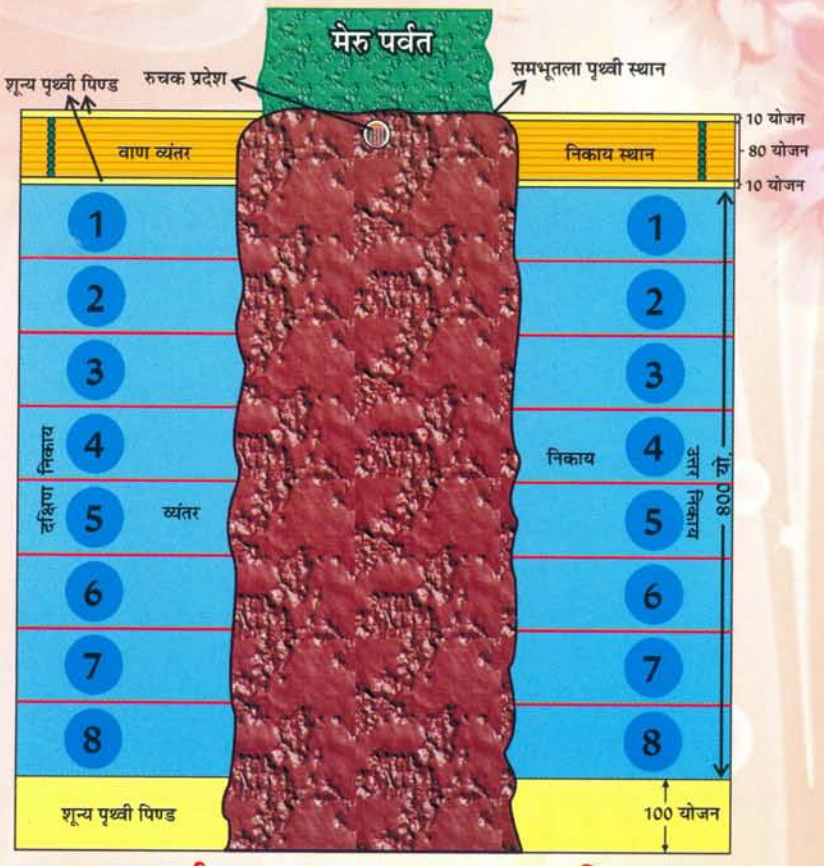

समभूतला पृथ्वी स्थान तथा वाणव्यन्तर व्यन्तर निकाय स्थान

चित्र क्र. 21

आभ्यंतर परिषद् को '**ईशा**', मध्यम परिषद् को '**त्रुटिता**' और बाह्य परिषद् को '**दृढ़रथा**' कहा जाता है। तीनों परिषद् में देवियों की संख्या 100-100 है। इन सभी देवों की आयुष्य जघन्य 10 हजार वर्ष की और उत्कृष्ट 1 पल्योपम की है। देवियों की आयु जघन्य 10 हजार वर्ष की और उत्कृष्ट अर्द्ध पल्योपम की है।

व्यंतर देवों में उत्पत्ति के कारण—गले में फाँसी लगाकर मरने वाले, विष भक्षण कर मरने वाले, किसी के विरह में दु:खी होकर मरने वाले, नदी तालाब में डूबकर मरने वाले, पर्वत के शिखर से गिरकर मरने वाले व्यक्ति प्राय: व्यंतर जाति में पैदा हो जाते हैं। पशु-पक्षी भी भूख-प्यास न सह सकने की स्थिति में मरकर व्यंतर में उत्पन्न हो जाते हैं। अकाल मृत्यु के कारण देवयोनि में जन्म लेने के बाद भी इनका स्वभाव भटकने का ही होता है। अत: ये अपने नगरों से निकलकर मनुष्य क्षेत्र में भटकते रहते हैं। जहाँ इन्हें अच्छा लगा, वहीं निवास कर लेते हैं। वृक्ष की कोटर, बगीचे, कुएँ, बावड़ी या पर्वत की कंदरा, गुफा, जीर्ण-शीर्ण मकान आदि जो भी जगह इन्हें पसंद आ जाय, वहीं अपना अड्डा जमा लेते हैं। किन्तु सभी व्यंतर देव इस स्वभाव वाले नहीं होते, क्योंकि तीर्थंकर भगवान के यक्ष-यक्षिणी, **घंटाकर्ण**, **मणिभद्र**, **क्षेत्रपाल**, **भैरव**, **छप्पन दिशाकुमारियाँ**, **चक्रेश्वरी पद्मावती**, **सरस्वती** और **लक्ष्मी** आदि देव-देवियाँ भी **व्यंतरनिकाय** के ही मान जाते हैं। अत: इस पर यह अनुमान किया जा सकता है कि सभी व्यंतर देव-देवी दुष्ट नहीं होते, बल्कि सात्त्विक विचार वाले सम्यग्दृष्टि भी होते हैं। क्षेत्रसमास और भगवतीसूत्र की टीका में सरस्वती देवी को इन्द्र की अग्रमहिषी कहा है।

व्यंतर देवों की तालिका

800 योजन के प्रथम प्रतर के 8 जाति के व्यन्तर देवों का यन्त्र			80 योजन की दूसरी प्रतर के 8 जाति के वाणव्यन्तर देवों का यन्त्र			दोनों प्रतरों के देवों के शरीर का वर्ण और मुकुट का चिह्न	
8 व्यन्तर देवों के नाम	दक्षिण दिशा के इन्द्र के नाम	उत्तर दिशा के इन्द्र के नाम	8 वाण व्यन्तर देव के नाम	दक्षिण दिशा के इन्द्र के नाम	उत्तर दिशा के इन्द्र के नाम	शरीर का वर्ण	मुकुट का चिह्न
1. पिशाच	काल	महाकाल	9. आनपन्नी	सन्निहितेन्द्र	सन्मानेन्द्र	श्याम	कदंब वृक्ष
2. भूत	सुरूप	प्रतिरूप	10. पानपन्नी	धातेन्द्र	विधातेन्द्र	श्याम	शालि वृक्ष
3. यक्ष	पूर्णभद्र	मणिभद्र	11. ईसीवाई	ईसीन्द्र	इसीपतेन्द्र	श्याम	वट वृक्ष
4. राक्षस	भीम	महाभीम	12. भूइवाई	ईल्वरेन्द्र	मेहेश्वरेन्द्र	श्वेत	पाटली वृक्ष
5. किन्नर	किन्नर	किंपुरूष	13. कंदीये	सुवच्छेन्द्र	विशालेन्द्र	हरा	अशोक वृक्ष
6. किंपुरूष	सुपुरूष	महापुरूष	14. महाकंदिये	हास्येन्द्र	हास्यरतीन्द्र	श्वेत	चंपक वृक्ष
7. महारोग	अतिकाय	महाकार्य	15. कोहंड	श्वेतेन्द्र	मेह वेतेन्द्र	श्याम	नाग वृक्ष
8. गंधर्व	गीतरति	गीतयश	16. पयंगदेव	पहेगेन्द्र	पहंगपतेन्द्र	श्याम	तुम्बरू वृक्ष

नोट—ये सभी इन्द्र महापराक्रमी, संपूर्ण सुखी, अतिऋद्धिवन्त एवं अपूर्व सामर्थ्य से युक्त होते है। चौथे राक्षस निकाय का चिह्न खट्वांग (भिक्षा पात्र) आकार का है, शेष सभी के चिह्न विविध जाति वाले वृक्ष है।

☐ मेरूपर्वत

मध्यलोक में जंबूद्वीप आदि असंख्यात द्वीप-समुद्र हैं, उन सब के मध्य केन्द्र में एक लाख योजन का सुदर्शन मेरूपर्वत है। यह मल्लस्तम्भ अथवा गाय की पूंछ की आकृति का नीचे चौड़ा ऊपर क्रमशः संकड़ा होता गया है। मूल में $10,090^{10/11}$ योजन तथा भूमितल पर 10 हजार योजन चौड़ा है। उसके बाद चौड़ाई में क्रमशः घटते-घटते ऊपर शिखर भाग पर 1,000 योजन चौड़ा रह जाता है। इसकी परिधि मूल में $31,910^{3/19}$ योजन, भूमितल पर 31,623 योजन तथा ऊपरी तल पर कुछ अधिक 3,162 योजन की है। यह 99 हजार योजन पृथ्वी के ऊपर है और 1,000 योजन पृथ्वी के नीचे है। पृथ्वी के अंदर के भाग की चौड़ाई सर्वत्र 1,000 योजन हैं। मेरू का 100 योजन का भाग अधोलोक में, 1,800 योजन का भाग मध्यलोक में तथा 98,100 योजन का भाग ऊर्ध्वलोक में है। इस प्रकार यह लोक की नाभि के समान ऊर्ध्व, मध्य और अधो तीनों लोकों का स्पर्श करता है। यह सर्वरत्नमय, स्वच्छ, सुकोमल है तथा एक पद्मवरवेदिका व एक वनखण्ड से चारों ओर से घिरा हुआ है।

समझने की दृष्टि से इस पर्वत को तीन कांडों/भागों में बाँटा गया है—**1. प्रथम काण्ड**—पृथ्वी के भीतर मृत्तिका, पाषाण, कंकर और वज्ररत्नमय है जो एक हजार योजन का है। **2. दूसरा कांड**—पृथ्वी पर स्फटिकरत्न, अंकरत्न, रूप्य और सुवर्णमय है, वह 63 हजार योजन का है। **3. तीसरा कांड**—पृथ्वी के ऊपर रक्त सुवर्णमय है, वह 36 हजार योजन का है। इस प्रकार 1,000 + 63,000 + 36,000 = 1,00,000 योजन ऊँचा मेरू पर्वत है। **(चित्र क्रमांक 22)**

मेरू पर्वत के चार वन—मेरू पर्वत पर चार वन हैं—**(1) भद्रशाल वन, (2) नन्दनवन, (3) सोमनस वन एवं (4) पंडकवन।**

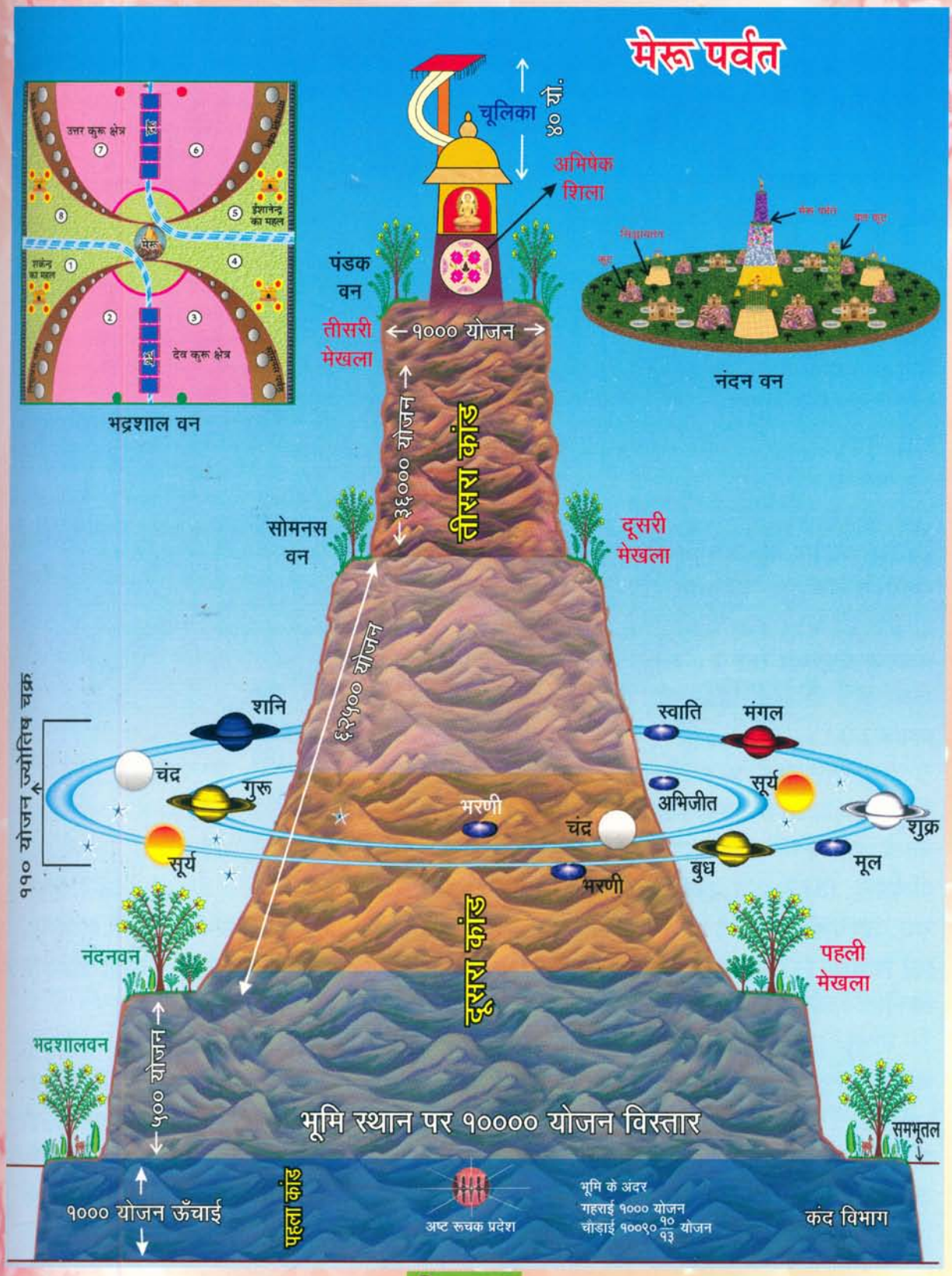
मेरू पर्वत
चूलिका
४० यो.
अभिषेक शिला
पंडक वन
तीसरी मेखला
← १००० योजन →
३६००० योजन
तीसरा कांड
सोमनस वन
दूसरी मेखला
६३५०० योजन
दूसरा कांड
नंदनवन
पहली मेखला
भद्रशालवन
५०० योजन
पहला कांड
भूमि स्थान पर १०००० योजन विस्तार
१००० योजन ऊँचाई
समभूतल
भूमि के अंदर
गहराई १००० योजन
चौड़ाई १००९०$\frac{१०}{१३}$ योजन
अष्ट रूचक प्रदेश
कंद विभाग
उत्तर कुरू क्षेत्र
देव कुरू क्षेत्र
ईशानेन्द्र का महल
शक्रेन्द्र का महल
मेरू
भद्रशाल वन
नंदन वन
शनि
चंद्र
गुरू
सूर्य
भरणी
स्वाति
मंगल
अभिजीत
सूर्य
चंद्र
शुक्र
बुध
मूल
भरणी
११० योजन ज्योतिष चक्र

चित्र क्र. 22

(1) भद्रशाल वन—मेरूपर्वत का 1,000 योजन का भाग जो भूमि के अंदर है उसे 'कंद' कहा गया है। पर्वत जैसे ही भूमि के बाहर आया है वहाँ प्रथम भद्रशालवन हैं। इसे मेरूपर्वत की तलहटी भी कहते हैं। यह **'समभूतला पृथ्वी'** कहलाती है, क्योंकि लोक का संपूर्ण विभाग-माप यहीं से किया जाता है। यह वन पूर्व-पश्चिम 22-22 हजार योजन लम्बा और उत्तर-दक्षिण में 250-250 योजन चौड़ा है। **सोमनस, विद्युत्प्रभ, गंधमादन** तथा **माल्यवान्** नामक चार वक्षस्कार पर्वतों तथा **शीता-शीतोदा** महानदी के द्वारा यह वन आठ भागों में विभक्त है।

भद्रशालवन में चारों दिशाओं में 50-50 योजन आगे जाने पर 50 योजन लम्बा, 25 योजन चौड़ा तथा 36 योजन ऊँचा सैंकड़ों स्तम्भों वाला **सिद्धायतन** है तथा चारों विदिशाओं में चार-चार पुष्करणियाँ है। उत्तर-पूर्व (ईशान कोण) तथा उत्तर-पश्चिम (वायव्य कोण) में चार पुष्करणियों के मध्य 500 योजन ऊँचे और 250 योजन चौड़े देवराज ईशानेन्द्र के उत्तम आवास हैं। इसी प्रकार दक्षिण-पूर्व (आग्नेय कोण) एवं दक्षिण-पश्चिम (नैऋत्य कोण) में शकेन्द्र महाराज सपरिवार रहते हैं। वे आवास 500 योजन ऊँचे और 250 योजन चौड़े हैं। **(चित्र क्रमांक 23)**

भद्रशाल वन और उसके आठ विभाग

चित्र क्र. 23

भद्रशालवन में मेरू पर्वत के पास आठ हस्तिकूट (हाथी के आकार के पर्वत) भी बताये है। इनमें **(1) पद्मोत्तर, (2) नीलवान्, (3) सुहस्ती, (4) अंजनगिरी ये चार 'दिशा हस्तिकूट' है। ये चारों मेरू पर्वत के उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम में है तथा (5) कुमुद, (6) पलाश, (7) अवतंस, (8) रोचनगिरि**—ये चार **'विदिशा हस्तिकूट'** कहे गये है। ये नैऋत्य वायव्य, आग्नेय और ईशान कोण में हैं। इनमें अपने-अपने नामानुरूप देवों का आधिपत्य है।

(2) नन्दनवन—यह भद्रशालवन के समतल भूमिभाग से 500 योजन ऊपर वलयाकार-कंकण के समान गोल तथा मध्य में खाली है। सब ओर से समान विस्तार की अपेक्षा से 500 योजन का है, मेरूपर्वत को चारों ओर से घेरा हुआ है। नंदनवन के बाहर मेरूपर्वत का विस्तार $9954/\frac{6}{11}$ योजन है। नंदनवन से बाहर उसकी परिधि कुछ अधिक 32,479 योजन है। नंदनवन के भीतर उसका विस्तार $8944/\frac{6}{11}$ योजन व परिधि $28316/\frac{8}{11}$ योजन है। यहाँ भी चारों दिशाओं में सिद्धायतन तथा विदिशाओं में पुष्करणियाँ है। नंदनवन में विभिन्न दिशाओं में नौ कूट हैं, जैसे—**(1) नन्दनवनकूट, (2) मन्दरकूट, (3) निषधकूट, (4) हिमवत्कूट, (5) रजतकूट, (6) रूचककूट, (7) सागरचित्रकूट, (8) वज्रकूट तथा (9) बलकूट।** बलकूट 1,000

नंदनवन

चित्र क्र. 24

योजन ऊँचा है, जिसका स्वामी बल नामक देव है। शेष सभी कूट 500 योजन ऊँचे है। इन पर 8 दिशाकुमारियों के आवास हैं। कुमारियों की तरह सदा क्रीड़ाप्रिय होने से तथा लावण्यमयी होने के कारण इन्हें दिक्कुमारियाँ कहते हैं। समभूमि से 500 योजन ऊपर नंदनवन है और दिक्कुमारियों के कूट 500 योजन ऊँचे होने से उसके ऊपर रहे हुए दिक्कुमारियों के आवास समभूमि से 1,000 योजन ऊँचे हैं। मध्यलोक समभूमि से ऊपर 900 योजन तक माना गया है, इसलिये ये दिक्कुमारिकाएँ ऊर्ध्वलोक वासिनी कहलाती है। **(चित्र क्रमांक 24)**

(3) सौमनस वन—सौमनस वन नन्दनवन से 62,500 योजन ऊपर जाने पर 500 योजन विस्तीर्ण क्षेत्र पर है। नंदनवन के समान ही यह भी वलयाकार और मेरूपर्वत को चारों ओर से परिवेष्टित किए हुए है। पर्वत के बाहर का विस्तार $4272/\frac{8}{11}$ योजन का एवं भीतर का विस्तार $3272/\frac{8}{11}$ योजन का है। पर्वत के बाहर की परिधि $13511/\frac{6}{11}$ योजन तथा भीतर $10349/\frac{3}{11}$ योजन की है। यह वन काले, नीले पत्तों वाले वृक्षों के कारण नीली आभा वाला है। इस पर कूट नहीं है। शक्रेन्द्र, ईशानेन्द्र एवं अनेक देव-देवियों की यह आश्रयस्थली है।

(4) पण्डकवन—यह वन सौमनस वन से 36 हजार योजन ऊपर जाने पर मेरूपर्वत को चारों ओर से वेष्टित करके वलयाकार रूप से सुशोभित हो रहा है। यह 494 योजन विस्तार वाला गोल है। इसकी परिधि कुछ अधिक 3162 योजन की है। यहीं पर अभिषेक-शिलाएँ है। जहाँ तीर्थंकरों का 64 इन्द्रों द्वारा जन्मोत्सव मनाया जाता है।

अभिषेक शिलाएँ—ये अभिषेक शिलाएँ चारों दिशाओं में चार हैं। चारों शिलाएँ 500 योजन लम्बी, 250 योजन मध्य में चौड़ी एवं 9 योजन मोटी है। सभी शिलाएँ अर्धचन्द्राकार है। इनमें दो श्वेतस्वर्णमयी और दो रक्तस्वर्णमयी है।

पूर्व में 'पांडुकशिला' है, यहाँ दो सिंहासन हैं। उन पर जंबूद्वीप के पूर्व महाविदेह में जन्में दो तीर्थकरों का जन्मोत्सव मनाया जाता है। दक्षिण में **पाण्डुकम्बल शिला** पर एक सिंहासन हैं। वहाँ भरत क्षेत्र में उत्पन्न तीर्थंकर का जन्मोत्सव होता है। पश्चिम दिशा की '**रक्तशिला**' पर दो सिंहासन है। वहाँ पश्चिम महाविदेहोत्पन्न दो तीर्थंकरों का तथा उत्तर दिशा की '**रक्तकम्बलशिला**' पर एक सिंहासन है वहाँ ऐरावत क्षेत्र में उत्पन्न एक तीर्थंकर का जन्मोत्सव मनाया जाता है। अत: एक साथ या तो दो या चार सिंहासनों पर जन्मोत्सव होता है। भरत-ऐरावत क्षेत्र में जब तीर्थकर का जन्म होता है तब महाविदेह में नहीं होता, क्योंकि तीर्थंकर सदा मध्यरात्रि में ही जन्म लेते हैं और भरत-ऐरावत क्षेत्र में जब रात्रि होती है, तब महाविदेह क्षेत्र में दिन होता है। यह बात प्रथम खंड में स्थित अयोध्या नगरी की अपेक्षा से कही गई प्रतीत होती है। अत: एक समय में या तो भरत-ऐरावत के दो तीर्थकरों का जन्मोत्सव होता है अथवा महाविदेह के चार भागों में एक-एक तीर्थंकर, ऐसे चार तीर्थंकरों का। **(चित्र क्रमांक 25)**

तीर्थंकर जन्मोत्सव विधि— सर्वप्रथम अधोलोकवासिनी आठ दिशाकुमारियाँ आसन चलायमान होने का संकेत पाकर तीर्थंकर के जन्मनगर में सामानिक देव-देवियों के साथ विमान से आती हैं। देव-देवी जन्म-भवन के पास रुकते हैं। दिशाकुमारियाँ अंदर जाकर तीर्थंकर की माता को प्रणाम कर अपना परिचय देती

चित्र क्र. 25

हैं। आने का कारण बताते हुए, भयभीत न होने का निवेदन करती हैं। फिर उस नगरी व आस-पास के एक योजन प्रमाण क्षेत्र की सफाई कर मंगलगीत गाती हैं।

ऊर्ध्वलोक के मेरूपर्वत के नंदनवन से भी आठ दिशाकुमारियाँ इसी प्रकार आकर नगरी में सुगंधित जल व पुष्पवृष्टि करती हैं। रूचक द्वीप के पूर्व, पश्चिम, उत्तर व दक्षिण दिशा में रहने वाली 8-8 दिशाकुमारियाँ भी क्रमशः दर्पण, झारी, पंखा व चामर लेकर अपनी-अपनी दिशा में खड़ी रहती हैं। चार विदिशाओं की कुमारियाँ भी चारों विदिशा में दीपक लेकर खड़ी रहती हैं। फिर मध्य रूचक पर्वतवासिनी चार दिशाकुमारियाँ इसी विधि से आकर तीर्थंकर के नाभिनाल को चार अंगुल छोड़कर काटती हैं और गड्ढा खोदकर गाड़ती हैं। गड्ढे को रत्नों से पूरित कर उस पर चबूतरा बनाती है, फिर उसकी तीन दिशाओं में कदली गृह व उनमें सिंहासन की रचना करती हैं। दक्षिण दिशा के सिंहासन पर तीर्थंकर व माता का उबटन करती हैं, पूर्वी सिंहासन पर स्नान कराती हैं, उत्तरी सिंहासन पर चंदन का हवन कर राख की पोटली से रक्षासूत्र बाँधती हैं तथा दीर्घायु होने का आशीर्वाद देती हैं। उक्त कृत्य के बाद दोनों को यथास्थान लाकर सुला देती हैं। इस प्रकार 8 अधोलोक से, 8 ऊर्ध्वलोक और 40 रूचक द्वीप से कुल 56, दिशाकुमारियाँ तीर्थकर का शुचिकर्म करती हैं।

तत्पश्चात् सौधर्मेन्द्र स्वयं तीर्थंकरों के जन्म स्थान पर जाकर पाँच रूप धारण करते हैं। एक रूप से भगवान को हाथ में उठाते हैं। दूसरे रूप से आगे वज्र लेकर चलते हैं। तीसरे रूप से पीछे छत्र लेकर चलते हैं एवं दो रूप से दायें-बायें चमर लेकर चलते हैं। इस प्रकार पाँच रूपों में सौधर्मेन्द्र भगवान को मेरूपर्वत पर लाकर अपनी गोद में बिठाते है, शेष इन्द्र सीधे ही मेरूपर्वत पर आते हैं, फिर अच्युतेन्द्र अर्थात् बारहवें देवलोक के इन्द्र के आदेश से जन्मोत्सव प्रारम्भ होता है। जन्माभिषेक हेतु इन्द्रों के आदेश से देव क्षीरसमुद्र से विविध जाति के कलशों में जल भरकर लाते हैं। ये सभी कलश 25 योजन ऊँचे, 12 योजन चौड़े, 1 योजन गहरे होते हैं। इनमें (1) सोने के, (2) चाँदी के, (3) रत्न के, (4) रत्न + सोने के, (5) रत्न + चाँदी के, (6) सोना + चाँदी के, (7) रत्न + सोना + चाँदी के, और (8) मिट्टी के—इस प्रकार आठ जाति के महाकलश 8,000 - 8,000 होते हैं। कुल 8 × 8,000 = 64,000 कलश होते हैं। इन एक-एक कलश के 250 अभिषेक किए जाते हैं। अतः 64,000 × 250= 1,60,00,000 (एक करोड़ साठ लाख) अभिषेक तीर्थंकर के होते हैं।

मेरु की चूलिका—पण्डकवन के मध्य केन्द्र में '**मन्दर**' नामक 40 योजन ऊँची चूलिका-चोटी है, जो मूल में 12 योजन, मध्य में 8 योजन तथा ऊपर 4 योजन चौड़ी है। इसका आकार गाय की पूँछ सदृश है। यह वैडूर्य (नीलम) रत्नमय व उज्जवल है। चूलिका के ऊपर सिद्धायतन है।

मेरूपर्वत के नाम—मेरूपर्वत के 16 नाम हैं—(1) **मन्दर**—मंदर देव के कारण, (2) **मेरू**—केन्द्र स्थान में होने से, (3) **मनोरम**—मन को रमण कराने के कारण, (4) **सुदर्शन**—दर्शन सुंदर होने के कारण, (5) **स्वयंप्रभ**—स्वयं प्रकाश्य होने से, (6) **गिरिराज**—सभी पर्वतो में ऊँचा होने से, (7) **रत्नोच्चय**—प्रचुर रत्न होने के कारण, (8) **शिलोच्चय**—पांडु आदि शिलाएँ होने के कारण, (9) **लोकमध्य**—तीन लोक के मध्य में होने से, (10) **लोकनाभि**—पुरुष की नाभि के समान होने से, (11) **अच्छ**—अत्यंत निर्मल, (12) **सूर्यावर्त**—सूर्य आदि प्रदक्षिणा करते हैं, (13) **सूर्यावरण**—सूर्य-चंद्र इसके आस-पास घूमते हैं, (14) **उत्तम या उत्तर**—सभी पर्वतों में उत्तम, (15) **दिगादि**—दिशा-विदिशा यहीं से निकली है तथा (16) **अवतंस**—मुकुट के समान सभी पर्वतों में ऊँचा।

❐ जंबूद्वीप

'द्वीप' अर्थात् जिसके चारों ओर पानी हो और मध्य में रहने योग्य भूमि हो; ऐसे असंख्य द्वीप-समुद्रों के मध्य प्रमाणांगुल से निष्पन्न एक लाख योजन विस्तार वाला जंबूद्वीप है। यह जंबूद्वीप सभी द्वीप समुद्रों के मध्य में स्थित तथा सबसे छोटा है। यह प्रतिपूर्ण चंद्रमा अथवा तेल में तले पूए के समान चपटा व गोल है। पूर्व से पश्चिम तक और उत्तर से दक्षिण तक यह एक लाख योजन का है। इसकी परिधि (चारों तरफ का घेरा) तीन लाख सोलह हजार दो सौ सत्ताईस योजन 3 कोस, 128 धनुष, साढ़े तेरह अंगुल, 5 यव और एक युका से कुछ अधिक है। इसके मध्य में 'नाभि' तुल्य मेरू पर्वत है। **(चित्र क्रमांक 26)**

चित्र क्र. 26

जंबूद्वीप नाम—जम्बूद्वीप के मध्यभाग में स्थित उत्तर कुरूक्षेत्र के पूर्व कोने पर 8 योजन ऊँचा एवं आधा योजन मोंटा मणिरत्नमय जंबू नामक वृक्ष है। वृक्ष के समान आकृति, शाखा, पत्र, पुष्प, फल आदि होने के कारण इसे वृक्ष कहते हैं। इस वृक्ष का मूल वज्र रत्नमय, शाखाएँ जंबूनद जातीय स्वर्ण की व फल-फूल, पत्ते आदि अरूण मृदुल स्वर्णमय है। इस प्रकार यह वृक्ष संपूर्ण पृथ्वीमय रत्ननिर्मित और त्रिकाल शाश्वत है। 500 योजन लम्बे-चौड़े गोलाकार **जम्बूपीठ** के बीचोंबीच आठ योजन लम्बी-चौड़ी, **मणिपीठिका** के ऊपर यह स्थित है। इसके चारों ओर 4-4 योजन ऊँचे 108 वृक्ष एवं उनसे आकीर्ण वन है।

चित्र क्र. 27

जंबू सुदर्शन के चारों दिशाओं में चार शाखाएँ हैं। उनमें पूर्व की शाखा पर एक कोस लम्बे-चौड़े भवन में जम्बूद्वीप का अधिष्ठायक व्यंतर जाति का **'अनादृत'** देव जो अपने को वैभव, ऐश्वर्य तथा ऋद्धि में अनुपम मानता है तथा पल्योपम की आयुष्य वाला है, वह अपनी चार अग्रमहिषियों, चार हजार सामानिक देवों एवं 16 हजार आत्मरक्षक देवों व परिवार के साथ निवास करता है, शेष तीन शाखाओं पर प्रासाद हैं। वर्तमान में जो अनादृत देव हैं, वह पूर्वभव में जम्बूस्वामी के चाचा थे।

जम्बू सुदर्शन वृक्ष के बारह नाम कहे गये हैं—(1) सुदर्शना, (2) अमोघा, (3) सुप्रबुद्धा, (4) यशोधरा, (5) विदेहजम्बू, (6) सौमनस्या, (7) नियता, (8) नित्यमण्डिता, (9) सुभद्रा, (10) विशाला, (11) सुजाता तथा (12) सुमना। **(चित्र क्रमांक 27)**

जंबूद्वीप की जगती—**'जगती'** का अर्थ है, कोट या गोलाकार दीवार। जंबूद्वीप एक मणिरत्नों से निर्मित वज्रमय जगती से चारों ओर से घिरा हुआ है। वह जगती आठ योजन ऊँची, मूल में बारह योजन चौड़ी, बीच में आठ योजन चौड़ी और ऊपर चार योजन चौड़ी, गाय की पूँछ के समान आकृति की है। वह मूल में चौड़ी और ऊपर संकरी है। जगती के मध्य लवण समुद्र की तरफ चारों ओर वलयाकार गवाक्ष-जाली समूह है, वह आधा योजन ऊँचा और 500 धनुष चौड़ा है। यहाँ देव और विद्याधर मनुष्य मनोरंजन हेतु आते हैं। जगती के बीच में अनेकों बड़े-बड़े छिद्र हैं जिनमें से लवण समुद्र का पानी जंबूद्वीप में आता है। **(चित्र क्रमांक 28)**

पद्मवरवेदिका—जगती के ऊपर ठीक मध्यभाग में एक विशाल गोलाकार पद्मवरवेदिका है, जो वैडूर्यरत्न के स्तम्भों तथा स्वर्ण-रजत के फलक से निर्मित है। वह आधा योजन ऊँची और 500 धनुष चौड़ी है। इसकी गोलाई जगति के मध्यभाग की परिधि के बराबर हैं। पद्मवरवेदिका स्थान-स्थान पर सैकड़ों श्वेतकमलों से सुशोभित होने के कारण इसे 'पद्मवरवेदिका' कहा जाता है।

जम्बू द्वीप की जगती

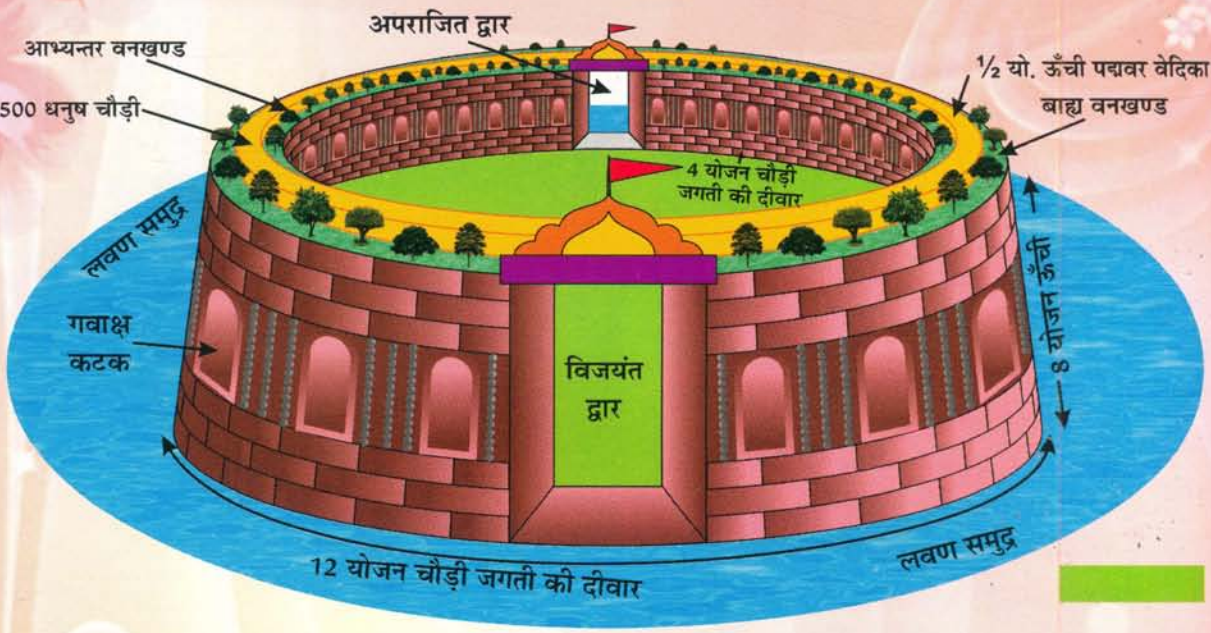

वनखण्ड—एक सदृश वृक्ष जहाँ हो वह '**वन**' कहलाता है और अनेक जाति के उत्तमवृक्ष हो वह स्थान 'वनखण्ड' कहा जाता है। जगति के ऊपर और पद्मवरवेदिका के बाहर दोनों ओर दो विशाल हरे-भरे वनखण्ड हैं। वे कुछ कम दो योजन प्रमाण विस्तार वाले और जगति के समान ही परिधि वाले हैं। वनखण्ड के भूमिभाग अत्यंत रमणीय और समतल हैं। वहाँ पृथ्वीकायमय पंचवर्णीय घास है। वायु से मणि और तृणों के संघर्षण से स्वाभाविक कर्णप्रिय गीत जैसी ध्वनियाँ निकलती है। वनखंड के दोंनो ओर स्वच्छ व निर्मल जल से युक्त बावड़ियाँ हैं। कई छोटे-बड़े पर्वत हैं, प्रत्येक पर्वत पर कई प्रासाद है, वहाँ व्यंतर देव-देवी आमोद-प्रमोद व क्रीड़ा करते हैं। एक तरह से ये वनखण्ड वाणव्यंतर देवों के पिकनिक स्पॉट हैं।

जंबूद्वीप के चार द्वार—जंबूद्वीप के चारों दिशाओं में चार द्वार हैं—**(1) विजय, (2) विजयंत, (3) जयंत, (4) अपराजित**। सर्वप्रथम मेरूपर्वत के पूर्व में 45 हजार योजन आगे जाने पर जंबूद्वीप के पूर्वान्त में सीता महानदी के ऊपर '**विजय**' नाम का मनोरम द्वार आता है। यह द्वार 8 योजन का ऊँचा, 4 योजन का चौड़ा और चार योजन ही प्रवेश है। इसके दोनों और दो नैषेधिकाएँ (बैठने के स्थान) हैं, जो नागदन्तों की पंक्तियों, वनमालाओं की कतारों और सुंदर सुसज्जित पुतलियों से सुशोभित है। वहाँ 4 योजन ऊँचे 2 योजन लम्बे-चौड़े प्रासादावतंसक हैं। प्रसादावतंसकों के अलग-अलग रमणीय भूमिभाग पर एक योजन की लम्बी-चौड़ी और आधे योजन मोटी रत्नमयी मणिपीठिकाएँ हैं। मणिपीठिकाओं के ऊपर रमणीय एवं मुलायम लाल वस्त्रों से आच्छादित अलग-अलग सिंहासन है। **(चित्र क्रमांक 29-30)**

विजयद्वार पर विभिन्न चित्रों से चिह्नित कुल 1,080 ध्वजाएँ हैं। विजयद्वार के आगे नौ भौम अर्थात् विशिष्ट भवन है, मध्यवर्ती पाँचवे भौम में एक बड़ा सिंहासन है। उसके पश्चिम-उत्तर (वायव्य कोण) में, उत्तर दिशा में एवं उत्तर-पूर्व दिशा (ईशान कोण) में '**विजय देव**' के चार हजार सामानिक देव, सिंहासन की पूर्व दिशा में चार अग्रमहिषियाँ व उनका परिवार, दक्षिण-पूर्व (आग्नेय कोण) में आभ्यंतर परिषद के आठ हजार देव, दक्षिण में मध्यम परिषद के 10 हजार देव, दक्षिण-पश्चिम (नैऋत्य कोण) में बाह्य परिषदा के 12

हजार देव, पश्चिम में विजयदेव के सात अनिकाधिपति एवं मूल सिंहासन के पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर में विजय देव के 16 हजार आत्मरक्षक देव—इस प्रकार विशाल परिवार का 'विजय' देव आधिपत्य करता हुआ निवास करता है। विजय देव की आयुष्य एक पल्योपम की है।

विजय देव की विजया नाम की राजधानी विजय द्वार के पूर्व में तिर्च्छे असंख्यात द्वीप समुद्रों को पार करने के बाद जम्बूद्वीप (यह द्वीप अन्य है) नाम के द्वीप से 12 हजार योजन आगे जाने पर 12 हजार योजन लम्बी-चौड़ी तथा 37,948 योजन से कुछ अधिक परिधि वाली है। इसकी प्रत्येक दिशा में 125-125 द्वार है, कुल मिलाकर 500 द्वारों से वह सुशोभित है।

जम्बूद्वीप के चार द्वार

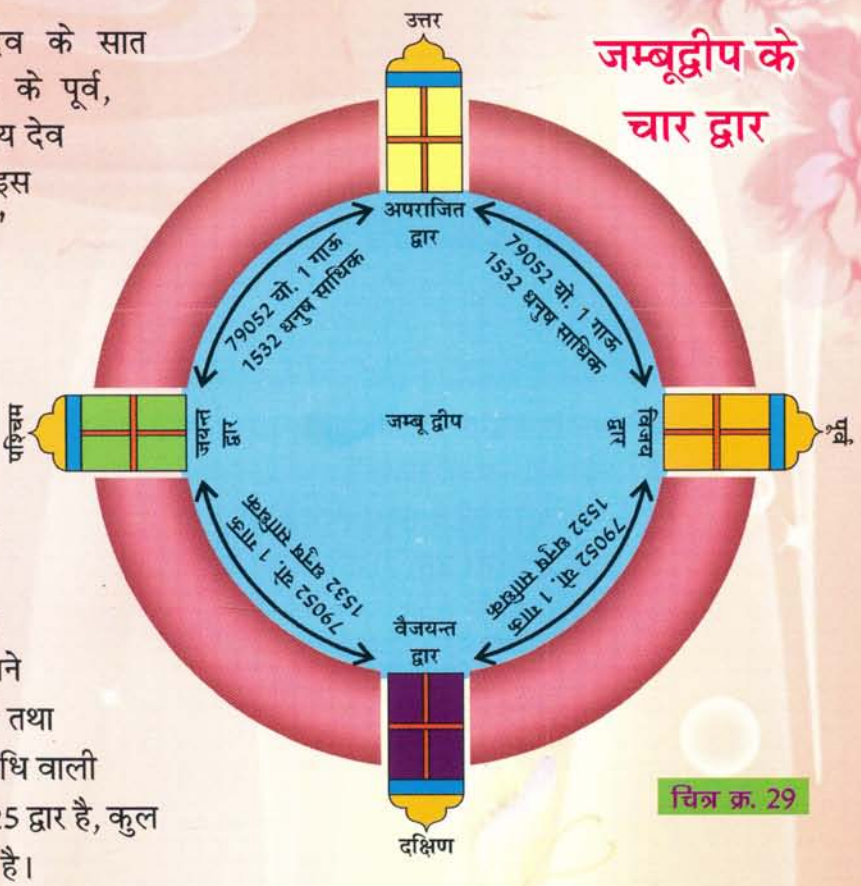

चित्र क्र. 29

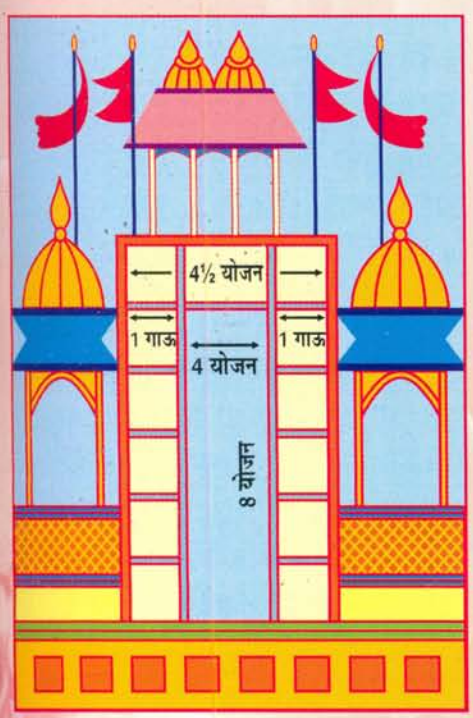

चित्र क्र. 30 : जगती का द्वार प्रमाण

राजधानी के चारों दिशाओं में चार विस्तृत वनखण्ड हैं, जैसे—(1) अशोकवन, (2) सप्तवर्ण वन, (3) चम्पकवन, (4) आम्रवन। वनखण्डों के मध्यभाग के प्रसादावतंसको में एक पल्योपम की स्थिति वाले (1) अशोक, (2) सप्तपर्ण, (3) चंपक, (4) आम्र नाम के चार महर्द्धिक देव सपरिवार रहते हैं।

इसी प्रकार '**वैजयन्त**' द्वार मेरूपर्वत के दक्षिण में स्थित है। '**जयन्त**' नाम का द्वार मेरूपर्वत के पश्चिम में '**अपराजित द्वार**' मेरूपर्वत के उत्तर में 45-45 हजार योजन आगे जाने पर है। ये तीनों द्वार भी विजय द्वार के समान 8 योजन ऊँचे व 4 योजन चौड़े हैं। अपने-अपने नाम के अनुसार ही एक पल्योपम की स्थिति वाले महर्द्धिक देव अपने नामानुरूप राजधानी में भोगोपभोग भोगते हुए विचरण करते हैं। इन तीनों की राजधानियाँ भी इस प्रसिद्ध जम्बूद्वीप में न होकर असंख्य द्वीप-समुद्र पार करने के पश्चात् एक अन्य जंबूद्वीप है, वहाँ पर है। जंबूद्वीप के इन द्वारों में एक द्वार से दूसरे द्वार का अन्तर उन्यासी हजार बावन (79,052) योजन और देशोन आधा योजन का है।

जंबूद्वीप में सात क्षेत्र—एक लाख योजन विस्तार वाले इस जंबूद्वीप के पूर्व-पश्चिम दिशा में छह वर्षधर पर्वत हैं। जो एक वृत्त की जीवा के रूप में फैले हुए है। इनके नाम इस प्रकार हैं—(1) चुल्लहिमवंत पर्वत, (2) महाहिमवंत पर्वत, (3) निषधपर्वत, (4) नीलवंत पर्वत, (5) रूक्मि पर्वत, (6) शिखरी पर्वत। इन पर्वतों के कारण जंबूद्वीप सात क्षेत्रों में बँटा हुआ है—(1) भरतक्षेत्र, (2) हिमवंत क्षेत्र, (3) हरिवर्ष क्षेत्र, (4) महाविदेह क्षेत्र, (5) रम्यक् क्षेत्र, (6) हेरण्यवत क्षेत्र, (7) ऐरवत क्षेत्र।

❐ भरत क्षेत्र

जंबूद्वीप में अनेकों क्षेत्र है, जिनमें मेरू पर्वत से 85,000 योजन दक्षिण की ओर पहला भरत क्षेत्र है। इसका अधिपति पल्योपम प्रमाण स्थितिवाला महाद्युतिवान 'भरत' देव है, अतः इसे भरत क्षेत्र कहते हैं। यह नाम शाश्वत है। यह अर्द्धचन्द्र के सदृश है तथा तीन ओर से लवण समुद्र का स्पर्श किये हुये है। भरत क्षेत्र के ठीक बीच में पूर्व-पश्चिम लंबा वैताढ्य पर्वत है, जो भरतक्षेत्र को दो भागों में विभक्त करता है, एक दक्षिणार्द्ध भरत और दूसरा उत्तरार्द्ध भरत! उत्तर से दक्षिण की ओर प्रवाहित गंगा और सिंधु महानदी के कारण भरत क्षेत्र छह भागों में विभक्त हो गया है, ये ही छह खण्ड कहलाते हैं, जिन पर चक्रवर्ती का एकछत्र शासन चलता है। वासुदेव का राज्य दक्षिणार्द्ध के तीन खंडों (1,2,6) पर होता है। इस जम्बूद्वीप के 190 भाग करने पर भरतक्षेत्र उसका एक भाग होता है। इस हिसाब से भरत क्षेत्र 526 योजन 6 कलां का चौड़ा है।[1]

दक्षिणार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध भरतक्षेत्र—दक्षिणार्द्ध भरत वैताढ्य पर्वत के दक्षिण भाग को कहा जाता है। यह अर्द्धचन्द्राकार है। गंगा महानदी और सिंधु महानदी से यह तीन भागों में विभक्त हो गया है। दक्षिणार्द्ध भरत $238^{3/19}$ योजन चौड़ा है। इसकी जीवा (Chord) $9,748^{12/19}$ योजन लम्बी है। दक्षिणार्द्ध भरत के जीवोपमित भाग का पीछे का हिस्सा दक्षिण में $9,766^{1/19}$ योजन से कुछ अधिक है। उत्तरार्द्ध भरत क्षेत्र वैताढ्य पर्वत के उत्तरी भाग में एवं चुल्लहिमवंत पर्वत के दक्षिण भाग में स्थित है। यह पूर्व-पश्चिम लंबा और उत्तर-दक्षिण में चौड़ा है। इसका आकार 'पलंग' जैसा है। यह दोनों ओर से लवण समुद्र का स्पर्श करता है। गंगा एवं सिन्धु महानदी के कारण यह भी तीन भागों में विभक्त है। इसकी चौड़ाई दक्षिणार्द्ध भरत जितनी $238^{3/19}$ योजन की है। भुजाकार क्षेत्र पूर्व-पश्चिम में $1,892^{7½/19}$ योजन लम्बा है। इसकी लम्बाई $14,471^{3/19}$ योजन है तथा धनुष्य-पीठिका (Arc of a Circle) परिधि की अपेक्षा से दक्षिण में $14,528^{11/19}$ योजन है।

दक्षिणार्द्ध भरत में गंगा एवं सिंधु नदी के बीच वाला खण्ड (भाग) प्रथम माना जाता है। इसे '**मध्यखंड**' भी कहा जाता है, यही '**आर्यखण्ड**' है। जो लोक-परलोक, पुण्य-पाप को मानता है, वह '**आर्य**' और इन्हें नहीं मानता वह **अनार्य**; यह सामान्य व्याख्या है। 63 शलाका पुरूषों का जन्म 'आर्यखण्ड' में ही होता है। चक्रवर्ती की राजधानी भी इसी खण्ड में होती है। सिंधु नदी की पश्चिम दिशा में दूसरा खण्ड है। उत्तरार्ध भरत में सिंधु नदी और दक्षिण लवण समुद्र के बीच वाला भाग तीसरा खण्ड है। सिंधु एवं गंगा नदी के बीच में चौथा खण्ड है, गंगा नदी पार करके पाँचवा खण्ड तथा वैताढ्य पर्वत पार कर दक्षिण की ओर छठा खंड है। ये सब '**अनार्य खण्ड**' कहलाते हैं। छह खण्ड में कुल मिलाकर 32,000 देश होते हैं। जिनमें पाँच अनार्य खण्ड में प्रत्येक में 5,336 आर्य खण्ड में 5,320 देश हैं। उनमें 25½ देश आर्य और शेष अनार्य हैं। **(चित्र क्रमांक 31)**

---

1. 19 कला का एक योजन होता है (एक योजन का 19वाँ भाग)—जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति, वक्षस्कार 6

वैताढ्य पर्वत—पूर्व से पश्चिम तक लम्बा होने से इसे '**दीर्घ वैताढ्य पर्वत**' भी कहा जाता है। यह पर्वत भरतक्षेत्र के मध्य पूर्व से पश्चिम तक 10,720$^{12/19}$ योजन लम्बा, उत्तर-दक्षिण में 50 योजन चौड़ा, 25 योजन ऊँचा और सवा छह योजन जमीन में गहरा है। यह रूचक संस्थान युक्त संपूर्ण रजतमय है। वैताढ्य पर्वत के नौ कूट (शिखर) है—(1) सिद्धायतन कूट, (2) दक्षिणार्ध भरतकूट, (3) खण्ड प्रपातगुहा कूट, (4) मणिभद्रकूट, (5) वैताढ्यकूट, (6) पूर्णभद्रकूट, (7) तमिस्रगुहाकूट, (8) उत्तरार्ध भरत कूट, (9) वैश्रमण कूट।

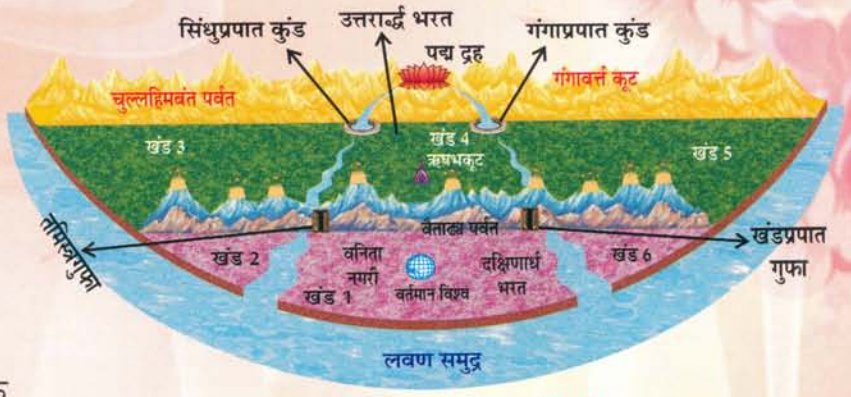

जम्बूद्वीप का दक्षिणार्ध और उत्तरार्ध भरत क्षेत्र चित्र क्र. 31

ये सभी कूट पूर्व लवण समुद्र के पश्चिम में एवं क्रमशः पूर्व से पश्चिम की ओर स्थित है। सभी कूट छह योजन एक कोस ऊँचे, मूल में छह योजन एक कोस चौड़े, ऊपर कुछ अधिक तीन योजन चौड़े हैं। मूल में इनकी परिधि कुछ कम 22 योजन की, मध्य में कुछ कम 15 योजन की तथा ऊपर कुछ अधिक 9 योजन की है। इस प्रकार ये सभी कूट मूल में विस्तीर्ण, मध्य में संकुचित तथा ऊपर पतले है। गाय के ऊर्ध्वमुखी पूँछ के आकार जैसे हैं। सभी कूट की तीनों दिशाओं में 500 धनुष ऊँचे और 250 धनुष चौड़े और उतने ही प्रवेश परिमाण तीन द्वार है। इनके सम भूमिभाग पर 500 धनुष लम्बे-चौड़े और ऊँचे देवासन है। वहाँ तीर्थंकरों की दैहिक ऊँचाई जितनी ऊँची 108 जिन-प्रतिमाएँ हैं।

(चित्र क्रमांक 32)

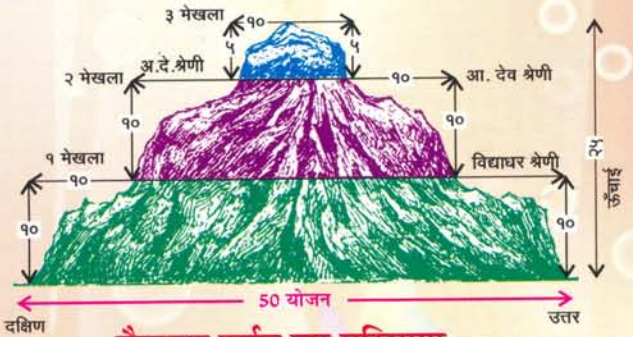

वैताढ्य पर्वत का परिमाण चित्र क्र. 32

वैताढ्य पर्वत के मध्य में मणिभद्रकूट, वैताढ्यकूट एवं पूर्णभद्रकूट—ये तीन कूट स्वर्णमय हैं शेष छह कूट रत्नमय हैं। वैताढ्य कूट पर वैताढ्य देव का आवास हैं। तमिस्त्रगुहा कूट और खण्डप्रपात गुहा कूट पर **कृत्यमालक** तथा **नृत्यमालक** दो विसदृश नामों वाले देव रहते हैं। बाकी के छह कूटों पर कूट सदृश नाम के अधिष्ठायक देव रहते हैं। उनमें से प्रत्येक की एक पल्योपम स्थिति है। मेरू पर्वत के दक्षिण में तिरछे असंख्यात द्वीप समुद्रों को पार करने के बाद जंबूद्वीप नाम के अन्य द्वीप में बारह योजन नीचे जाने पर इनकी राजधानियाँ हैं।

तमिस्रा गुफा और खण्डप्रपात गुफा—वैताढ्य पर्वत के मूल भाग में सिंधु और गंगा नदी के निकट दो विशाल गुफाएँ हैं। उसमें पहली तमिस्रागुफा है और दूसरी खण्डप्रपात गुफा है। ये दोनों गुफाएँ उत्तर -दक्षिण में 50 योजन लम्बी व पूर्व-पश्चिम में 12 योजन चौड़ी है। इनकी ऊँचाई 8 योजन है। इन दोनों गुफाओं में सूर्य, चन्द्र तो क्या तारा जितना भी प्रकाश नहीं है, वे इतनी सघन व निबिड़ है कि गुफा में प्रवेश करना ही दुःशक्य है,

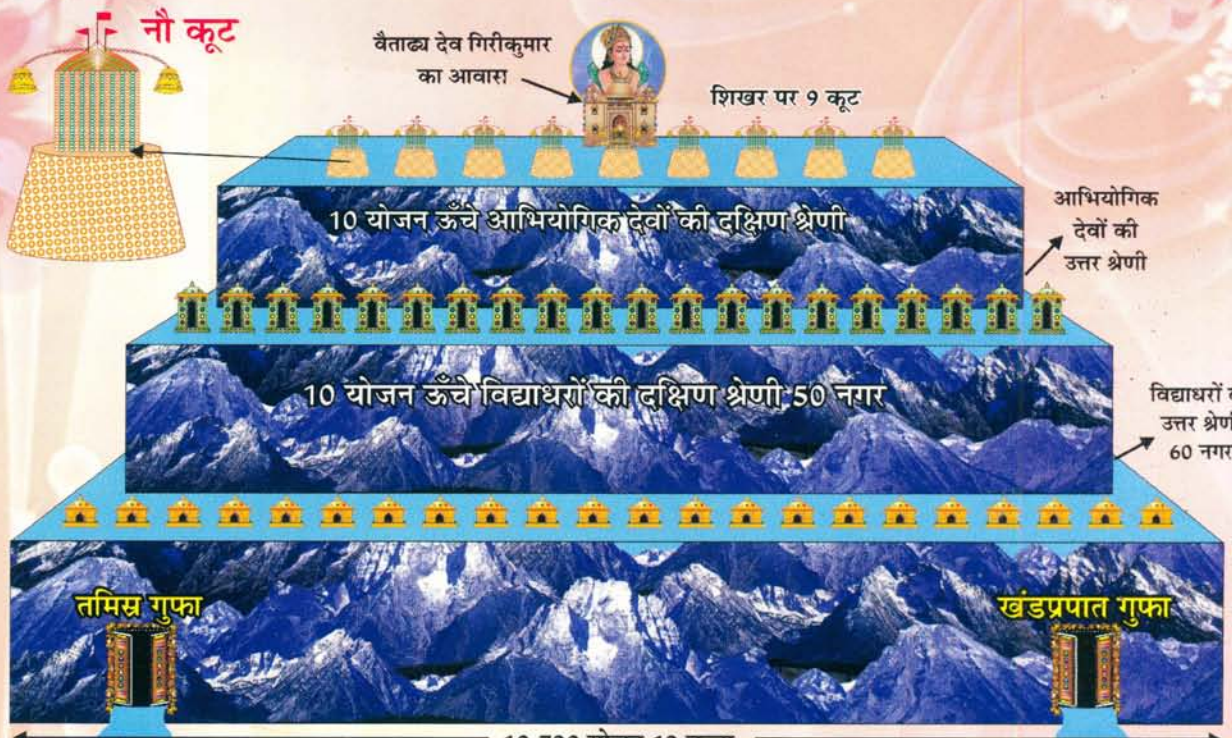

दीर्घ वैताढ्य पर्वत और नौ कूट

चित्र क्र. 33

इन गुफाओं के चार द्वार हैं, ये चारों द्वार वज्रमय है और सदा बंद रहते हैं, ये जब चक्रवर्ती षट्खंड जीतने के लिये निकलता है तभी खुलते हैं। **(चित्र क्रमांक 33)**

उमग्नजला निमग्नजला महानदियाँ—तमिस्रागुफा के ठीक बीच में अर्थात् 21 योजन चलने के बाद '**उमग्ना**' नाम नदी आती है एवं उससे दो योजन और आगे चलने पर '**निमग्ना**' नामक नदी है। ये दोनों पहाड़ी नदियाँ हैं जो 3 योजन चौड़ी और 12 योजन लम्बी हैं। ये वैताढ्य पर्वत के पत्थरों में से गुजरती हुई गुफा में से होकर सिन्धु महानदी में मिल जाती है। ये दोनो नदी पूर्व से पश्चिम में बहती है। **उमग्नजला** नदी की यह विशेषता है कि यदि उस पानी में कोई तृण, घास, पत्थर यहाँ तक कि हाथी, घोड़े या मनुष्य भी गिर जाय तो वह नदी उन्हें तीन बार इधर-उधर घुमाकर किसी एकांत निर्जल प्रदेश में लाकर डाल देती है। अर्थात् इस नदी में कोई भी वस्तु डूबती नहीं है, तैरती ही रहती है एवं थोड़ी ही देर में जल प्रवाह के झपाटे में आकर वह वस्तु किनारे पर फिक जाती है। **निमग्नजला** नदी का स्वभाव इससे विपरीत है उसमें भारी पदार्थ तो क्या, हल्का से हल्का तिनका या रूई भी गिर जाय तो वह डूब जाता है। अत: चक्रवर्ती बड़ी सावधानी से अपने वार्धकी रत्न-शिल्पकार की सलाह के अनुसार इन दोनों नदियों पर पुल बनवाकर नदियाँ पार करता है। वे पुल चक्रवर्ती के जीवनकाल तक बने रहते हैं। उतने समय तक उत्तरार्द्ध या दक्षिणार्द्ध भरत के निवासी बिना रोक-टोक या अवरोध के इन गुफाओं में गमनागमन कर सकते हैं। **(चित्र क्रमांक 34)**

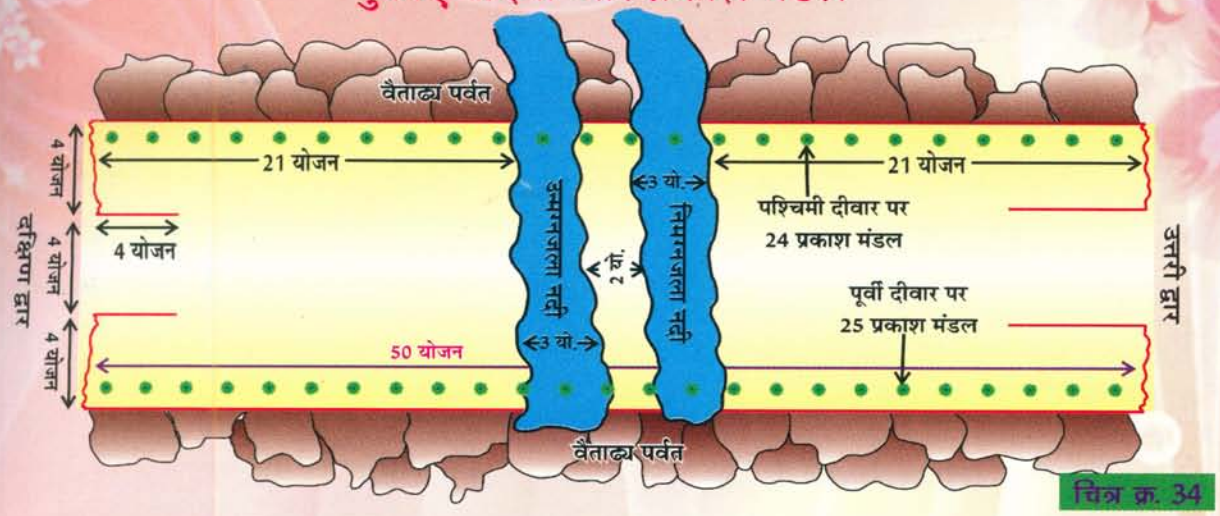

चित्र क्र. 34

विद्याधर श्रेणियाँ—वैताढ्य पर्वत पर 10 योजन ऊपर जाने पर यह पर्वत दोनों ओर से 10-10 योजन घट गया है, जिससे दोनों और समतल भूमि बन गई है वहाँ पर्वत के बराबर लम्बी और 10 योजन चौड़ी दो विद्याधर श्रेणियाँ हैं। दक्षिण श्रेणी में गगनवल्लभ आदि 50 नगर तथा उत्तर श्रेणी में रथनूपुर चक्रवाल आदि 60 नगर (राजधानियाँ) हैं। (क्योंकि दक्षिण तरफ की मेखला जगती की गोलाई के कारण थोड़ी छोटी है, जबकि लघु हिमवंत पर्वत के ओर उत्तर दिशा की मेखला थोड़ी बड़ी है) इस प्रकार दोनों श्रेणियों की राजधानियों की संख्या 110 हैं। ये नगर एक श्रेणीबद्ध बने हुए हैं। यहाँ महान पराक्रमी वैभवशाली और रोहिणी, प्रज्ञप्ति आदि हजारों विद्याओं के धारक '**विद्याधर मनुष्य**' रहते हैं।

आभियोगिक श्रेणियाँ—विद्याधर श्रेणियों से दस योजन ऊपर दस योजन चौड़ी दो श्रेणियाँ और हैं, वहाँ शक्र, लोकपाल आदि के आज्ञापालक दस प्रकार के जृम्भक देवों के आवास हैं—(1) **अन्नजृंभक**—अन्न के रक्षक, (2) **पान जृंभक**—पानी के रक्षक, (3) **लयन जृंभक**—सुवर्ण आदि धातुओं के रक्षक, (4) **शयन जृंभक**—मकान रक्षक, (5) **वस्त्र जृंभक**—वस्त्र के रक्षक, (6) **फल जृंभक**—फलों के रक्षक, (7) **फूल जृंभक**—फूलों के रक्षक, (8) **फल-फूल जृंभक**—साथ रहे हुए फूलों और फलों के रक्षक, (9) **अविपत जृंभक**—पत्र-भाजी के रक्षक, (10) **बीज जृंभक**—बीज, धान्य के रक्षक।

ये देव वाणव्यंतर जाति के हैं। अपने-अपने नाम के अनुसार अन्न, पानी आदि उक्त वस्तुओं की रक्षा करने के लिये प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल परिभ्रमण करते हैं।

इन दसों जृंभक देवों की देह 7 हाथ एवं आयुष्य एक पल्योपम है। तीर्थंकर भगवान दीक्षा से पूर्व जब वर्षीदान देते हैं, तो ये देव प्रतिदिन 1 करोड़ 8 लाख स्वर्ण-मुद्राओं से उनका भंडार भर देते हैं। तीर्थंकर भगवान का जहाँ पारणा होता है वहाँ फूल, वस्त्र आदि की वृष्टि तथा कम से कम 1,25,000 स्वर्ण-मुद्रा एवं उत्कृष्ट से साढ़े बारह करोड़ स्वर्ण-मुद्रा की वृष्टि भी जृंभक देव करते हैं।

ऋषभकूट पर्वत—वैताढ्य पर्वत से उत्तर में चुल्लहिमवंत पर्वत की तलहटी में गंगा और सिन्धु के प्रपात कुण्ड के मध्य उत्तरार्ध भरत क्षेत्र के चौथे खण्ड में ऋषभकूट नामक पर्वत है। वह 8 योजन का ऊँचा 2 योजन गहरा, मूल में 8 योजन चौड़ा, बीच में 6 योजन चौड़ा तथा ऊपर 4 योजन चौड़ा है। मूल में कुछ अधिक 25

योजन परिधि युक्त तथा ऊपर 2 योजन कुछ अधिक की परिधि है। गौपुच्छ की आकृति वाला है। चक्रवर्ती जब दिग्विजय करते हुए यहाँ आते हैं, तब इस पर्वत पर अपना नाम अंकित करते हैं।

चुल्लहिमवंत पर्वत और पद्मद्रह—भरत क्षेत्र की सीमा पर उत्तर की ओर चुल्लहिमवंत पर्वत है, जो 100 योजन ऊँचा, 25 योजन जमीन में गहरा, 24,932 योजन लम्बा, 1,052 योजन 12 कलां (योजन का 19वाँ भाग) का चौड़ा है। यह पीतस्वर्णमय है तथा पूर्व और पश्चिम दोनों ओर से लवण समुद्र को छुए हुए है। पर्वत के मध्य में 1,000 योजन लम्बा, 500 योजन चौड़ा और 10 योजन गहरा '**पद्म**' नाम का द्रह (कुण्ड) है। पद्मद्रह के ठीक मध्य में एक योजन लम्बा-चौड़ा, 10 योजन जल में गहरा व आधा योजन जल से ऊपर विविध मणि रत्नमय एक विशाल पद्म है। इसकी कर्णिका पर '**श्रीदेवी**' का आवास है। श्रीदेवी की आयु एक पल्योपम की है। उनके 4,000 हजार सामानिक देव हैं, 16,000 आत्मरक्षक देव, 8,000 आभ्यन्तर परिषद् के देव, 12,000 बाह्य परिषद् के देव, 7 अनीकनायक देव, 4 महत्तरी देवियाँ, 1,20,00,000 आभियोगिक देव हैं। इन सबके रहने के लिए मुख्य कमल के चारों ओर कुल 1,20,50,120 कमल पाँच घेराव में है। प्रत्येक घेराव के कमल प्रथम घेराव की अपेक्षा लम्बाई-चौड़ाई में आधे-आधे हैं। पद्मद्रह से तीन महानदियाँ निकलती हैं—(1) गंगा, (2) सिंधु और (3) रोहितांशा। **(चित्र क्रमांक 35)**

(1) गंगा महानदी—गंगा महानदी '**पद्मद्रह**' के उत्तरी तोरणद्वार से निकली है। वह पर्वत पर 500 योजन बहती है। गंगावर्तकूट के पास से पुनः मुड़कर 523 योजन 3 कलां दक्षिण की ओर बहती है अर्थात् पर्वत के किनारे तक आ जाती है। वहाँ मगर के समान खुला हुआ मुँह जैसी जिह्विका है, उसमें से यह वेगपूर्वक उछलती-कूदती '**गंगाप्रपात कुण्ड**' में जाकर गिरती है। पर्वत की ऊँचाई 100 योजन की होने से जल प्रपात प्रारम्भ में मोड़ लेता है, उस समय उसकी लम्बाई चुल्लहिमवन्त पर्वत के शिखर से प्रपात कुण्ड तक कुछ अधिक सौ योजन होती है।

गंगाप्रपात कुण्ड 60 योजन लम्बा-चौड़ा एवं 10 योजन गहरा है। उसकी परिधि 190 योजन से कुछ अधिक है। वह स्वच्छ, सुकोमल और हीरकमय पाषाणयुक्त तटवाला है। उसके पूर्व, दक्षिण तथा पश्चिम की ओर तीन-तीन सीढ़ियाँ तोरणद्वारों से युक्त है। गंगाप्रपात कुण्ड के मध्य 8 योजन लम्बा-चौड़ा, जल से दो कोस ऊँचा, कुछ अधिक 25 योजन के विस्तार में '**गंगाद्वीप**' है, वहाँ ऋद्धिशालीनि '**गंगादेवी**' का एक कोस लम्बा, आधा कोस चौड़ा और कुछ कम एक कोस ऊँचा आवास स्थान (भवन) है।

गंगाप्रपातकुण्ड के दक्षिणी तोरण से आगे बढ़ती हुई गंगा नदी जब आगे बढ़ती है, तब वैताढ्य पर्वत तक पहुँचते हुए 7 हजार नदियाँ उसमें और आ मिलती हैं। वह उनसे आपूर्ण होकर खण्डप्रपात गुफा होती हुई, वैताढ्यपर्वत को चीरती हुई दक्षिणार्ध भरतक्षेत्र की ओर जाती है, उसके ठीक मध्यभाग से बहती हुई पूर्व की

ओर मुड़ती है, वहाँ तक अन्य 7 हजार नदियाँ भी उसमें मिल जाती हैं। इस प्रकार कुल 14 हजार नदियों के परिवार से युक्त होकर जंबूद्वीप की जगती को चीरती हुई पूर्वी लवणसमुद्र में मिल जाती है।

गंगा महानदी अपने उद्गम स्रोत पर एक कोस अधिक 6 योजन के विस्तार (चौड़ाई) वाली व आधा कोस गहरी है। पश्चात् क्रमशः प्रमाण में विस्तृत होती हुई जब लवण समुद्र में गिरती है तब उसकी चौड़ाई बढ़ते-बढ़ते साढ़े बासठ योजन और गहराई एक योजन एक कोस होती है। अर्थात् कुण्ड से समुद्र तक उसका विस्तार व गहराई दस गुणा बढ़ जाती है।

गंगा-सिंधु नदी का यह विस्तार भरत-ऐरावत में अवसर्पिणी काल के पहले और उत्सर्पिणी के अंतिम आरे (सुषम-सुषमा) की अपेक्षा से है। भरत-ऐरावत क्षेत्र में प्रकृति से ही काल परिवर्तन के कारण उनका कोई नियत स्वरूप नहीं लिखा जा सकता। दुषम-दुषम काल में इन नदियों का प्रवाह रथ के पहिये की धूरी के समान (बैलगाड़ी के मार्ग जितना) और गहराई बहुत कम रह जाती है। वर्तमान में जो गंगा-सिंधु नदियाँ हैं, वे मूल नदी हैं या अन्य किन्हीं नदियों को ये नाम दिये हैं, यह शोध का विषय है।

(2) सिंधु नदी—गंगा महानदी के अनुरूप ही सिन्धु महानदी का आयाम-विस्तार है। अंतर इतना है कि सिंधु महानदी इस पद्मद्रह के पश्चिम दिग्वर्ती तोरण से निकलती है। पश्चिम में बहती हुई **'सिन्ध्वावर्त कूट'** से मुड़कर दक्षिणाभिमुख होती हुई बहती है। आगे सिन्धुप्रपात कुण्ड, सिन्धुद्वीप का वर्णन गंगाप्रपात कुंड व द्वीप सदृश है। फिर नीचे तमिस्रा गुफा से होती हुई वह वैताढ्य पर्वत को चीरकर पश्चिम की ओर मुड़ती है। वहाँ 14 हजार अन्य नदियों के परिवार के साथ जंबूद्वीप की जगती को विदीर्ण करती हुई पश्चिमी लवणसमुद्र में जाकर मिल जाती है।

(3) रोहितांशा नदी—यह नदी पद्मद्रह के उत्तरी तोरण से निकलकर पर्वत पर उत्तर में $276^{6/19}$ योजन बहती हुई जिह्विका से होकर हिमवंत क्षेत्र के **'रोहितांशा प्रपातकुण्ड'** जिसकी लम्बाई-चौड़ाई 120 योजन, परिधि कुछ कम 183 योजन व गहराई 10 योजन की है; उसमें वेगपूर्वक गिरती है। कुण्ड के ठीक मध्य, जल से दो कोश ऊँचा उठा हुआ 50 योजन परिधि वाला रोहितांश द्वीप है, उसमें एक पल्योपम की स्थिति वाली ऋद्धिशालीनि **'रोहितांशा' देवी'** का आवास है।

रोहितांशा प्रपातकुण्ड के उत्तरी तोरण से रोहितांशा महानदी आगे हैमवतक्षेत्र की ओर बढ़ती है। वहाँ चौदह हजार नदियाँ से आपूर्ण होती हुई वह शब्दापाती वृत्तवैताढ्य पर्वत के आधा योजन दूर रहने पर पश्चिम की ओर मुड़ती है और हैमवत क्षेत्र को दो भागों में विभक्त करती हुई आगे बढ़ती है। तत्पश्चात् अट्ठाईस हजार नदियों के परिवार सहित नीचे की ओर जगती को चीरकर पश्चिम-दिग्वर्ती लवणसमुद्र में मिल जाती है। रोहितांशा महानदी जहाँ से निकलती है, वहाँ उसका विस्तार साढ़े बारह योजन है, गहराई एक कोश है। तत्पश्चात् वह मात्रा में क्रमशः बढ़ती जाती है। समुद्र में मिलने के स्थान पर उसका विस्तार एक सौ पच्चीस योजन होता है, गहराई अढ़ाई योजन होती है। यह नदी अपने दोनों ओर दो पद्मवर वेदिकाओं तथा दो वनखण्डों से घिरी हुई है।

चुल्लहिमवान पर्वत के 11 कूट—चुल्लहिमवान पर्वत के 11 कूट हैं—**(1) सिद्धायतन कूट, (2) चुल्लहिमवान कूट, (3) भरतकूट, (4) इलादेवी कूट, (5) गंगादेवी कूट, (6) श्रीकूट, (7) रोहितांशा कूट, (8) सिन्धुदेवी कूट, (9) सुरादेवी कूट, (10) हैमवत कूट, (11) वैश्रवणकूट।**

ये सभी कूट पूर्वी लवण समुद्र के पश्चिम में गाय के ऊर्ध्वीकृत पूँछ के आकार वाले हैं। ये 500 योजन ऊँचे, मूल में 500 योजन, मध्य में 375 योजन तथा ऊपर 250 योजन विस्तीर्ण है। मूल में इनकी परिधि कुछ अधिक 1,581 योजन, मध्य में कुछ कम 1,186 योजन तथा ऊपर कुछ कम 791 योजन है।

सिद्धायतन कूट के पश्चिम में '**चुल्लहिमवान कूट**' है। इसी प्रकार आगे-आगे के कूट क्रमशः पश्चिम-पश्चिम में स्थित है। चुल्लहिमवान कूट पर पल्योपम की स्थिति वाले '**चुल्लहिमवान गिरिकुमार**' की राजधानी है। वह कूट के दक्षिण में असंख्यद्वीप समुद्रों को पार कर अन्य जंबूद्वीप के दक्षिण में 12 हजार योजन पार करने पर 12 हजार योजन लम्बी-चौड़ी हैं। इसी प्रकार भरत हैमवत तथा वैश्रवणकूटों पर भी उस नाम के देवों की राजधानियाँ है। इनके अतिरिक्त शेष कूटों पर देवियाँ निवास करती हैं, देव नहीं।

❐ षट्खण्ड पृथ्वी पर चक्रवती की विजय यात्रा

संपूर्ण भरतक्षेत्र पर चक्रवर्ती का अधिपत्य होता है। वह छह खण्ड पर अपनी विजय वैजयन्ती फहराता है। उसका विस्तृत वर्णन जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र में इस प्रकार दिया है-

चक्रवर्ती की आयुधशाला-शस्त्रागार में जब 'चक्ररत्न उत्पन्न होता हैं तो आयुधशाला का अधिकारी राजसभा में इस शुभ संवाद की सूचना देता है। चक्रवर्ती इस शुभ वार्ता से हर्षित हो शीघ्र ही सिंहासन से उठकर चक्ररत्न के सन्मुख सात-आठ कदम चलकर हाथ जोड़कर उसे प्रणाम करते हैं। फिर आयुधशाला के अधिकारी को जीवनोपयोगी विपुल पुरस्कार प्रदान कर उसे संतुष्ट करते है। स्नानादि से निवृत्त होकर अपने मंत्रीमंडल, सेनापति, सभी मांडलिक राजा तथा नगर के सभी प्रतिष्ठित श्रेष्ठियों के साथ आयुधशाला में आकर चक्ररत्न को प्रत्यक्ष प्रणाम करते हैं। दिव्य सुगंधित जल, चंदन, पुष्प एवं वस्त्राभूषणों से उसकी अर्चा-पूजा करके उसे अष्ट मंगल से चित्रित करते हैं। आठ दिन तक सम्पूर्ण नगर में चक्रोत्पत्ति का महामहोत्सव मनाया जाता हैं।

यह चक्ररत्न एक हजार देवों द्वारा अधिष्ठित होता है। पूजा-अर्चा से संतुष्ट हुआ वह स्वयं आयुधशाला से बाहर निकलकर आकाश में स्थित हो जाता है। चक्रवर्ती हस्तिरत्न पर आरूढ होकर अपनी चतुरंगिणी सेना के साथ नगर के पूर्वी द्वार से निकलकर चक्ररत्न के पीछे-पीछे चल पड़ते हैं।

सर्वप्रथम वे गंगा महानदी के दक्षिणी तट से होते हुए सहस्रों ग्राम, नगर, पट्टण आदि के राजाओं को जीतते हुए, उनसे श्रेष्ठ उपहार ग्रहण करते हुए प्रत्येक योजन पर पड़ाव डालते हुए **मागधतीर्थ** में आते हैं। वहाँ 12 योजन लम्बा 9 योजन चौड़ा उत्तम नगर सदृश सैन्य शिविर लगाते हैं। चक्रवर्ती का वर्धकिरत्न उनके लिये विशेष रूप से पौषधशाला का वहाँ निर्माण करता है। चक्रवर्ती यहाँ तेले का तप अंगीकार करते हैं। तत्पश्चात् पूर्व दिशा की ओर चक्ररत्न के निर्देशित मार्ग से आगे बढ़ते हुए वे रथ के पहिये भीगे, उतनी गहराई तक लवण समुद्र में प्रवेश करके बाण छोडते हैं। यह बाण 12 योजन दूर मागधतीर्थ के अधिष्ठायक देव के भवन में गिरता है। बाण को देखकर पहले तो देव क्रोध में आग बबूला हो उठता है, किंतु जब बाण पर चक्रवर्ती का नामांकन देखता है, तो वह आदर और सम्मान सहित चक्रवर्ती के पास आकर हार, मुकुट आदि अमूल्य उपहार भेंट करता है तथा चक्रवर्ती की इस तरफ की सीमा की रक्षा का दायित्व स्वीकार करता है। चक्रवर्ती भी प्रसन्न भाव से देव को विसर्जित कर तेले का पारणा करते हैं।

तत्पश्चात् वे दक्षिण-पश्चिम दिशा (नैऋत्य कोण) में **वरदाम तीर्थ** पर तेला करके वहाँ के अधिष्ठायक देव को वश में करते हैं। इसी प्रकार उत्तर-पश्चिम दिशा होते हुए पश्चिम में **प्रभास तीर्थ** पर तेला

तप करके उसके अधिपति देव को अपने वश में करते है। विजय के उपलक्ष में सर्वत्र अष्ट दिवसीय महोत्सव करते हैं।

चक्ररत्न के दिशा दर्शन में चक्रवर्ती वहाँ से सिन्धु महानदी के दाहिने किनारे होते हुए पूर्व दिशा में **सिन्धु देवी** के भवन की ओर बढ़ते हैं। (सिंधु देवी का भवन उत्तरार्ध भरत में सिंधुप्रपात कुण्ड में, सिंधुद्वीप में और यहाँ भी है। महर्द्धिक देव-देवियों के भवन हर स्थानों पर होते हैं।) वहाँ पर पूर्ववत् ही शिविर डालकर तेला तप की आराधना करते हैं। सिन्धु देवी का आसन चलायमान होने पर वह अवधिज्ञान द्वारा चक्रवर्ती को आया जानकर उन्हें दो भद्रासन और 1008 रत्न-कलश भेंट करती है एवं उनकी आज्ञाकारिणी बन जाती है। यहाँ से वे उत्तर-पूर्व दिशा में ईशान कोण में **वैताढ्य पर्वत** की दाहिनी तलहटी पर सैन्य शिविर स्थापित कर वैताढ्य गिरिकुमार का ध्यान करते हुए तेला तप करते हैं। वैताढ्य गिरिकुमार भी उन्हें उपहार प्रदान कर आज्ञाकारी बन जाता है। इसके बाद चक्रवर्ती पश्चिम दिशा में स्थित **तमिस्रा गुफा** के द्वार खुलवाने हेतु **'कृतमाल देव'** को उद्दिष्ट कर तेला तप करते है और अपने सेनापति को सिन्धु महानदी के पश्चिम में विद्यमान भरतक्षेत्र के कोणवर्ती द्वितीय खण्ड रूप सिंधु निष्कूट (कोने का) प्रदेश को अधिकृत करने का आदेश देते हैं। सिंधु के दक्षिण निष्कूट के पूर्व और दक्षिण की ओर सिंधु नदी, उत्तर में वैताढ्य पर्वत और पश्चिम की ओर लवणसमुद्र है। सिंधु नदी से वह अलग है। अतः उसे 'सिंधु निष्कूट' कहते हैं। सेनापति 12 योजन विस्तृत चर्मरत्न पर संपूर्ण सेना सहित आरूढ़ होकर सिंधु नदी को पार करता है और वहाँ के ग्राम, नगर, पट्टण आदि जीतता हुए सिंहल, बर्बर देश, यवन द्वीप, रोम और अरब देशों पर विजय प्राप्त कर उपहार आदि लेकर सिंधु नदी पार कर चक्रवर्ती के पास आता है। तत्पश्चात् तमिस्र गुफा के दक्षिण द्वार के कपाटों की पूजा अर्चना एवं प्रणाम करके दण्डरत्न से कपाट पर तीन प्रहार करता है। तीसरे प्रहार में सरसराहट की आवाज के साथ कपाट खुल जाते हैं और चक्रवर्ती के उत्तरार्ध भरत में जाने का मार्ग सरल हो जाता है। **(चित्र क्रमांक 36)**

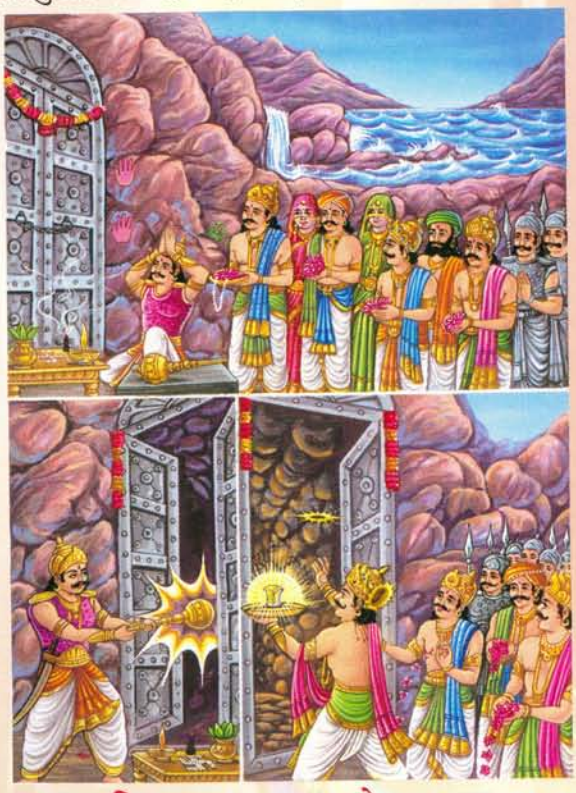

तमिस्र गुफा का द्वार खोलता हुआ सुषेण सेनापति चित्र क्र. 36

चक्रवर्ती मणिरत्न को अपने हस्तिरत्न के मस्तक के दाहिने भाग पर बाँधकर गुफा के दक्षिणी द्वार से गुफा में प्रविष्ट होते हैं। मणिरत्न के प्रकाश से गुफा में आगे-आगे प्रकाश रहता है। पीछे आ रही सेना के प्रकाश के लिए चक्रवर्ती स्वयं काकिणीरत्न से गुफा की पूर्व-पश्चिम दिशा की भींतों पर प्रमाणांगुल से दोनों तरफ आधा-आधा मिलाकर एक योजन तक क्षेत्र को प्रकाशित करने वाले गोमूत्राकार/वर्तुलाकार 49 प्रकाश मण्डल (पूर्वी दीवार पर 24 और पश्चिमी दीवार पर 25) बनाते हैं। इससे गुफा में सूर्यवत् प्रकाश फैल जाता

1. ये नदियाँ खण्डप्रपात गुफा के पश्चिमी भाग से निकलकर आगे बढ़ती हुई पूर्वी भाग में गंगा महानदी में मिलती है।

है। ये प्रकाश मण्डल पूर्व की दीवार से प्रारम्भ करते हैं। गुफा का विस्तार 50 योजन होने के कारण 49 मण्डल बनते हैं। प्रकाश मण्डल की लम्बाई गुफा प्रमाण 12 योजन की (पूर्व-पश्चिम) चौड़ाई उत्तर-दक्षिण में एक योजन और ऊँचाई आठ योजन की होती है।

चक्रवर्ती गुफा के ठीक बीच में आने वाली उमग्नजला और निमग्नजला महानदियों पर सैकड़ों खम्भों वाले पुल का निर्माण करवाकर उन्हें पार करते हैं तथा तमिस्रा गुफा के उत्तरी द्वार पर पहुँचते हैं। उनके वहाँ पहुँचते ही उत्तरी द्वार स्वत: सरसराहट की आवाज के साथ खुल जाता है। इस द्वार से निकलकर चक्रवर्ती भरत क्षेत्र के उत्तरार्द्ध भाग में अर्थात् चतुर्थ खंड में प्रवेश करते हैं।

भरतक्षेत्र के उत्तरार्ध भाग में आपात नामक महापराक्रमशाली अनार्य आदिवासी क्रूर भयंकर ऋद्धिवंत भील रहते हैं, उनके पास करोड़ों की सेना होती है, वे चक्रवर्ती के साथ महाभयंकर युद्ध करते हैं। भीलों के आक्रमण से चक्रवर्ती की सेना भी त्रस्त होकर भाग जाती है। सेना की अग्रपंक्ति भंग होने पर सेनापति आगबबूला होकर स्वयं मोर्चे पर आकर युद्ध करता है। वह चक्रवर्ती की तलवार को लेकर किरातों के प्रबल योद्धाओं को मार डालता है, कईयों को घायल और कईयों को मथ डालता है। तब वे म्लेच्छ निर्वस्त्र और ऊर्ध्वमुख होकर तेले की तपस्या के साथ अपने कुल देवता मेघमुख नागकुमार देवों का आह्वान करते हैं। देव वैक्रिय शक्ति से बादलों की विकुर्वणा कर मूसलाधार वर्षा करते हैं।

चक्रवर्ती इस भयंकर वर्षा से अपनी सेना की रक्षा के लिये चर्मरत्न को 12 योजन तक विस्तृत करते हैं और निन्यानवे हजार स्वर्ण निर्मित शलाकाओं से युक्त छत्ररत्न को कुछ अधिक 12 योजन तिरछा फैला देते हैं। चर्मरत्न पर उनकी सारी सेना चढ़ जाती है, ऊपर छत्र तन जाता है तथा मणिरत्न के प्रकाश में गाथापतिरत्न धान्य, सब्जी आदि भोज्य सामग्री की संपूर्ण व्यवस्था कर देता है। इस प्रकार सात दिन-रात की भयंकर वर्षा में भी चक्रवर्ती की सेना को किसी भी प्रकार का तनिक भी कष्ट नहीं होता है। अंतत: किरातों की धृष्टता देखकर कोपायमान चक्रवर्ती मेघकुमार देवों को फटकारते हैं, तब उपद्रव शांत होता है और सभी म्लेच्छ राजा चक्रवर्ती की शरण स्वीकार करते हैं। तदनन्तर चक्रवर्ती के आदेश से सेनापति सिन्धु महानदी के पश्चिमी भागवर्ती दूसरे निष्कुट-कोण प्रदेशों को जो पूर्व में सिन्धु महानदी में पश्चिम में समुद्र, उत्तर में चुल्लहिमवान पर्वत तथा दक्षिण में वैताढ्यपर्वत से मर्यादित है, उसके सम-विषम कोणस्थ स्थानों को जीतता है, वह तीसरा खंड कहलाता है। इसके पश्चात् चक्रवर्ती चुल्लहिमवान पर्वत के पास उसके बहिर्भाग और आभ्यन्तर भाग में अधिष्ठित सभी नागकुमार, असुरकुमार, सुपर्णकुमार देवों को अधीन करके तेले की तपस्या के साथ **चुल्लहिमवान् गिरिकुमार** को वश में करते हैं एवं उसे उत्तर दिशा का सीमारक्षक नियुक्त करते हैं।

यहाँ से वे चतुर्थ खण्ड में स्थित 'ऋषभकूट पर्वत' के पास आकर रथ के अग्रभाग से उसका तीन बार स्पर्श करवाते हैं और काकिणी रत्न से पर्वत के पूर्वीय कटक मध्यभाग में अपना नामांकन करते हैं। वहाँ से दक्षिण दिशा में वैताढ्य पर्वत की उत्तर दिशावर्ती तलहटी के पास सैन्य शिविर स्थापित कर **विद्याधर** राजाओं को साधने के लिये तेला करते हैं। यहाँ पर चक्रवर्ती को विश्व में अद्वितीय सुंदरी स्त्री-रत्न की प्राप्ति होती है।

फिर वे वहाँ से उत्तर-पूर्व दिशा के पाँचवें खण्ड में गंगा देवी के भवन की ओर प्रयाण करते हैं। तेले की तपस्या के साथ **गंगादेवी** को वश करके गंगा के पश्चिमी किनारे दक्षिण दिशा में खण्डप्रपात गुफा का द्वार खुलवाने हेतु **नृत्तमालक** अधिपति देव का ध्यान करते हुए तेला तप करते हैं। नृत्तमालक देव को वश में करने के बाद चक्रवर्ती सेनापति को गंगानिष्कूट के प्रदेश पर विजय प्राप्त करने का आदेश देते हैं। सेनापति पाँचवें खण्ड के सम-विषम स्थान पर विजय ध्वज फहराकर पुन: गंगा नदी पार कर छावनी में आता है। तब चक्रवर्ती

खण्डप्रपात गुफा का उत्तरी द्वार सेनापति द्वारा खुलवाते हैं। यहाँ भी तमिस्रागुफा के समान ही काकिणी रत्न से 49 मण्डल बनाते हुए उमग्नजला व निमग्नजला नदियों को पार कर गुफा के दक्षिणी द्वार से निकलते हैं। वहाँ से गंगा महानदी के पश्चिमी तट पर नौ निधिरत्नों को उद्दिष्ट कर तेले का तप करते हैं।

नवनिधियों की प्राप्ति के पश्चात् वहाँ से चक्रवर्ती के आदेश से सेनापति रत्न भरतक्षेत्र के कोण स्थित दूसरें प्रदेशों को, जो पश्चिम दिशा में गंगा से, पूर्व एवं दक्षिण दिशा में समुद्रों से और उत्तर दिशा में वैताढ्य पर्वत की सीमा के हैं, उन सम-विषम कोणस्थ प्रदेशों पर विजय-वैजयन्ती फहराता है। यह छठा खण्ड कहा जाता है।

अंत में, चक्रवर्ती वहाँ से दक्षिण-पश्चिम दिशा (नैऋत्यकोण) में तेले की तपस्या के साथ अपनी राजधानी विनीता में पूर्वी द्वार से ही प्रवेश करते हैं। राजधानी में महोत्सव पूर्वक छहों खण्ड के राजा-महाराजा चक्रवर्ती का राज्याभिषेक महोत्सव मनाकर उसे 'चक्रवर्ती' पद प्रदान करते हैं। उस समय भी चक्रवर्ती तेला तप करते हैं। चक्रवर्ती पद का प्रमोदोत्सव 12 वर्ष तक चलता है। दिग्विजय यात्रा में चक्रवर्ती 13 बार तेला तप करते हैं। **(चित्र क्रमांक 37)**

चक्रवर्ती के षट्खण्ड साधना के मुख्य केन्द्र और 13 तेले

दिग्विजय यात्रा में चक्रवर्ती—3 तीर्थ, 2 नदी की देवी, 2 गुफा के देव, 2 पर्वत के देव, 1 विद्याधर राजा, 1 नवनिधि, 1 वनिता प्रवेश और 1 राज्याभिषेक के अवसर पर—इस प्रकार कुल 13 तेले करते हैं।

चक्रवर्ती की षट्खण्ड विजय यात्रा का क्रम

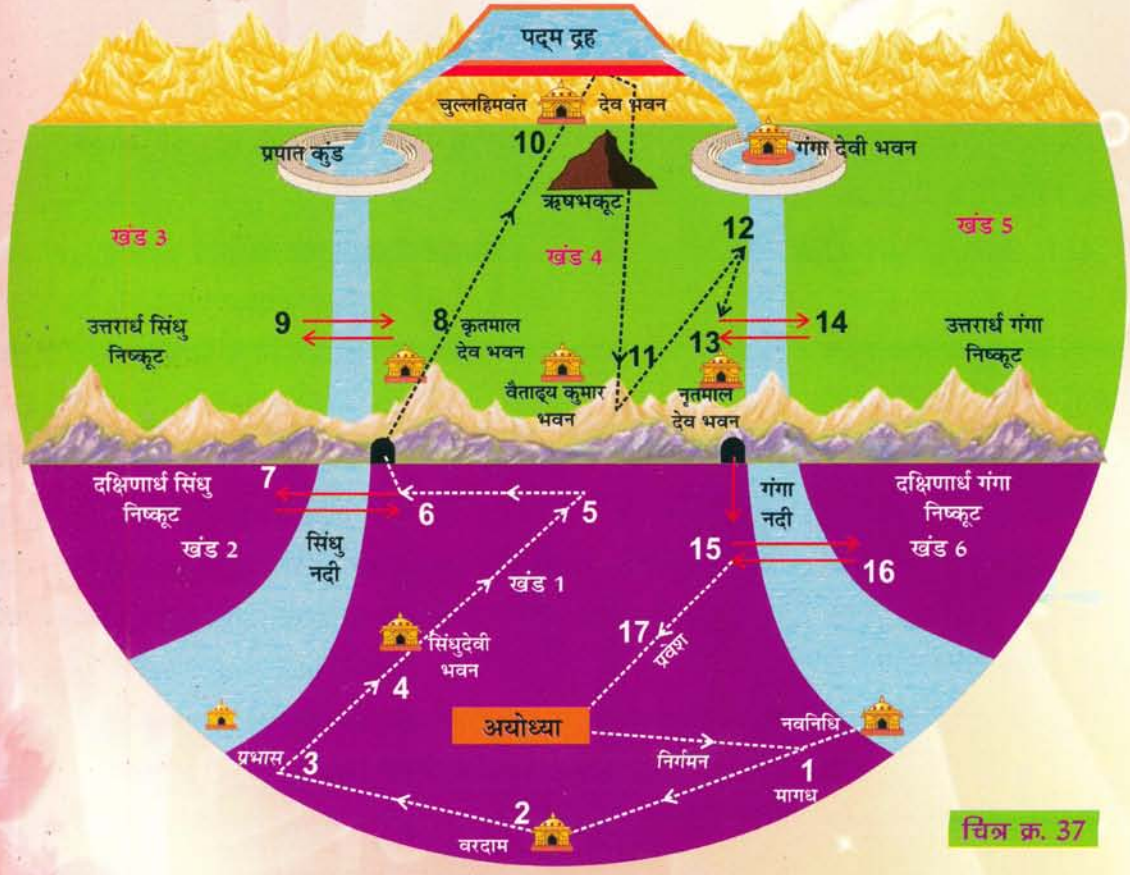

चित्र क्र. 37

दो गुफा के द्वार खोलने के लिये 2 तेले सेनापति करता है। चुल्लहिमवंत पर्वत के देव के तेले के साथ ही ऋषभकूट पर नामांकन किया जाता है। गुफावर्ती दो-दो नदी ऐसे कुल चार नदियों पर स्थायी पुल चक्रवर्ती के आदेश से वर्धकी रत्न बनाता है और दोनों गुफाओं को प्रकाशित करने के लिए 49-49 स्थायी मंडल चक्रवर्ती बनाता है।

तीन तीर्थ और चुल्लहिमवंत पर्वत—इन चार स्थानों पर ही चक्रवर्ती तीर फैंकता है। चुल्लहिमवंत पर 72 योजन दूर देव भवन में तीर फैंकने के लिए चक्रवर्ती पर्वत की ऊँचाई के बराबर अर्थात् 100 योजन जितना ऊँचा वैक्रिय शरीर बनाता है।

चक्रवर्ती के चौदह रत्न—

(1) चक्ररत्न—यह सेना के आगे-आगे आकाश में 'गरणाट शब्द करता हुआ चलता है और छह खण्ड साधने का रास्ता बताता है।

(2) छत्ररत्न—यह सेना के ऊपर 12 योजन लम्बे, 9 योजन चौड़े छत्र के रूप में परिणत हो जाता है और शीत, ताप तथा वायु आदि के उपसर्ग से रक्षा करता है।

(3) दण्डरत्न—विषम स्थान को सम करके सड़क जैसा रास्ता बनाता है और वैताढ्य पर्वत की दोनो गुफाओं के द्वार खोलता है।

(4) खड्गरत्न—यह 50 अंगुल लम्बा, 16 अंगुल चौड़ा और आधा अंगुल मोटा, अत्यन्त तीक्ष्ण धार वाला होता है। हजारों कोसों की दूरी पर स्थित शत्रु का सिर काट डालता है।

(5) मणिरत्न—चार अंगुल लम्बा और दो अंगुल चौड़ा होता है। इसे ऊँचे स्थान पर रखने से दो योजन तक चन्द्रमा के समान प्रकाश फैल जाता है। अगर हाथी के मस्तक पर रख दिया जाय तो सवार को किसी प्रकार का भय नहीं होता।

(6) काकिणीरत्न—छहों ओर से चार-चार अंगुल लम्बा-चौड़ा, सुनार के ऐरन के समान, 6 तले, 8 कोने और 12 हांसे वाला तथा 8 सोनैया भर वजन का होता है। इससे वैताढ्य पर्वत की गुफाओं में एक-एक योजन के अन्तर पर 500 धनुष के गोलाकार 49 मंडल किये जाते हैं। उसका चन्द्रमा के समान प्रकाश जब तक चक्रवर्ती जीवित रहते हैं, तब तक बना रहता है।

(7) चर्मरत्न—यह दो हाथ लम्बा होता है। यह 12 योजन लम्बी और 9 योजन चौड़ी नौका रूप हो जाता है। चक्रवर्ती की संपूर्ण सेना इस पर सवार होकर गंगा और सिंधु जैसी महानदियों को पार कर लेती है।

(8) सेनापतिरत्न—बीच के दोनों खण्डों को चक्रवर्ती स्वयं जीतता है और चारों कोनों के चारों खण्डों को चक्रवर्ती का सेनापति जीतता है। यह वैताढ्य पर्वत की गुफाओं के द्वार दंड का प्रहार करके खोलता है और म्लेच्छों को पराजित करता है।

(9) गाथापतिरत्न—यह चर्मरत्न को पृथ्वी के आकार का बनाकर, उन पर 24 प्रकार का धान्य और सब प्रकार का मेवा-मसाला, शाक-सब्जी आदि दिन के पहले पहर में लगाता है, दूसरे पहर में सब पक जाते हैं उन्हें तीसरे पहर में तैयार करके चक्रवर्ती की संपूर्ण सेना को खिला देता है।

(10) वर्धकिरत्न—यह मुहूर्त भर में 12 योजन लम्बा, 9 योजन चौड़ा ऐसा 42 खंड का महल तैयार कर देता है। साथ ही पौषधशाला, रथशाला, घुड़साल, पाकशाला, बाजार आदि सब सामग्री से युक्त नगर तक बना देता है। चक्रवर्ती षट्खण्ड विजय के समय अपने समस्त परिवार के साथ उसमें निवास करते हैं।

(11) पुरोहितरत्न—यह शुभ मुहुर्त बतलाता है। लक्षण, हस्तरेखा आदि (सामुद्रिक), व्यंजन (तिल, मसा आदि) स्वप्न, अंग का फड़कना इत्यादि सभी तरह के शुभ-अशुभ फल बताता है, शान्तिपाठ जप इत्यादि करता है।

(12) स्त्रीरत्न—(श्रीदेवी) यह वैताढ्यपर्वत की उत्तर श्रेणी के स्वामी विद्याधर की पुत्री होती है। यह संपूर्ण भरतक्षेत्र में अद्वितीय सुरूपवती और सदैव कुमारिका के समान युवती रहती है। इसका देहमान चक्रवर्ती के देहमान से चार अंगुल कम होता है। यह पुत्र प्रसव नहीं करती है। अंत समय तक भोगों में लिप्त रहकर यह आयुष्य पूर्ण कर छठी नरक में जाती है।

(13) अश्वरत्न—(कमलापति घोड़ा) यह पूंछ से मुख तक 108 अंगुल लम्बा, खुर से कान तक 80 अंगुल ऊँचा, क्षण भर में अभीष्ट स्थान पर पहुँचा देने वाला और विजयप्रद होता है।

(14) गजरत्न—यह चक्रवर्ती से दुगुना ऊँचा होता है। महासौभाग्यशील, कार्यदक्ष और अत्यन्त सुन्दर होता है। **(चित्र क्रमांक 38)**

चक्रवर्ती के 14 रत्नों में चक्ररत्न, दण्डरत्न, असिरत्न तथा छत्ररत्न ये 4 एकेन्द्रिय रत्न आयुधशाला-शस्त्रागार में उत्पन्न होते हैं। चर्मरत्न, मणिरत्न, काकिणी रत्न श्री गृह-भण्डारागार में उत्पन्न होते हैं। सेनापति रत्न, गाथापति रत्न, वर्धकि रत्न, तथा पुरोहित रत्न, ये चार अयोध्या राजधानी में उत्पन्न होते हैं। स्त्रीरत्न उत्तर विद्याधर श्रेणी में उत्पन्न होती है। अश्व और गजरत्न वैताढ्य पर्वत की तलहटी में उत्पन्न होते हैं।

चित्र क्र. 38

चक्रवर्ती की नौ निधियाँ—

(1) नैसर्प निधि—गाँव, नगर, भवन आदि का निर्माण व सेना का पड़ाव डालने के लिये सामग्री और विधि प्रदान करती है।

(2) पाण्डुक निधि—तोलने और मापने के उपकरण तथा चाँवल आदि धान्यों को उत्पन्न करने वाली।

(3) पिंगलक निधि—मनुष्य या हाथी-घोड़े आदि के आभूषण उत्पन्न करने वाली।

(4) सर्वरत्न निधि—अश्व गज, चक्र, दण्ड आदि चक्रवर्ती के 14 रत्नों की उत्पत्ति में हेतु बनती है।

(5) महापद्म निधि—सभी प्रकार के वस्त्र को उत्पन्न करने, उन्हें रंगने, धोने आदि समग्र सज्जा का निष्पादन करने वाली।

(6) कालनिधि—विविध प्रकार के बर्तन सौ प्रकार के शिल्पों का ज्ञान तथा भूत-भविष्य के शुभाशुभत्व का ज्ञान कराने वाली।

(7) महाकाल निधि—विविध प्रकार के स्वर्ण-रजत-हीरे-मूँगे आदि की खानें उत्पन्न करने की विशेषता युक्त।

(8) माणवक निधि—सभी प्रकार के अस्त्र-शस्त्र की सामग्री एवं युद्धनीति व राजनीति का ज्ञान कराने वाली।

(9) शंख निधि—सब प्रकार की नृत्य विधि, नाटक विधि काव्य एवं वाद्यों को ज्ञान कराने वाली।

(चित्र क्रमांक 39)

ये नौ ही निधियाँ समुद्र और गंगा महानदी के संगम स्थान पर अर्थात् गंगा के पश्चिमी तट पर रहती हैं।

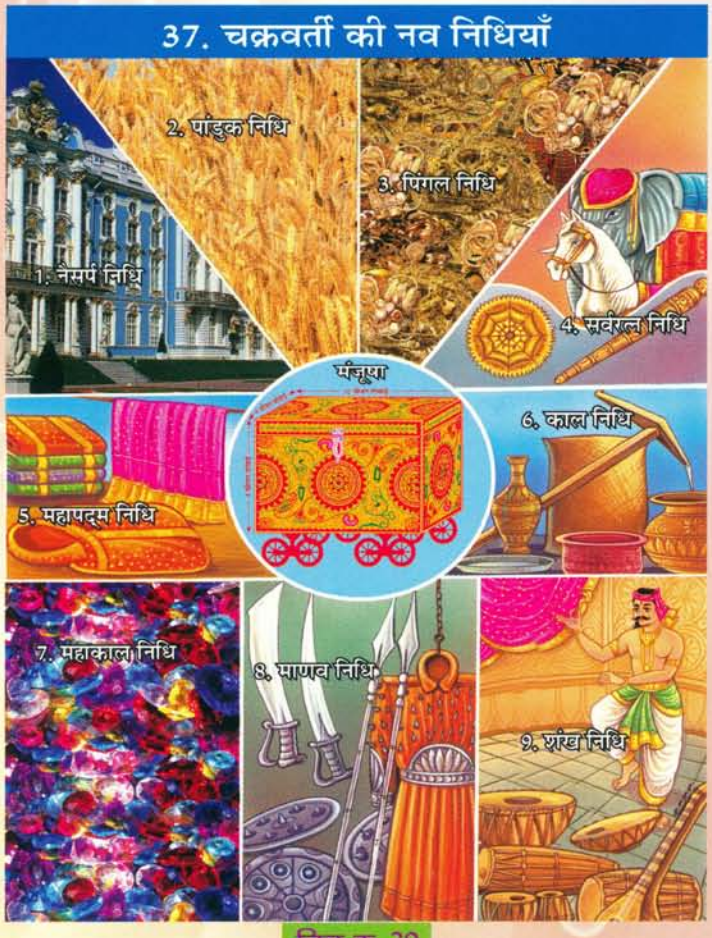

चित्र क्र. 39

जब चक्रवर्ती नौ निधिरत्नों को उद्दिष्ट कर इन्हें प्राप्त करने के लिये तेला तप करते हैं, तब इनके अधिष्ठातादेव चक्रवर्ती के समक्ष नौ निधियों सहित उपस्थित होते हैं। प्रत्येक निधि 8 योजन ऊँचे, 9 योजन चौड़े और 12 योजन लम्बे मंजूषाकार आठ-आठ चक्रों के ऊपर अवस्थित होती है। ये मंजूषाएँ स्वर्णजटित होती हैं, इनके कपाट वैडूर्यमणिमय, चन्द्र सूर्य, चक्र के चिह्नों से युक्त होते हैं। विविध प्रकार के रत्नों से परिपूर्ण इन मंजूषाओं में इष्ट अर्थ की सिद्धि करने वाली पुस्तकें होती हैं, जिन्हें पढ़कर उन्हें प्राप्त करने की विधि का ज्ञान होता है। अपने-अपने नाम सदृश एक पल्योपम की स्थिति वाले देवों द्वारा ये अधिष्ठित होती हैं। ये सब निधियाँ अनुपम व अनमोल होती हैं। चक्रवर्ती के साथ-साथ धरती के नीचे चलती हुई राजधानी के बाहर स्थित रहती है। निधियों का मुख सुरंग के जैसा होता है,

वह श्रीगृह में खुलता है। चक्रवर्ती के जीवनकाल में ये उनके पास रहती हैं, उनके दीक्षा अंगीकार कर लेने या आयु पूर्ण होने पर अपने-अपने स्थान पर चली जाती हैं। गंगा और सिंधु नदी के पुल धीरे-धीरे विनष्ट हो जाते हैं। तमिस्रा और खंडप्रपात गुफा के द्वार उसके अधिष्ठायकदेव बंद कर देते हैं। अर्थात् छह खण्ड का व्यवहार छह मास में अपने आप बंद हो जाता है। सात एकेन्द्रिय रत्न अपने स्थान पर चले जाते हैं। पंचेन्द्रिय रत्न आयु पूर्ण कर जाते हैं। स्त्रीरत्न मरकर नरक में पैदा होती है।

❑ कालचक्र

सृष्टि अनादि से है और अनंतकाल तक रहेगी। यह कभी नष्ट नहीं होती, किंतु कहीं-कहीं काल के प्रभाव से उतार-चढ़ाव आता रहता है। काल का यह पहिया केवल अढ़ाई द्वीप में स्थित भरत-ऐरावत क्षेत्र में ही घूमता है। अत: वहाँ कभी ह्रास की स्थिति आती है कभी विकास की, इसी को '**कालचक्र**' कहते हैं।

मुख्यरूप से काल के दो विभाग होते हैं—**(1) अवसर्पिणी काल** और **(2) उत्सर्पिणी काल**। जिस काल में मनुष्य एवं तिर्यंचों की आयुष्य संहनन, संस्थान शरीर की ऊँचाई, सुख-वैभव एवं विचार आदि निरन्तर घटते रहते हैं, वह '**अवसर्पिणी काल**' तथा जिसमें उक्त सभी बातें क्रमश: बढ़ती जाती हैं, वह '**उत्सर्पिणी काल**' कहलाता है। अवसर्पिणीकाल समाप्त होने पर उत्सर्पिणी काल आता है और उत्सर्पिणी काल समाप्त होने पर अवसर्पिणी काल आता है। दिन के बाद रात्रि और रात्रि के बाद दिन के समान अनादिकाल से भरत-ऐरावत क्षेत्र में यह क्रम चला आ रहा है और अनन्तकाल तक यही क्रम चलता रहेगा। उत्सर्पिणी में लोग अपने दु:ख के दिन याद करेंगे और अवसर्पिणी में सुख के दिन।

कालचक्र की अवधि—अवसर्पिणी काल दस कोटाकोटि सागरोपम का है इसी प्रकार उत्सर्पिणी काल भी दस कोटाकोटि सागरोपम का है। दोनों मिलकर 20 कोटाकोटि सागरोपम का एक '**कालचक्र**' होता है। कालचक्र कोई वास्तविक चक्र नहीं, किंतु जैसे चक्र घूमता हुआ पुन: उसी स्थान पर आ जाता है, उसी प्रकार आज जैसा काल है, वह अमुक समय पश्चात् पुन: लौट आएगा, अत: काल को चक्र रूप में गिना गया है। प्रत्येक काल के छह-छह आरे (भेद) हैं, कालचक्र के कुल बारह आरे हैं। **(चित्र क्रमांक 40)**

अवसर्पिणी (अपकर्ष) काल

(1) सुषम-सुषमा—चार कोटा कोटि सागरोपम तक चलने वाला यह आरा अत्यन्त सुख होने के कारण 'सुषम-सुषमा' कहा जाता है। इस काल में भूमि रज, धूम, अग्नि, हिम, कंकर, कंटक आदि से रहित होती है। शंख, कीड़े-मकोड़े, चींटी, मक्खी-मच्छर, खटमल, बिच्छू आदि विकलेन्द्रिय जीव नहीं होते। असंज्ञी तथा जात-विरोधी जीव भी नहीं होते। हाथी, घोड़े, गाय, ऊँट, हिरण आदि तथा सिंह, व्याघ्र आदि जंगली पशु भी वैरानुबंध से रहित भद्र स्वभावी होते हैं। पंचवर्णी पुष्पलताएँ, कमल आदि से युक्त निर्मल जल से परिपूर्ण वापियाँ, उन्नत पर्वत, इन्द्र नीलमणी आदि रत्न, मणिमय बालू से शोभित उत्तम नदियाँ होती हैं। गर्मी, सर्दी, अंधकार नहीं होता। परस्त्रीरमण, परधनहरण आदि व्यसन नहीं होते।

इस काल में उत्तम तिल, मसा आदि चिह्न और शंख, चक्र आदि लक्षणों सहित महारूपवान और सरल स्वभाव वाले स्त्री-पुरूष का जोड़ा एक साथ उत्पन्न होता है, 49 दिन तक उनका पालन-पोषण करने के बाद वे स्वावलम्बी होकर सुखोपभोग करते हैं।

मनुष्यों का देहमान तीन कोस का तथा आयुष्य तीन पल्योपम की होती है, शरीर में 256 पसलियाँ होती हैं। वज्रऋषभनाराच संहनन एवं समचौरस संस्थान होता है। आहार की इच्छा तीन-तीन दिन के अन्तर से होती है, तब अपने शरीर परिमाण (तुअर के बराबर) कल्पवृक्षों के फल-फूलों का आहार करते हैं। मिट्टी भी मिश्री के समान मीठी, चक्रवर्ती के भोजन से भी अधिक स्वादयुक्त होती है। स्वामी सेवक व्यवहार नहीं होता। प्रत्येक मनुष्य का बल नौ हजार हाथियों सदृश होता है। नर-नारी के अतिरिक्त अन्य परिवार नहीं होता। जब युगल की आयु पन्द्रह महीना शेष रहती है, तब युगलिनी ऋतु को प्राप्त होती है, उस समय वेदमोहनीय कर्म के उदय से उनका सबंध होता है और नारी गर्भ धारण करती है और आयु के छह महीने पूर्व युगलिनी पुत्र-पुत्री का

काल चक्र

चित्र क्र. 40

एक जोड़ा प्रसव करती है। एक-दूसरे का वियोग नहीं देखना पड़ता, रोग-शोक बीमारी, किसी भी प्रकार का बाह्य या आंतरिक उपद्रव नहीं होता। एक को छींक, दूसरे को जंभाई आते ही आयु पूर्ण कर वे देवगति में वर्तमान आयु से कुछ कम आयु प्राप्त कर उत्पन्न होते हैं। उस क्षेत्र का अधिष्ठाता देव मृतक शरीर को क्षीर-समुद्र में प्रक्षिप्त कर देता है।

इस काल में ग्राम, नगर, असि, मसि, कृषि, वणिक, पणित आदि नहीं होते। दस प्रकार के कल्पवृक्षों से वे अपनी मन-कल्पित सभी इच्छाओं और आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं—

कल्पवृक्षों के नाम—(1) **मत्तांग**—मधुर फल प्रदाता, (2) **भृतांग**—विविध प्रकार के भाजन-पात्र बर्तन के प्रदाता, (3) **त्रुटितांग**—49 प्रकार के वाद्यंत्र मधुर शब्द-स्वर प्रदाता, (4) **दीपशिखा**—प्रकाशप्रदायक, (5) **जोतिषिक**—रात्रि में सूर्य के सामन चमकने वाले, (6) **चित्रांग**—सुगंधित माला पुष्प प्रदाता, (7) **चित्ररस**—18 प्रकार का स्वादिष्ट भोजन देने वाले, (8) **मण्यंग**—मणिमय आभूषणों के प्रदाता, (9) **गेहाकार**—विविध प्रकार के गृह-निवासस्थान प्रदाता, (10) **अनग्न**—वस्त्रों की आवश्यकता पूर्ण करने वाले।

ये सभी कल्पवृक्ष न कोई व्यन्तर देव हैं न अन्य कोई चमत्कार, वरन् सभी उत्कृष्ट जाति के पृथ्वीकाय या वनस्पतिकाय का रूप हैं, जो जीवों को उनके पुण्य कर्मो का फल देते हैं।

भोगभूमि में उत्पत्ति के कारण—भोगभूमि में मनुष्य या तिर्यंच जीव उत्पन्न होते हैं। मिथ्यात्व भाव से युक्त होने पर भी जो मंदकषायी, मधु-माँसादि के त्यागी, गुणियों के गुणों में अनुरक्त, बाल तपस्वी, निर्ग्रन्थ साधुओं को आहारादि दान देने वाले जीव या अनुमोदनादि करने वाले पशु भी यहाँ मनुष्य रूप से उत्पन्न होते हैं। जिसने सम्यग्दर्शन प्राप्त करने से पूर्व मनुष्य आयु का बंध कर लिया है ऐसे क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव भी भोगभूमि में उत्पन्न होते हैं। कोई अज्ञानी व्रत-भंग कर कुदेव-कुगुरू-कुधर्म की उपासना करने लगते हैं, वे भी भोगभूमि में तिर्यंच होते हैं। सम्यक्त्व के कारण वहाँ पर कोई जीव जातिस्मरण से, कोई देवों के सम्बोधन से कोई ऋद्धिधारी मुनि आदि के उपदेश से सम्यक्त्वी तो हो सकते हैं, किंतु श्रावक के व्रत या साधु के महाव्रत धारण नहीं कर सकते।

(2) **सुषमकाल**—सुषम-सुषमा काल में वर्ण, गंध रस स्पर्श, संहनन, संस्थान कर्म, बल, वीर्य, पुरूषाकार, पराक्रम आदि निरंतर घटते चले जाते है। इस प्रकार प्रथम आरे की समाप्ति के बाद तीन कोटाकोटि सागरोपम का '**सुषम**' काल प्रारम्भ होता है। इस काल में शरीर की ऊँचाई दो कोस अर्थात् चार हजार धनुष, आयु दो पल्योपम और शरीर का वर्ण चन्द्रमा सदृश धवल होता है। पृष्ठभाग में 128 पसलियाँ रह जाती हैं। सुंदर समचतुरस्र संस्थान से युक्त ये तीसरे दिन बेर के बराबर आहार कर तृप्त हो जाते हैं। पृथ्वी का स्वाद शक्कर जैसा रह जाता है। मृत्यु से छह मास पूर्व युगल पुत्र-पुत्री जन्म लेते हैं, 64 दिन उनका पालन-पोषण होता है। आरे के अंतिम समय तक वर्ण, रस, गंध और स्पर्श की उत्तमता में अनन्तगुणी हीनता आ जाती है।

(3) **सुषम-दुषमा काल**—दूसरा आरा समाप्त होने पर दो कोटाकोटि सागरोपम प्रमाण तीसरे आरे में दुःख की स्वल्प संवेदनाएँ होने लगती हैं। मनुष्यों की ऊँचाई एक कोस (दो हजार धनुष) आयुष्य एक पल्योपम और पृष्ठभाग में 64 पसलियाँ रह जाती हैं। प्रति दूसरे दिन आँवले के बराबर आहार ग्रहण करते हैं।

पृथ्वी का स्वाद गुड़ जैसा होता है। छह मास पूर्व युगलिनी एक युगल को जन्म देती है और 79 दिन पालन-पोषण करने पर वे स्वावलम्बी बन जाते हैं।

उक्त तीनों भोगभूमि को उत्तम, मध्यम और जघन्य भोगभूमि भी कहते हैं।

कुलकरों की उत्पत्ति—तीसरे आरे के 66 लाख करोड़, 66 हजार करोड़, 66 करोड़, 66 लाख, 66 हजार, 666 सागरोपम बीत जाने पर अर्थात् तीसरे आरे के तीसरे भाग में ऋद्धि, बल, तेज आदि की क्रमशः हीनता के कारण परस्पर विवाद प्रारम्भ होते हैं। उनका समाधान करने के लिये एक के बाद एक 14 कुलकरों की उत्पत्ति होती है। उनके नाम हैं—1. सुमति, 2. प्रतिश्रुति, 3. सीमकर, 4. सीमंधर, 5. क्षेमंकर, 6. क्षेमंधर, 7. विमलवाहन, 8. चक्षुष्मान, 9. यशस्वान्, 10. अभिचन्द्र, 11. चन्द्राभ, 12. प्रसेनजित, 13. मरूदेव और 14 नाभि। ये वर्तमान अवसर्पिणी के अत्यंत तेजस्वी बुद्धिमान, जन्मान्तर के संस्कारों से युक्त मर्यादा पुरूष थे। प्रारंभ के पाँच कुलकरों के समय **'हकार'** दण्डनीति अर्थात् **'हा'! तुमने यह कार्य किया?'** इस प्रकार अपराधी को लज्जित किया जाता था। आगे पाँच कुलकरों के समय **'मकार'** अर्थात् **'ऐसा मत करो।'** तथा उसके बाद कुलकरों के समय **'धिक्कार'** दण्डनीति थी। ऐसा कहने मात्र से लोग अपराध करना छोड़ देते थे।

तीर्थंकर जन्म एवं कर्मभूमि का प्रारम्भ

जब तृतीय काल में चौरासी लाख पूर्व तीन वर्ष साढ़े आठ मास शेष रहते हैं, तब अंतिम कुलकर के यहाँ अवसर्पिणी काल के प्रथम तीर्थंकर का जन्म होता है। युवावस्था में उनका विवाह सम्पन्न होता है, पश्चात् वे प्रजा को असि, मसि, कृषि, विद्या, वाणिज्य और शिल्प इन षट्क्रियाओं से आजीविका का उपाय बताते हैं। पुरूषों की 72 एवं स्त्रियों की 64 कलाएँ सिखाते हैं। चार कुल एवं 18 श्रेणियाँ-प्रश्रेणियाँ स्थापित करते हैं। क्षत्रिय, वैश्य, शुद्र, नाम से तीन वर्णों की स्थापना करते हैं। यद्यपि ये सभी कलाएँ, विद्याएँ, लिपियाँ एवं श्रेणी-प्रश्रेणियाँ अनादिकाल से हैं और अनंतकाल तक रहेंगी, तथापि काल के प्रभाव से भरत और ऐरवत क्षेत्र में कभी लुप्त हो जाती हैं। प्रथम तीर्थंकर बनने वाली आत्मा अपने राज्यकाल में इन सभी विद्याओं और कलाओं को पुनः प्रकट करती हैं। ये सभी विद्याएँ महाविदेह क्षेत्र में सदैव बनी रहती हैं।

(4) दुषम-सुषमा काल—यह आरा 42 हजार वर्ष कम एक कोटाकोटि सागरोपम का है। इसमें दुःख ज्यादा और सुख अल्प होता है। पूर्वापेक्षया वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, संघयण, संस्थान आदि की उत्तमता में कमी आ जाती है। देहमान क्रमशः घटते-घटते 500 धनुष का और आयुष्य एक करोड़ पूर्व की रह जाता है। पसलियाँ सिर्फ 32 होती हैं। दिन में एक बार भोजन की इच्छा पैदा होती है। इसमें मनुष्य के छहों संहनन[1] (शरीर

---

1. **छह संहनन**—**(1) वज्रऋषभनाराच संहनन**—एक हजार मन का भरा हुआ शकट शरीर पर से निकल जाए तो कच्चे सूत के समान मालूम पड़े वह संहनन-हड्डियों की रचना-विशेष, **(2) ऋषभनाराच संहनन**—एक सौ मन का शकट शरीर पर से निकल जावे तो कच्चे धागे की तरह मालूम पड़े, **(3) नाराच संहनन**—10 मन का शकट जिस शरीर पर से निकल जावे तो भी कच्चे धागे की तरह मालूम पड़े, **(4) अर्द्धनाराच संहनन**—एक मन का शकट जिस शरीर पर से निकल जावे तो भी कच्चे धागे की तरह मालूम देवे, **(5) कीलिका**—संहनन-जिसमें नरम झाड़ की तरह आसानी से हड्डियाँ झुक जाती है, जो अधिक वजन सहन नहीं कर सकती, **(6) सेवार्तक-संहनन**—जिसमें हड्डियाँ अधिक दुर्बल हों, साधारण वजन से टूट जाएँ।

की मजबूती) और छहों संस्थान[2] (शरीर का आकार विशेष) होते हैं। इस आरे में नरक, तिर्यंच, मनुष्य, देव और मोक्ष इन पाँचों गतियों को प्राप्त होने वाले जीव होते हैं। 23 तीर्थंकर, 11 चक्रवर्ती, 9 बलदेव, 9 वासुदेव और 9 प्रतिवासुदेव भी इसी काल में जन्म लेते हैं।

तीर्थंकर—जो भवसागर से स्वयं तिरते हैं और अपने साथ लाखों मुमुक्षु आत्माओं को तिराने का मार्ग प्रदान करते हैं, वे '**तीर्थंकर**' कहलाते हैं। प्रत्येक अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी काल में ऐसी सर्वोत्कृष्ट आत्माएँ 24 ही अवतरित होती है, उनके नाम इस प्रकार है—

1. ऋषभदेव,	2. अजितनाथ,	3. संभवनाथ,	4. अभिनंदननाथ,
5. सुमतिनाथ,	6. पद्मप्रभ,	7. सुपार्श्वनाथ,	8. चन्द्रप्रभ,
9. सुविधिनाथ,	10. शीतलनाथ,	11. श्रेयांसनाथ,	12. वासुपूज्य,
13. विमलनाथ,	14. अनंतनाथ,	15. धर्मनाथ,	16. शांतिनाथ,
17. कुंथुनाथ,	18. अरहनाथ,	19. मल्लिनाथ,	20. मुनिसुव्रतनाथ,
21. नमिनाथ,	22. नेमिनाथ,	23. पार्श्वनाथ,	24. महावीर।

तीर्थंकरों का अन्तर काल—प्रथम तीर्थंकर के मोक्ष जाने के पश्चात् 50 लाख करोड़ सागर व्यतीत हो जाने पर दूसरे तीर्थंकर मोक्षपद प्राप्त करते हैं। इनके 30 लाख करोड़ सागर व्यतीत हो जाने पर तीसरे तीर्थंकर सिद्ध होते हैं। इसके बाद क्रमशः 10 लाख करोड़ सागर व्यतीत हो जाने पर चौथे, 9 लाख करोड़ सागर के बाद पाँचवे, 90 हजार करोड़ सागर के बाद छठे, 9 हजार करोड़ सागर के बाद सातवें, 900 करोड़ सागर के बाद आठवें, 90 करोड़ सागर के बाद नौवें, 9 करोड़ सागर के बाद दसवें भगवान सिद्ध हुए। 33 लाख 73 हजार नौ सौ सागर के व्यतीत हो जाने पर ग्यारहवें, 54 सागर के बीत जाने पर बारहवें, 30 सागर व्यतीत हो जाने पर तेरहवें, 9 सागर व्यतीत हो जाने पर चौदहवें, 4 सागर के पश्चात् पन्द्रहवें, पौन पल्य कम 3 सागर के बीत जाने पर सोलहवें, अर्द्धपल्य काल के बीत जाने पर सत्रहवें, एक करोड़ वर्ष कम पाव पल्य के बीत जाने पर अठारहवें, एक हजार करोड वर्ष के बाद उन्नीसवें, 54 लाख वर्षों के बीत जाने पर बीसवें, 6 लाख वर्ष बीत जाने पर इक्कीसवें, 5 लाख वर्ष के बाद बाईसवें, 83,750 वर्ष के बाद तेईसवें, 250 वर्ष पश्चात् चौबीसवें तीर्थंकर सिद्ध गति को प्राप्त होते हैं। उस समय पंचम काल के प्रवेश होने में तीन वर्ष साढ़े आठ मास शेष रहते हैं।

चक्रवर्ती—संपूर्ण भरत क्षेत्र के अधिपति एकमात्र चक्रवर्ती होते हैं। वे भरत क्षेत्र के छह खण्डों पर एकछत्र राज्य करते हैं। ये 14 रत्न नवनिधान के स्वामी एवं सर्वऋद्धि सम्पन्न होते हैं। इनके शरीर में 40 लाख अष्टापदों की शक्ति होती है। अंत में सर्वऋद्धि का त्यागकर जो संयम ग्रहण कर लेते है वे मोक्ष या वैमानिक देवों

---

2. छह संस्थान—(1) **समचतुस्त्रसंस्थान**—जिसमें शरीर की रचना, ऊपर नीचे तथा बीच में समभाग रूप से हो, (2) **न्यग्रोध परिमण्डल**—संस्थान-बड़ के समान जिस शरीर की रचना नीचे से खराब और ऊपर से अच्छी हो अर्थात् नाभि से नीचे के अंग छोटे और ऊपर के बड़े हों, (3) **सादि-संस्थान**—जिसमें नाभि से नीचे के अंग पूर्ण और ऊपर के अपूर्ण हों, (4) **कुब्जकसंस्थान**—जिसमें छाती पर या पीठ पर कुबड़ हो, (5) **वामनसंस्थान**—जिसमें शरीर बौना हो, ठिगना हो, (6) **हुण्डकसंस्थान**—जिसमें शारीरिक अंगोपांग किसी विशेष आकार में न हों, टेढ़ा-मेढ़ा आकार।

में जाते है, किंतु जो अंतिम समय तक भोगों में ही आसक्त रहकर मृत्यु प्राप्त करते है, वे नरक में जाते हैं। 12 चक्रवर्ती के नाम–(1) भरत, (2) सगर, (3) मघवा, (4) सनत्कुमार, (5) शान्तिनाथ, (6) कुन्थुनाथ, (7) अरनाथ, (8) सुभूम, (9) महापद्म, (10) हरिषेण, (11) जयसेन (12) ब्रह्मदत्त।

बलदेव– बलदेव वसुदेव के बड़े भाई होते हैं। दोनो के पिता एक और माता अलग-अलग होती है। दोनों भाईयों में परस्पर 'अत्यंत' प्रेम होने से दोनों ही मिलकर तीन खण्डों पर राज्य करते हैं। बलदेव में एक लाख अष्टापदों का बल होता है। वासुदेव की आयु पूर्ण होने के बाद बलदेव संयम धारण करते हैं और आयु का अंत होने पर स्वर्ग या मोक्ष में जाते हैं। नौ बलदेव–(1) अचल, (2) विजय, (3) भद्र, (4) सुप्रभ, (5) सुदर्शन, (6) आनन्द, (7) नन्दन, (8) पद्मरथ (राम), (9) बलभद्र।

वासुदेव– पूर्वभव में निर्मल तप संयम का पालन करके नियाणा (निदान-कर्मफल की इच्छा) करते हैं और आयु पूर्ण होने पर स्वर्ग या नरक का एक भव करके उत्तम कुल में अवतरित होते हैं। उनकी माता को सात उत्तम स्वप्न आते हैं। जन्म ग्रहण करके युवावस्था को प्राप्त होकर राजसिंहासन पर स्थित होते हैं। 20 लाख अष्टापदों का बल इनके शरीर में होता है। वासुदेव पद की प्राप्ति के समय सात रत्न उत्पन्न होते हैं। यथा– **(1) सुदर्शन चक्र, (2) अमोघ खड्ग, (3) कोमुदी गदा, (4) पुष्पमाला, (5) धनुष-अमोघबाण (शक्ति), (6) कौस्तुभमणि और (7) महारथ।** नौ वासुदेव–(1) त्रिपृष्ठ, (2) द्विपृष्ठ, (3) स्वयंभू, (4) पुरूषोत्तम, (5) पुरूषसिंह, (6) पुरूषपुण्डरीक, (7) दत्त, (8) लक्ष्मण, (9) कृष्ण।

प्रतिवासुदेव– वासुदेव से पहले प्रतिवासुदेव उत्पन्न होता है। वह दक्षिणार्द्ध भरत क्षेत्र पर राज्य करता है। वासुदेव उसे मार कर उसके राज्य के अधिकारी बन जाते हैं। अर्थात् वासुदेव का तीन खण्डों पर एक छत्र राज्य होता है। प्रतिवासुदेव अंतिम समय में अतृप्तकामी होकर नरक गति में जाते हैं। नौ प्रतिवासुदेव–(1) सुग्रीव, (2) तारक, (3) मेरक, (4) मधुकैटभ, (5) निसुम्भ, (6) बल, (7) प्रह्लाद, (8) रावण, (9) जरासंध।

(5) दुषम आरा– चौबीसवें तीर्थंकर के निर्वाण के पश्चात् तीन वर्ष साढ़े आठ मास व्यतीत होने पर दुषम नामक पाँचवाँ आरा प्रविष्ट होता है। यह आरा 21 हजार वर्ष का है। इस काल में चौथे आरे की अपेक्षा शुभ पुद्गलों में अनन्तगुणी हीनता आ जाती है। आयुष्य जघन्य अन्तर्मुहुत, उत्कृष्ट 125 वर्ष व देहमान सात हाथ का रह जाता है। पसलियाँ 16 रह जाती हैं, दिन में दो बार आहार की इच्छा होती है। इस आरे में तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, प्रतिवासुदेव, नारद, कामदेव आदि श्रेष्ठ, उत्तम पुरुषों का जन्म नहीं होता है। इसके अतिरिक्त दस बातों का अभाव हो जाता है–(1) केवल ज्ञान, (2) मनःपर्यवज्ञान, (3) परमावधिज्ञान, (4) परिहार विशुद्धि चरित्र, (5) सूक्ष्मसंपराय चरित्र, (6) यथाख्यात चारित्र, (7) पुलाक लब्धि, (8) आहारक शरीर, (9) क्षायिक सम्यक्त्व, (10) जिनकल्पी मुनि।

इस आरे में जन्मा कोई भी जीव मुक्ति नहीं पा सकता, किन्तु चतुर्थ आरे में जन्में मनुष्य को इस आरे में केवलज्ञान व मोक्ष हो सकता है। जैसे–जंबूस्वामी। यह आरा दुःख प्रधान है इसलिये इसका नाम 'दुषमा' रखा गया है।

दुषमकाल के 30 लक्षण– दुषमकाल में धर्म का, मानवता का क्रमशः ह्रास होता जाता है, कभी अतिवृष्टि, कभी दुष्काल से प्रकृति में भी परिवर्तन होता है। पूज्य अमोलक ऋषि जी महाराज ने दुषमकाल के

30 लक्षण जैन प्रकाश में वर्णित किये हैं—(1) शहर ग्राम जैसे हो जाते हैं, (2) ग्राम श्मशान जैसे हो जाते हैं, (3) श्रेष्ठ कुलों में उत्पन्न मनुष्यों को नौकरी करनी पड़ेगी, (4) राजा यमराज के समान क्रूर स्वभाव वाले होंगे, (5) कुलीन नारियाँ दुराचारिणी होंगी, (6) पुत्र, पिता की आज्ञा में नहीं रहेंगे, (7) शिष्य, गुरू की निंदा करके नीचा दिखाएँगे, (8) दुराचारी मनुष्य सुखी होंगे, (9) सज्जन, सुशील मनुष्य दु:खी रहेंगे, (10) सर्प, बिच्छू, मक्खी, मच्छर, खटमल, कीड़े-मकोड़े, आदि क्षुद्र जीवों की उत्पत्ति अधिक होगी, (11) बार-बार दुष्काल पड़ेंगे, (12) ब्राह्मण लोभी होंगे, (13) हिंसा में धर्म है, ऐसा उपदेश देने वाले पंडित बहुत होंगे, (14) धर्म में अनेक मत-मतान्तर होंगे, (15) मिथ्यात्व की वृद्धि होगी, (16) देव दर्शन दुर्लभ हो जाएँगे, (17) वैताढ्य पर्वत के विद्याधरों की विद्या का प्रभाव कम हो जाएगा, (18) दुग्ध आदि रसों की पौष्टिकता कम हो जाएगी, (19) पशु अल्पायु हो जाते हैं, (20) पाखण्डियों की पूजा अधिक होती है, (21) चौमासे में साधु-साध्वियों के योग्य क्षेत्र कम हो जाते हैं, (22) साधु की बारह और श्रावक की ग्यारह प्रतिमाओं का पालन करने वाला कोई नहीं रहता, (23) गुरू, शिष्य को शास्त्रज्ञान नहीं देते, (24) शिष्य अविनीत होते हैं, (25) अधर्मी, हठाग्रही, धूर्त, दगाबाज और झगड़ालू जीव अधिक होते हैं, (26) धर्मात्मा, सज्जन और सरल स्वभावी लोग कम होते हैं, (27) उत्सूत्र प्ररूपणा करने वाले, लोगों को भ्रम में डालकर फँसाने वाले नाम मात्र के धर्मात्मा ज्यादा होता हैं, (28) अलग-अलग समाचारी व नियम आदि बनाकर आचार्य स्वमत की प्रशंसा और पर-मत की निंदा करेंगे। (29) म्लेच्छ राजा अधिक होंगे, (30) सच्चे धर्म पर लोगों की प्रीति कम होगी। आडंबर और प्रदर्शन में रूचि अधिक होगी।

उक्त सभी बातें शनैः-शनैः अधिकाधिक बढ़ती जायेंगी। 21 हजार वर्ष पूर्ण होते-होते सभी धर्मो का विच्छेद हो जाएगा। राजनीति, धर्मनीति आदि सभी नीतियाँ समाप्त हो जाएँगी। बादर अग्नि भी उस समय समाप्त हो जाएगी। सोना-चाँदी आदि धन का विच्छेद हो जाएगा लोहे की धातु रहेगी। चमड़े की मोहरें रहेंगी। ये जिनके पास होंगी वे श्रीमंत माने जाएँगे।

पाँचवे आरे के अंतिम दिन शक्रेन्द्र का आसन कम्पायमान होता है। छठा आरा महादुषम काल का प्रारंभ जानकार वे लोगों को सावधान करेंगे। साधु-साध्वी धर्मात्मा लोग मोह-ममता का त्यागकर अनशन ग्रहण कर लेंगे। उसमें कतिपय लोग स्वर्ग में जाएँगे, वर्तमान में चार जीवों के एकाभवावतारी होने का उल्लेख है—(1) दुपसह आचार्य, (2) फाल्गुनी साध्वी, (3) जिनदास श्रावक और (4) नागश्री श्राविका। पंचम आरे के अंत में भयंकर आँधियाँ चलने से काफी जीवन नष्ट हो जाएगा, केवल वैताढ्य पर्वत, ऋषभकूट, लवण समुद्र की खाड़ी, गंगा और सिंधु नदी शेष रहती है। पहले प्रहर में जैनधर्म दूसरे में अन्य समस्त धर्म तीसरे प्रहर में राजनीति और चौथे प्रहर में अग्नि का विच्छेद हो जाता है।

(6) दुषम-दुषमा काल—पंचम आरे की पूर्णाहूति होते ही 21 हजार वर्ष का छठा आरा 'महादुषमकाल' के नाम से प्रारम्भ होता है। यह आरा मनुष्य और पशुओं के दु:खजनित हाहाकार से व्याप्त होगा। इस आरे के प्रारम्भ में धूलिमय भयंकर आँधियाँ चलेंगी, दिशाएँ धूलि से भर जाएँगी। सर्वत्र अंधकार छा जाएगा। आग, विष आदि प्राणनाशक पदार्थों की वर्षा होगी। प्रलयकालीन पवन और वर्षा के प्रभाव से विविध वनस्पतियाँ नष्ट हो जाएँगी। त्रस प्राणी तड़फ-तड़फ कर मृत्यु को प्राप्त होंगे। भरतक्षेत्र का अधिपति देव पंचम

आरे के विनाश पाते मनुष्यों एवं पशुओं में से बीज रूप कुछ मनुष्य व पशुओं को उठाकर वैताढ्य पर्वत के दक्षिण-उत्तर भाग में जो गंगा-सिंधु नदी है उनके आठों किनारों (तटों) में से एक-एक किनारे पर गुफा जैसे नौ-नौ बिल हैं। कुल मिलाकर ये 72 बिल होंगे। एक-एक बिल में तीन-तीन मंजिल है, उनमें से 63 बिलों में मनुष्य, 6 बिलों में स्थलचर पशु एवं 3 बिलों में खेचर पक्षी रख देते हैं। उनसे ही मनुष्य व पशुओं का फिर विस्तार होगा। निगोद के अनंतजीव जैसे एक शरीर में रहते हैं उसी प्रकार ये मनुष्य व पशु बिल रूप आवासों में एक साथ रहेंगे। काल के अत्यंत रूक्ष होने से सूर्य आग की तरह तपेगा, चन्द्रमा रात्रि को अत्यंत शीत होगा। भरतक्षेत्र की भूमि तपे हुए तवे के समान अत्युष्ण बन जाएगी। संपूर्ण मानव जीवन अस्त-व्यस्त रहेगा। **(चित्र क्रमांक 41-42)**

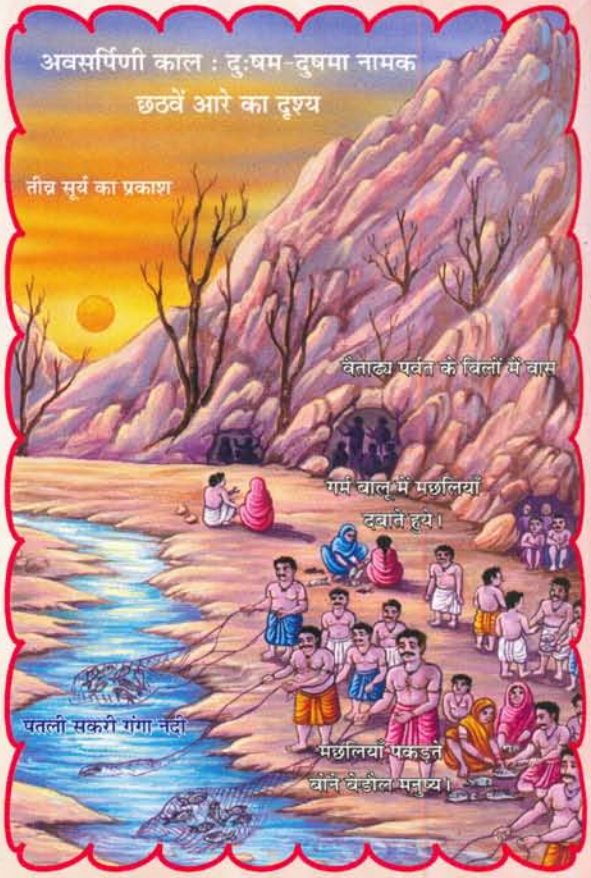

चित्र क्र. 41

मनुष्यों का देहमान उत्कृष्ट एक हाथ का, आयु 20 वर्ष की रह जाती है। शरीर में मात्र 8 पसलियाँ होती है। खाने की अपरिमित इच्छा होती है। कितना भी खा लेने पर भी तृप्ति नहीं होती। रात्रि में अति शीत और दिन में अति ताप के कारण मनुष्य बिलों से बाहर नहीं निकल सकेंगे। सिर्फ सूर्योदय और सूर्यास्त के समय एक मुहूर्त-48 मिनट के लिये बाहर निकलते हैं। गंगा-सिंधु नदी का पानी जो सर्प की तरह वक्रगति से बहने वाला तथा गाड़ी के पहिए के मध्यभाग जितना चौड़ा और आधा पहिया डूबे, जितना गहरा होता है। उसमें रहे मच्छ-कच्छ को पकड़-पकड़ कर किनारे पर लाएँगे। उन्हें नदी की

छठे आरे के मनुष्य, पशु व पक्षियों के आठ किनारों पर आवास स्थान (बिल)

चित्र क्र. 42

रेत में गाड़कर वे अपने बिलों में भाग जाएँगे। रात्रि के शीत से पके जलचर जीवों को प्रातः और दिन में सूर्य की गर्मी से पके जीवों को सन्ध्या में निकालेंगे। उस पर सब मनुष्य एक साथ टूट पड़ेंगे और लूटकर खाएँगे। मरे हुए मनुष्यों की खोपड़ी में पानी भरकर पीयेंगे। जानवर मच्छ-कच्छ की बची हुई हड्डियों को खाकर गुजर करेंगे।

इस आरे के मनुष्य दीन-हीन, क्रूर, अंधे-काने, गूंगे, दरिद्र, क्रोधी, कूबड़े, कुरूप धूम्रवर्ण वाले व महामूर्ख होते हैं। ये नग्न, आचारहीन, दुर्बल, दुर्गन्धित देह वाले, मर्यादा रहित, क्षुद्र और तुच्छ स्वभाव वाले होते हैं। माता-भगिनी-पुत्री आदि किसी के भी साथ मैथुन सेवन करते हैं। छह वर्ष की नारी कुतिया और सुअरनी के समान बहुत संतान पैदा करती है। नाना प्रकार की व्याधियों से शरीर ग्रस्त रहेगा। हृदय में सतत राग-द्वेष की भट्टी जलती रहेगी। सेवार्तक संघयन और हुंडक संस्थान होगा। धर्म-कर्म का कोई भान नहीं होगा। दुःख ही दुःख में अपनी संपूर्ण आयु व्यतीत करके ये नरक अथवा तिर्यंच गति में जाएँगे। उस समय जो सिंह, बाघ, भेड़िए, रींछ तथा सियार बिलाव, कुत्ते, सुअर, खरगोश आदि जीव होंगे, वे भी मांसाहारी, क्षुद्राहारी होंगे तथा वे भी नरक, तिर्यंच गति में ही उत्पन्न होंगे।

छठे आरे के अंत तक यह स्थिति अधिकाधिक विषम होती चली जाएगी। शरीर की ऊँचाई एक हाथ से भी कम और आयुष्य 16 वर्ष का रह जाएगा। अंतिम समय में क्षार, विष, अग्नि, धूल और धुएँ की वर्षा से भयानकता बढ़ जाएगी। धरती पर जीवन समाप्तप्रायः हो जाएगा। पृथ्वी एक योजन नीचे तक जलकर राख हो जाएगी। तब अवसर्पिणी काल का अंत और उत्सर्पिणी काल का प्रारम्भ होगा।

उत्सर्पिणी (उत्कर्ष काल)

अवसर्पिणी काल के दस कोटाकोटि सागरोपम व्यतीत होने के बाद दस कोटाकोटि सागरोपम का ही उत्सर्पिणी काल प्रारम्भ होता है। अवसर्पिणी के जिन छह आरों का वर्णन ऊपर दिया गया है, वही छह आरे 'उत्सर्पिणी काल' में होते है। अन्तर केवल इतना ही है कि उत्सर्पिणी काल में इन छह आरों का क्रम उलटा हो जाता है। उत्सर्पिणी काल दुषम-दुषमा से प्रारम्भ होता है और सुषम-सुषमा पर समाप्त होता है। इस काल को **'उत्कर्ष काल'** भी कह सकते हैं। इसके छह आरों का संक्षिप्त विवरण निम्नोक्त है।

(1) दुषम-दुषमा—अवसर्पिणी के छठे आरे जैसा ही उत्सर्पिणी का यह प्रथम आरा 21,000 वर्ष का होता है। श्रावण कृष्णा प्रतिपदा का दिन इसका प्रारंभिक दिन है। तब से लेकर वर्ण, रस, गंध स्पर्श संहनन, प्रकृति आदि सब कुछ प्रशस्त शुभ-शुभतर होने लगते हैं।

(2) दुषमकाल—इसके अनन्तर दूसरा दुषमा आरा भी 21,000 वर्ष का होता है और वह भी श्रावण कृष्णा प्रतिपदा के दिन आरम्भ होता है। इस आरे के आरम्भ होते ही पाँच प्रकार की वृष्टि सम्पूर्ण भरतक्षेत्र में होती है। यथा—सर्वप्रथम आकाश, घन-घटाओं से आच्छादित हो जाता है और विद्युत के साथ सात दिन-रात तक निरन्तर **'पुष्कर'** नामक मेघ वृष्टि करते हैं। इससे धरती की उष्णता दूर हो जाती है। इसके पश्चात् सात दिन वर्षा बन्द रहती है। फिर सात दिन पर्यन्त निरंतर दूसरे दुग्ध के समान **'क्षीर'** नामक मेघ बरसते है, जिससे सारी दुर्गंध दूर हो जाती है। फिर सात दिन तक वर्षा बन्द रहती है। तत्पश्चात् तीसरे **'घृत'** नामक मेघ सात

दिन-रात तक निरन्तर बरसते रहते हैं। इससे पृथ्वी में स्निग्धता आ जाती है। इसके बाद लगातार सात दिन-रात तक चतुर्थ अमृत के समान '**अमृत**' नामक मेघ बरसते हैं। इस वर्षा से 24 प्रकार के धान्यों के तथा अन्यान्य सब वनस्पतियों के अंकुर जमीन में से फूट निकलते हैं। फिर सात दिन खुला रहने के बाद पाँचवें ईख के रस के समान '**रस**' नामक मेघ सात दिन-रात तक निरंतर बरसते हैं, जिससे वनस्पति में मधुर, कटुक, तीक्ष्ण, कषैले और अम्लरस की उत्पत्ति होती है। वनस्पतियाँ औषधियों से युक्त सुस्वाद हो जाती हैं।[1]

प्रकृति की यह निराली लीला देखकर लोग आश्चर्यचकित हो जाते हैं। वृक्षों को राक्षस समझकर उनसे भयभीत हुए अपने बिलों में भाग जाते हैं। लताओं और पत्तों को हिलते हुए देखकर अनिष्ट की आशंका से वे काँप उठते हैं। किन्तु बिलों की दुर्गंध से घबराकर वे पुनः बाहर निकलते हैं। वनस्पतियों के वर्ण और सुगंध से आकृष्ट होकर वे उनके पास पहुँचते हैं। धीरे-धीरे उनका भय दूर होने लगता है। फिर वे फलों को तोड़कर खाने लगते है, फल उन्हें मधुर लगते हैं, तब वे माँस-मछली से घृणा करने लगते है, उन्हें अपवित्र समझकर उसका बहिष्कार करते हैं, नहीं खाने वालों को श्रेष्ठ समझते हैं। फिर वे जातीय नियम बना लेते हैं कि '**अब जो माँस का आहार करेगा उसके साथ हम कोई व्यवहार नहीं रखेंगे।**' इस प्रकार धीरे-धीरे जाति विभाग भी हो जाते हैं और पाँचवे आरे जैसी सारी व्यवस्थाएँ स्थापित हो जाती है। इस काल के एक हजार वर्ष शेष रहने पर 14 **कुलकर** उत्पन्न होते हैं। इसमें प्रथम कुलकर की ऊँचाई 4 हाथ की और अंतिम कुलकर की 7 हाथ की होती है। अंतिम **कुलकर** के समय विवाह-विधियाँ शुरू होती है। इस आरे के जीव मरकर अपने-अपने कर्मानुसार चारों गतियों में उत्पन्न होंगे। किंतु सिद्ध पद कोई प्राप्त नहीं करेगा।

(3) दुषमकाल-सुषमकाल—दुषमकाल के 21 हजार वर्ष व्यतीत होने के बाद उत्सर्पिणी का दुषम-सुषम नाम का तृतीय आरक प्रारम्भ होगा। यह आरा 42 हजार वर्ष कम एक कोटाकोटि सागरोपम का होता है। इस आरे में छह संहनन तथा छह संस्थान होंगे। शरीर की ऊँचाई 7 हाथ से बढ़ती-बढ़ती 500 धनुष प्रमाण तक होगी। आयुष्य अन्तर्मुहूर्त से लेकर एक पूर्व कोटि तक का होगा। इस आरे में चारों गति तथा मोक्ष में जाने वाले मनुष्य होंगे। 23 तीर्थंकर, 11 चक्रवर्ती, 9 बलदेव, 9 वासुदेव, 9 प्रतिवासुदेव आदि अवसर्पिणी के चतुर्थ आरे के समान उल्टे क्रम में होंगे। पुदगलों के वर्ण, गंध, रस, स्पर्श में अनन्तगुणा परिवृद्धि होगी।

(4) सुषमकाल-दुषमकाल—तीसरा आरा समाप्त होने पर चौथा सुषम-दुषम काल दो कोटा कोटि सागर का प्रारम्भ होता है। इसके 84 लाख पूर्व, 3 वर्ष और साढे आठ महीने के बाद चौबीसवें तीर्थंकर, जिनका सम्पूर्ण वक्तव्य भगवान ऋषभदेव के समान है, वे मोक्ष चले जाते हैं और उसके पश्चात् कुछ कम 18 करोड़ सागरोपम, तक भरत-ऐरावत क्षेत्र से धर्म का विच्छेद हो जाता है। कोई भी तीर्थंकर जन्म नहीं लेता। इस काल में एक चक्रवर्ती होता है। करोड़ पूर्व का समय व्यतीत होने के बाद कल्पवृक्षों की उत्पत्ति होने लगती है। उन्हीं से मनुष्य और पशुओं की इच्छाएँ पूर्ण हो जाती हैं। असि, मसि, कृषि, वाणिज्य, शिल्पकर्म एवं पुरूष व स्त्रियों

---

1. इस प्रकार पाँच सप्ताह वर्षा के और दो सप्ताह बिना वर्षा के इन समस्त दिनों को मिलाकर 7 × 5 = 35 + 14 = 49 दिन होते हैं। 50वें दिन सभी बिल निवासियों ने प्रतिज्ञा की थी कि हम आज से माँसाहार नहीं करेंगे। अतः इसी दिन संवत्सरी महापर्व मनाया जाता है। यह सम्वत्सरी पर्व अनादि है और अनंतकाल तक रहेगा।

की सब कलाएँ बंद हो जाती है। बिना पुरुषार्थ के ही सब सुख उपलब्ध होने लगते हैं। युगल पैदा होने लगते हैं। दण्डनीतियों का क्रम 'धिक्कार', 'मकार' और 'हाकार' तक होकर दण्डनीति समाप्त हो जाती है। बादर अग्निकाय और धर्म का विच्छेद हो जाता है। इस प्रकार चौथे आरे के सब मनुष्य व तिर्यंच अकर्मभूमिक बन जाते हैं। वर्णादि शुभ पर्यायों की निरन्तर वृद्धि होती रहती है।

(5) सुषमा काल—तत्पश्चात् तीन कोड़ाकोड़ी सागरोपम का सुषम आरा लगता है। इसका विवरण अवसर्पिणीकाल के दूसरे आरे के समान है। वर्ण आदि शुभ पर्यायों में क्रमशः वृद्धि होती जाती है।

(6) सुषमा-सुषमा काल—फिर चार कोड़ाकोड़ी सागरोपम का छठा आरा लगता है। इसका विवरण अवसर्पिणीकाल के प्रथम आरे के समान है। वर्ण आदि शुभ पर्यायों में अनन्तगुणी वृद्धि होती है।

इस प्रकार दस कोड़ाकोड़ी सागरोपम का अवसर्पिणीकाल और दस कोड़ाकोड़ी सागरोपम का उत्सर्पिणीकाल होता है। दोनों मिलकर बीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम का एक '**कालचक्र**' कहलाता है। भरत और ऐरवत क्षेत्र में यह कालचक्र अनादि से सूई के काँटे की तरह घूम रहा है और अनन्तकाल तक घूमता रहेगा।

कालचक्र की तालिका

	अवसर्पिणीकाल के छह आरे	स्थिति	मनुष्यों की आयु	शरीर की ऊँचाई	आहार का अन्तर
1.	सुषम-सुषमा	4 कोड़ाकोड़ी सागरोपम	3 पल्य से 2 पल्योपम	3 कोस से 2 कोस तक	तीन दिन
2.	सुषमा	3 कोड़ाकोड़ी सागरोपम	2 पल्य से 1 पल्योपम	2 कोस से 1 कोस तक	दो दिन
3.	सुषमा-दुषमा	2 कोड़ाकोड़ी सागरोपम	1 पल्य से कोटी पूर्व	1 कोस से 500 धनुष	एक दिन
4.	दुःषम-सुषमा	42000 वर्ष कम. 1 कोड़ाकोड़ी सागरोपम	क्रोड़ पूर्व से 100 वर्ष झाझेरा	500 धनुष से 7 हाथ तक	प्रतिदिन एक बार
5.	दुःषमा	21000 वर्ष तक	100 वर्ष से 20 वर्ष तक	7 हाथ से 2 हाथ तक	अनेक बार
6.	दुःषमा-दुःषम	21000 वर्ष तक	20 वर्ष से 16 वर्ष तक	2 हाथ से 1 हाथ तक	बार-बार

उक्त छह आरे रूप उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल, 5 भरत व 5 ऐरावत के क्षेत्रों में ही होता है। शेष 91 क्षेत्र अर्थात् 5 महाविदेह, 30 अकर्मभूमि और 56 अन्तर्द्वीपों में यह काल परिवर्तन नहीं होता है। वहाँ सदा एक जैसा काल प्रवर्तमान होता है। यथा—

5 महाविदेह में—अवसर्पिणी के चौथे आरे का प्रारम्भ काल।

10 देवकुरू व उत्तरकुरू में—अवसर्पिणी के प्रथम आरे का प्रारम्भ काल।

10 हरिवर्ष व रम्यकवर्ष में—अवसर्पिणी के दूसरे आरे का प्रारम्भ काल।

10 हेमवंत व हेरण्यवत क्षेत्र में—अवसर्पिणी के तीसरे आरे का प्रारम्भ काल।

56 अन्तर्द्वीपों में—अवसर्पिणी के तीसरे आरे के अंतिम भाग का शुद्ध युगल काल।

	उत्सर्पिणीकाल के छह आरे	स्थिति	मनुष्यों की आयु	शरीर की ऊँचाई	वर्ण	आहार का अन्तर
1.	दुषम-दुषमा	21000 वर्ष	16 वर्ष से 20 वर्ष तक	1 हाथ से 2 हाथ	श्याम	बार-बार
2.	दुषमा	21000 वर्ष	20 से 100 वर्ष झाझेरा	2 हाथ से 7 हाथ	रूक्ष	अनेक बार
3.	दुषमा- सुषमा	42000 वर्ष कम 1 कोड़ाकोड़ी सागरोपम	100 वर्ष झाझेरा से पूर्व कोटी वर्ष	7 हाथ से 500 धनुष	पाँचों वर्ण	प्रतिदिन एक बार
4.	सुषमा-दु:षम	2 कोड़ाकोड़ी सागरोपम	पूर्व कोटी से 1 पल्योपम	500 धनुष से 1 कोस	प्रियंगु के समान	एक दिन
5.	सुषमा	3 कोड़ाकोड़ी सागरोपम	1 पल्योपम से 2 पल्योपम	1 कोस से 2 कोस	चन्द्रमा के समान	दो दिन
6.	सुषमा-सुषमा	4 कोड़ाकोड़ी सागरोपम	2 पल्योपम से 3 पल्योपम	2 कोस से 3 कोस	सूर्य के समान	तीन दिन

❑ जंबूद्वीप का हैमवत क्षेत्र

भरतक्षेत्र से उत्तर की ओर पूर्व से पश्चिम लवण समुद्र तक लम्बा, पलंग के आकार का '**हैमवतक्षेत्र**' है। जो पूर्व-पश्चिम में **6755 योजन 4 कलां लम्बा** और उत्तर-दक्षिण में **2105 योजन 5 कलां चौड़ा** है। उत्तर दिशा में इसकी जीवा-पूर्व-पश्चिम तक कुछ कम 37,674 योजन 16 कलां की और दक्षिण में उसके धनुपृष्ठ की **परिधि 38740 योजन 10 कलां** की है। इसमें रहने वाले यौगलिक होते हैं। यहाँ सर्वदा सुषम-दुषम आरे के प्रथम भाग जैसी स्थिति रहती है। यह अकर्मभूमि क्षेत्र है, यहाँ के मनुष्यों की सब इच्छाएँ कल्पवृक्ष ही पूर्ण कर देते हैं। यहाँ के मनुष्यों का देहमान एक कोस एवं आयुष्य एक पल्योपम है। इनका देह स्वर्ण के समान पीला दमकता है।

शब्दापाती वृत्तवैताढ्य—हैमवत क्षेत्र के ठीक मध्यभाग में यह गोल आकार का वैताढ्य पर्वत है। जो **एक हजार योजन ऊँचा** और **ढाई सौ योजन भूमि** में है। इसकी **लम्बाई-चौड़ाई एक हजार योजन** की एवं **परिधि कुछ अधिक 3162 योजन** की है। प्याले के समान गोल आकृति वाला यह पर्वत सर्वत्र समतल, सर्वरत्नमय है। एक पद्मवरवेदिका और एक वनखण्ड से चारों ओर घिरा हुआ है। एक पल्योपम की स्थिति वाला परम ऋद्धिशाली, प्रभावशाली '**शब्दापाती**' नाम का देव वहाँ निवास करता है। इसकी राजधानी मेरूपर्वत के दक्षिण में अन्य जम्बूद्वीप में है। **(चित्र क्रमांक 43)**

महाहिमवान् वर्षधर पर्वत—यह पर्वत हैमवतक्षेत्र के उत्तर में और हरिवर्षक्षेत्र से दक्षिण में दोनो क्षेत्रों की मर्यादा बाँधने वाला है। चुल्लहिमवान् की अपेक्षा लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई, गहराई एवं परिधि में बड़ा होने के कारण इसे '**महाहिमवान्**' कहा जाता है। पलंग की आकृति वाला यह पर्वत अपने पूर्वी किनारे से पूर्वी लवणसमुद्र और पश्चिमी किनारे से पश्चिमी लवणसमुद्र का स्पर्श करता है। वह **दो सौ योजन ऊँचा** है, **50 योजन भूमिगत है, $4210^{10/19}$ योजन चौड़ा** है। **उसकी जीवा पूर्व-पश्चिम $9276^{9\frac{1}{2}/10}$ योजन लम्बी है।**

उत्तर में उसकी जीवा पूर्व-पश्चिम कुछ अधिक 53931 $^{6/19}$ योजन लम्बी है। दक्षिण में उसके धनपृष्ठ परिधि 57293 $^{10/19}$ योजन है। वह रूचक सदृश आकार लिये हुए है, सर्वथा रत्नमय है, स्वच्छ है। इसके दोनों ओर दो पद्मवरवेदिकाएँ तथा दो वनखण्ड हैं।

महाहिमवान् वर्षधर पर्वत के आठ कूट हैं, जैसे– (1) सिद्धायतनकूट, (2) महाहिमवान्कूट, (3) हैमवतकूट, (4) रोहितकूट, (5) ह्रीकूट, (6) हरिकान्तकूट, (7) हरिवर्षकूट तथा (8) वैडूर्यकूट। चुल्लहिमवान् कूटों के समान ही इनका वर्णन है।

महापद्मद्रह—महाहिमवान् पर्वत के ठीक मध्यभाग में '**महापद्मद्रह**' है। यहाँ पद्मद्रह की अपेक्षा पद्मों की संख्या दुगुनी अर्थात् 2,41,00,240 है। विस्तार में भी यह पद्मद्रह की अपेक्षा दुगुना है। यह **दो हजार योजन लम्बा, एक हजार योजन चौड़ा** तथा **दस योजन जमीन में गहरा** है। इसके मध्य में स्थित पद्म दो योजन का है, उसकी रत्नमयकर्णिका पर एक पल्योपम की स्थिति वाली 'ह्री' नामक देवी निवास करती है। शेष वर्णन 'पद्मद्रह' वत् है। महापद्मद्रह से दो महानदियाँ प्रवाहित होती हैं–**(1) रोहिता महानदी, (2) हरिकान्ता महानदी।**

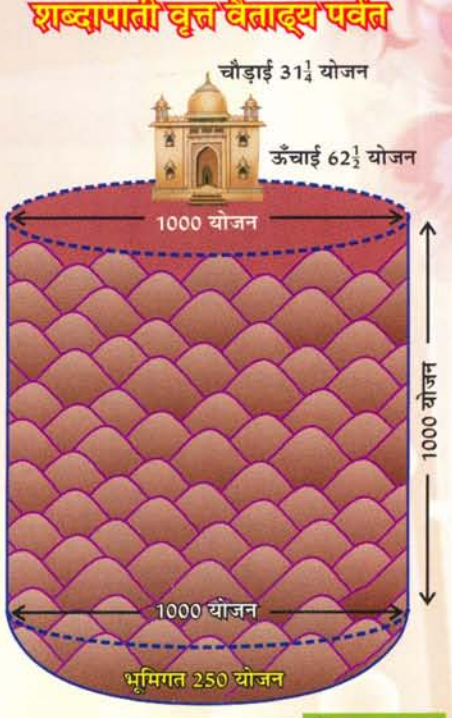

चित्र क्र. 43

रोहिता महानदी महापद्मद्रह के दक्षिणी तोरण से निकलती है। वह महाहिमवान् पर्वत पर दक्षिणाभिमुख होती हुई **1605 योजन 5 कलां** बहती है। पर्वत शिखर से नीचे प्रपात तक उसका प्रवाह कुछ अधिक 200 योजन होता है। उस प्रपात का नाम '**रोहितप्रपात कुण्ड**' है। वह **120 योजन लम्बा-चौड़ा दस योजन गहरा** व **परिधि कुछ कम 380 योजन** है। उसका तलभाग हीरों का है, वह गोलाकार है और तट समतल है। कुण्ड के मध्य '**रोहित**' नामक विशाल द्वीप है, जो **16 योजन लम्बा-चौड़ा, 50 योजन की परिधि** में है। **जल से दो कोस ऊँचा** उठा हुआ संपूर्णत: हीरकमय है, वहाँ पल्योपम स्थिति वाली '**रोहित**' नामक देवी का आवास स्थान है। रोहिता महानदी रोहितप्रपातकुण्ड के दक्षिणी तोरण से निकलकर हैमवत क्षेत्र की ओर आगे बढ़ती हुई शब्दापाती वृत्तवैताढ्यपर्वत जब आधा योजन दूर रह जाता है, तब वह पूर्व की ओर मुड़ती है और हैमवत क्षेत्र को दो भागों में बाँटती हुई आगे बढ़ती है। उसमें **28,000 नदियाँ** मिलती है। वह उनसे आपूर्ण होकर नीचे जम्बूद्वीप की जगती को चीरती हुई पूर्वी लवणसमुद्र में मिल जाती है। रोहिता महानदी के उद्गम, संगम आदि सम्बन्धी सारा वर्णन रोहितांशा महानदी जैसा है।

दूसरी '**हरिकान्ता**' नामक महानदी '**महापद्मद्रह**' के उत्तरी तोरण से निकलती है। उत्तराभिमुख होती हुई **1605 योजन 5 कलां पर्वत पर बहती है**, फिर **2 योजन लम्बी 25 योजन चौड़ी** और **आधा योजन**

मोटी मगरमच्छ के समान विशाल जिह्विका- प्रणालिका[1] से '**हरिकान्ताप्रपात कुण्ड**' में जाकर गिरती है। **(चित्र क्रमांक 44)**

यह कुण्ड **240 योजन लम्बा-चौड़ा** है, उसकी **परिधि 759 योजन** की है। इसके बीचों-बीच '**हरिकान्त**' नामक एक विशाल द्वीप है। वह **32 योजन लम्बा-चौड़ा** है। उसकी **परिधि 101 योजन** है, वह जल से ऊपर दो कोश ऊँचा उठा हुआ है। चारों ओर एक पद्मवरवेदिका द्वारा तथा एक वनखण्ड द्वारा घिरा हुआ है। हरिकान्ताप्रपातकुण्ड के उत्तरी तोरण से हरिकान्ता महानदी आगे हरिवर्ष क्षेत्र में बहती हुई, विकटापाती वृत्तवैताढ्यपर्वत से एक योजन पहले ही पश्चिम की ओर मुड़ कर हरिवर्षक्षेत्र को दो भागों में विभाजित करती हुई आगे बढ़ती है। फिर 56,000 नदियों से आपूर्ण होकर नीचे की ओर जम्बूद्वीप की जगती को चीरती हुई पश्चिमी लवणसमुद्र में मिल जाती है। हरिकान्ता महानदी जिस स्थान से उद्गत होती है, वहाँ उसकी चौड़ाई पच्चीस योजन तथा गहराई आधा योजन है। तदनन्तर क्रमशः उसका प्रमाण बढ़ता जाता है। जब वह समुद्र में मिलती है, तब उसकी **चौड़ाई 250** योजन तथा **गहराई पाँच योजन** होती है। वह दोनों ओर दो पद्मवरवेदिकाओं से तथा दो वनखण्डों से घिरी हुई है।

चित्र क्र. 44

हरिवर्ष क्षेत्र

महाहिमवान् वर्षधर पर्वत के उत्तर में पूर्व-पश्चिम दोनों ओर से लवण समुद्र का स्पर्श करता हुआ '**हरिवर्ष**' नामक अकर्मभूमि क्षेत्र है। इसका **विस्तार 8421 योजन एक कलां** का है। उसकी दक्षिणी **जीवा पूर्व-पश्चिम 13,361 योजन 6½ कलां लम्बी** है। **उत्तर में उसकी जीवा पूर्व-पश्चिम 73,901 योजन 17½ कलां लम्बी** तथा धनुः पृष्ठ 84,016 योजन 4 कलां है। इसमें रहने वाले युगलियों का शरीर रक्त प्रभायुक्त है। कतिपय युगलियों का शरीर श्वेत आभा वाला है। यहाँ सदैव अवसर्पिणी के सुषमा नामक दूसरे आरे जैसी अवस्था रहती है।

---

1. पर्वत के जिस स्थान से नदी वेग पूर्वक नीचे आती है, वहाँ एक नाली-प्रणाली होती है, उससे पानी नीचे आता है, वह प्रणाली जीभ के आकार की होती है, अतः उसे 'जिह्विका' कहते हैं।

विकटापाती वृत्त वैताढ्य—हरिवर्ष क्षेत्र के बीचोंबीच यह गोल आकार का वैताढ्य पर्वत है। इसके पूर्व दिशा में '**हरिसलिला**' नाम महानदी और पश्चिम में '**हरिकान्ता महानदी**' बहती है। इसकी चौड़ाई, ऊँचाई गहराई, परिधि आदि सब शब्दापाती वृत्त वैताढ्य के समान है। विशेष, यहाँ 'अरूण' नामक ऋद्धिशाली देव की मेरूपर्वत के दक्षिण की ओर अन्य जंबूद्वीप में राजधानी है।

निषध पर्वत—हरिवर्ष क्षेत्र के बाद उत्तर की ओर **पृथ्वी से 400 योजन ऊँचा, 100 योजन जमीन में गहरा, पूर्व-पश्चिम में 94,156 योजन 2 कलां लम्बा** तथा **उत्तर दक्षिण में 16,842 योजन 2 कलां चौड़ा** माणिक के समान रक्तवर्ण वाला '**निषध पर्वत**' है। इसकी दक्षिणी जीवा 20,165-2½ योजन एवं धनु: पृष्ठ 1,24,346-9 योजन का है। यह रूचक-स्वर्ण के आभूषण के समान आकृति का है। इसके बहुत से कूट-निषध अर्थात् वृषभ के आकार सदृश होने से इसे '**निषध पर्वत**' कहा जाता है। इस पर पल्योपम की आयुष्य वाले '**निषेध देव**' का भी निवास है।

निषध वर्षधर पर्वत के नौ कूट हैं—**(1) सिद्धायतनकूट, (2) निषधकूट, (3) हरिवर्ष कूट, (4) पूर्वविदेहकूट, (5) हरिकूट, (6) धृतिकूट, (7) शीतोदाकूट, (8) अपरविदेहकूट तथा (9) रूचककूट।**

तिगिंछ द्रह—निषध वर्षधर पर्वत के ऊपर समतल भूभाग के मध्य '**तिगिंछ**' नाम का द्रह है। वह **4,000 योजन लम्बा 2,000 योजन चौड़ा** तथा **10 योजन जमीन** में गहरा है। इस पर पल्योपम की स्थिति वाली 'धृति' नामक देवी का निवास है। यहाँ पद्मों की संख्या पद्मद्रह की अपेक्षा चार गुनी अर्थात् 4,82,00,480 है। शेष सारा वर्णन पद्मद्रह के समान है। इस द्रह से दो नदियाँ निकलती हैं—**(1) हरिसलिला और (2) सीतोदा।**

(1) हरिसलिला नदी—यह तिगिंछद्रह के दक्षिणी तोरण से निकली है। वह दक्षिण में उस **पर्वत पर 7,421 योजन एक कलां** बहती है। फिर हरिप्रपात कुण्ड में गिरते हुए उसका प्रवाह ऊपर से नीचे तक कुछ अधिक 400 योजन का होता है। शेष जिह्विका, कुण्ड, द्वीप एवं भवन का वर्णन हरिकान्ता महानदी के समान है। हरिवर्ष क्षेत्र के मध्य में होती हुई यह नदी जम्बूद्वीप की जगती को चीरकर **56,000 नदियों** के साथ पूर्वी लवण समुद्र में मिल जाती है।

(2) सितोदा महानदी—यह तिगिंछद्रह के उत्तरी तोरण से निकलकर उस पर्वत पर 7,421 योजन एक कलां बहती है। वेग पूर्वक '**शीतोदाप्रपातकुण्ड**' में जब गिरती है तब ऊपर से नीचे तक उसका प्रवाह कुछ अधिक 400 योजन का होता है। इस प्रपात की जिह्विका चार योजन लम्बी, 50 योजन चौड़ी और एक योजन मोटी है। **प्रपात की लम्बाई-चौड़ाई 480 योजन** एवं **परिधि 1,518 योजन** है। शीतोदा प्रपातकुण्ड के बीचों बीच '**शीतोदा**' नामक विशाल द्वीप है, वह जल के ऊपर दो कोस ऊँचा उठा हुआ है। वहाँ पल्योपम स्थिति वाली '**शितोदादेवी**' का आवास है। **(चित्र क्रमांक 45)**

शीतोदाप्रपात कुण्ड के उत्तरी तोरण से निकलकर शीतोदा महानदी आगे देवकुरू क्षेत्र में होती हुई **चित्र-विचित्र कूटों**, **पर्वतों**, **निषध**, **देवकुरू**, **सूर**, **सुलस** एवं **विद्युत्प्रभ** नामक द्रहों को विभक्त करती हुई जाती है। उस बीच उसमें 84,000 नदियाँ आ मिलती है। फिर भद्रशाल वन की ओर आगे बढ़ती हुई जब मेरू पर्वत दो योजन दूर रह जाता है, तब वह पश्चिम की ओर मुड़ती है। नीचे विद्युत्प्रभ नामक वक्षस्कार पर्वत को भेद कर मन्दर पर्वत के पश्चिम में अपर विदेहक्षेत्र को दो भागों में विभक्त करती हुई बहती है। उस बीच उसमें 16 चक्रवर्ती विजयों में से एक-एक से 28,000-28,000 नदियाँ आ मिलती है। इस प्रकार 4,48,000 ये तथा 84,000 पहले की कुल 5,32,000 नदियों से आपूर्ण वह शीतोदा महानदी नीचे जम्बूद्वीप के पश्चिम दिग्वर्ती जयन्त द्वार की जगती को विदीर्ण कर पश्चिमी लवणसमुद्र में मिल जाती है। शीतोदा महानदी अपने उद्गम-स्थान में पचास योजन चौड़ी तथा एक योजन गहरी है। तत्पश्चात् वह मात्रा में क्रमशः बढ़ती-बढ़ती जब समुद्र में मिलती है, तब 500 योजन चौड़ी तथा 10 योजन गहरी हो जाती है। वह अपने दोनों ओर दो पद्मवरवेदिकाओं तथा दो वनखण्डों द्वारा परिवृत है।

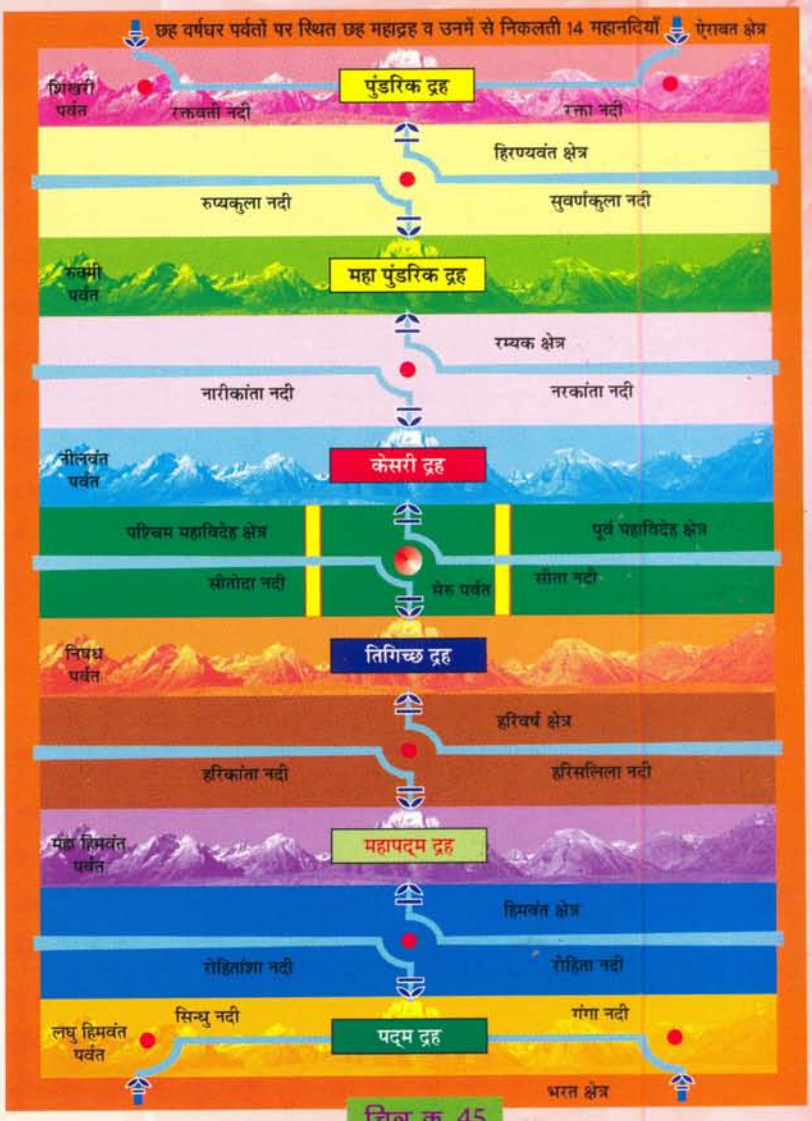

चित्र क्र. 45

महाविदेह क्षेत्र

जंबूद्वीप के ठीक मध्यभाग में महाविदेह क्षेत्र है। इसके एक ओर उत्तर में '**नीलवन्त**' और दूसरी ओर दक्षिण में '**निषध**' नामक वर्षधर पर्वत है। इन दोनों पर्वतों ने महाविदेह क्षेत्र की सीमा बाँध रखी है।

इस क्षेत्र को 'महाविदेह' इसलिये कहा जाता है कि जंबूद्वीप में भरतादि कुल सात क्षेत्र है, उन सबसे आकार एवं परिधि में यह विस्तृत है। अथवा 'विदेह' अर्थात् 'देहरहित अवस्था' इस क्षेत्र में सदैव मुक्ति में जाने

वाले जीव विद्यमान रहते हैं, देह रहित जीवों की अवस्थिति सदा रहने के कारण भी इसे '**विदेह क्षेत्र**' कहते हैं तथा एक पल्योपम की आयुष्य वाले परम ऋद्धिसम्पन्न '**महाविदेह**' नामक देव का निवास होने से भी यह 'महाविदेह' के नाम से पुकारा जाता है।

कर्मभूमि का यह सर्वोत्कृष्ट क्षेत्र है। इस क्षेत्र में सदाकाल कम से कम चार तीर्थंकर भगवान की उपस्थिति तो रहती ही है। उत्कृष्ट कभी-कभी 32 विजयों में 32 तीर्थंकरों का विचरण भी एक समय में हीं होता है। भरतक्षेत्र में जब भगवान अजितनाथ विचरण कर रहे थे, तब इस महाविदेह क्षेत्र में 32 तीर्थंकर भगवान सदेह विचरण कर रहे थे। उसी समय धातकीखंड के दो और अर्द्धपुष्कर द्वीप के दो—इन चार महाविदेहों में भी 32-32 तीर्थंकर विचरण कर रहे थे। उस समय कुल मिलाकर 32 × 5 = 160 तीर्थंकर महाविदेह में तथा पाँच भरत क्षेत्र में और पाँच ऐरावत क्षेत्र में—इस प्रकार 160 + 10 = 170 तीर्थंकर विचरण कर रहे थे।

महाविदेह के मनुष्य छह प्रकार के संहनन और छह संस्थान से युक्त होते हैं। इनका आयुष्य कम से कम अन्तमुर्हूर्त से लेकर अधिक से अधिक एक करोड़ पूर्व का होता है। आयुष्य पूर्ण होने के पश्चात् अपने-अपने कर्मानुसार ये चारों गतियों में जन्म लेते हैं। कई आत्माएँ सभी कर्मों का क्षय कर सिद्धगति प्राप्त करती हैं।

महाविदेह क्षेत्र का विस्तार—महाविदेह क्षेत्र पूर्व-पश्चिम में लम्बा और उत्तर-दक्षिण में चौड़ा है। इसका एक किनारा पूर्वी लवण समुद्र का स्पर्श करता है तो दूसरा किनारा पश्चिमी लवण समुद्र को छूता है। मेरु पर्वत के पूर्व में 45,000 योजन और पश्चिम में 45,000 योजन तथा मध्य में 10,000 योजन का मेरु पर्वत—इस प्रकार पूर्व से पश्चिम तक महाविदेह क्षेत्र की लम्बाई एक लाख योजन है। चौड़ाई में यह दक्षिण निषध पर्वत का और उत्तर की ओर नीलवंत पर्वत का स्पर्श करता है। मेरु पर्वत के उत्तर में महाविदेह क्षेत्र का विस्तार $11,842^{2/19}$ योजन और दक्षिण में $11,842^{2/19}$ तथा मध्य में मेरु पर्वत का 10,000 योजन, इस प्रकार महाविदेह क्षेत्र उत्तर से दक्षिण तक 33,684 योजन 4 कलां चौड़ा है। इसकी बाहा पूर्व-पश्चिम 33,767 योजन 7 कलां लम्बी है। उसके बीचोबीच उसकी जीवा पूर्व से पश्चिम तक लवण समुद्र का स्पर्श करती है, वह एक लाख योजन लम्बी है। इसका धनुपृष्ठ उत्तर-दक्षिण दोनों ओर परिधि की दृष्टि से कुछ अधिक 1,58,113 योजन 16 कलां है। इसका आकार पल्यंक के समान लम्ब चौरस है।

महाविदेह क्षेत्र में एक मेरूपर्वत, 32 विजय, 16 वक्षस्कार पर्वत, सीतोदा-सीता महानदी, 12 अंतरनदियाँ, चित्र-विचित्र, यमक-समक पर्वत, कंचनगिरि पर्वत, गजदन्त पर्वत, देवकुरू-उत्तरकुरू क्षेत्र, जम्बू एवं शाल्मली वृक्ष आदि अनेक पदार्थ हैं। उनका सविस्तार वर्णन आगे किया जा रहा है। **(चित्र क्रमांक 46)**

महाविदेह के चार विभाग—महाविदेह क्षेत्र के मध्य में '**मेरू**' नाम का, 1,00,000 योजन ऊँचाई वाला पर्वत हैं। इस पर्वत के दक्षिण दिशा में निषध पर्वत से हाथी के दांत सदृश दो गजदन्त पर्वत निकल कर मेरू पर्वत की तलहटी की ओर आते हैं। ठीक वैसे ही उत्तर दिशा के नीलवंत पर्वत से भी दो गजदन्त पर्वत निकल कर मेरूपर्वत के पास आते हैं। इससे यह महाविदेह दो भागों में विभाजित हो जाता है—(1) पूर्व महाविदेह और (2) पश्चिम महाविदेह।

गजदन्त पर्वत के बीच का प्रदेश दक्षिण की ओर देवकुरू तथा उत्तर की ओर उत्तरकुरू क्षेत्र कहलाता है ये दोनों युगलिक क्षेत्र हैं। निषध पर्वत पर स्थित तिगिंच्छि द्रह से सीतोदा नामक महानदी निकलकर देवकुरू क्षेत्र

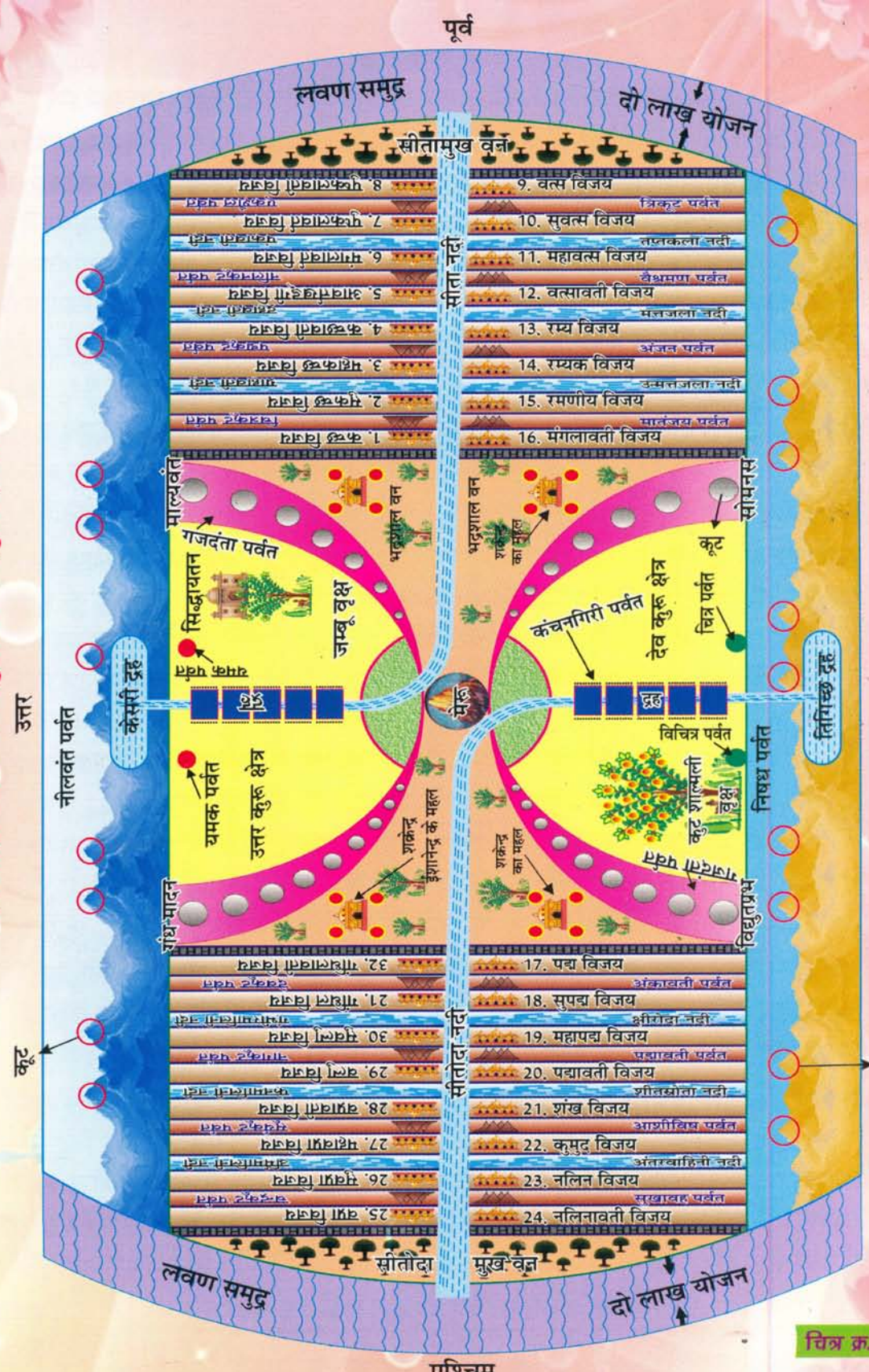

महाविदेह और देवकुरु-उत्तरकुरु क्षेत्र

चित्र क्र. 46

में स्थित सीतोदा प्रपातकुण्ड में गिरकर समतल भूमि पर बहती हुई देवकुरू क्षेत्र को पार करती हुई मेरू पर्वत के निकट जाकर पलट कर गजदंत पर्वत को भेदकर पश्चिम महाविदेह से गुजरती हुई पश्चिम लवण समुद्र में मिल जाती है। इस नदी के कारण पश्चिम महाविदेह भी दो भाग में विभाजित हो जाता है—(1) उत्तर-पश्चिम महाविदेह और (2) पश्चिम-दक्षिण महाविदेह। ठीक उसी तरह नीलवंत पर्वत पर स्थित केशरीद्रह में से सीता नामक नदी निकलकर उत्तरकुरू क्षेत्र में '**सीताप्रपातकुण्ड**' में गिरकर उत्तरकुरू क्षेत्र में से होती हुई मेरूपर्वत के पास से पलटकर गजदंत पर्वत को भेदती हुई महाविदेह क्षेत्र से गुजरती हुई पूर्व लवण समुद्र में मिल जाती है। इसके कारण पूर्व महाविदेह दो भागों में विभाजित हो जाता है। (1) उत्तर-पूर्व महाविदेह एवं (2) पूर्व-दक्षिण महाविदेह। इस तरह महाविदेह क्षेत्र चार भाग में बँटा हुआ है।

इन चारों विभागो में आठ-आठ विजय हैं, अत: महाविदेह क्षेत्र में $8 \times 4 = 32$ विजय, 16 वक्षस्कार पर्वत और प्रत्येक विभाग में तीन-तीन अन्तरनदी होने से $4 \times 3 = 12$ अन्तरनदियाँ है।

सोलह वक्षस्कार पर्वत—वक्षस् यानि छाती, ये पर्वत आमने-सामने छाती की तरह होने से इन्हें वक्षस्कार पर्वत कहते हैं। ये पर्वत विजयों की रक्षा करते हैं इसलिए सीना तानकर खड़े हों, ऐसा लगता है। इसलिए भी इन्हें वक्षस्कार पर्वत कहते हैं। ये कुल मिलाकर जम्बूद्वीप के महाविदेह में 16 हैं। इनके नाम निम्न हैं—**(1) चित्र, (2) ब्रह्मकूट, (3) नलिनी कूट, (4) एक शैल, (5) त्रिकुट, (6) वैश्रमण, (7) अंजनगिरि, (8) मातंजनगिरि, (9) अंकपाती, (10) पद्मापाती, (11) आशीविष, (12) सुखावह, (13) चन्द्र, (14) सूर्य, (15) नाग, (16) देव।**

सभी वक्षस्कार पर्वत दक्षिण महाविदेह में निषध पर्वत के पास से एवं उत्तर महाविदेह में नीलवंत पर्वत के पास से निकले हुए हैं। इन पर्वतों पर चार-चार कूट हैं—पहला सिद्धायतन कूट, दूसरा पर्वत के नाम का ही कूट, उसके बाद दो आस-पास की विजयों के नाम वाले दो कूट हैं। कूट सदृश नाम वाले देव इन पर निवास करते हैं। ये सभी पर्वत प्रारम्भ में 400 योजन एवं अन्त में 500 योजन ऊँचाई वाले हैं। इनकी चौड़ाई 500 योजन है एवं जमीन में 100 से 125 योजन गहरी नींव वाले हैं।

बारह अन्तरनदियाँ—प्रारम्भ से अन्त तक एक समान प्रवाह वाली नदी अंतरनदी कही गई हैं। अन्य नदियाँ इनमें सम्मिलित नहीं होने से ये नदियाँ एक समान प्रवाह से बहती हैं। ये अन्तरनदियाँ 12 हैं—**(1) ग्राहवती, (2) द्रहवती, (3) वेगवती, (4) तप्तजला, (5) मत्तजला, (6) उन्मत्ता, (7) क्षीरोदा, (8) सिंहस्त्रोता, (9) अन्तरवाहिनी, (10) उन्मालिनी, (11) गम्भीर मालिनी, (12) फेनमालिनी।**

ये सभी नदियाँ 125 योजन चौड़े प्रवाह वाली हैं तथा 10 योजन गहरे जल वाली हैं। ये सभी नदियाँ निषध और नीलवंत पर्वत के निकट नीचे कुंड जिन्हें जन्मकुण्ड कहा गया है, उनमें से निकलती हैं, पश्चात् पूर्व महाविदेह की सभी अन्तर नदियाँ सीता महानदी में एवं पश्चिम महाविदेह की सभी अन्तर नदियाँ सितोदा महानदी में मिल जाती हैं। इन नदियों का प्रवाह इतना अधिक वेग वाला है कि मानव इन नदियों को पार करने में असमर्थ है।

महाविदेह क्षेत्र की विजय— '**वि**' अर्थात् विशेष प्रकार से '**जय**' यानि जीतते हैं। चक्रवर्ती राजाओं के जीतने योग्य षट्खंड पृथ्वी को '**विजय**' कहते हैं। भरतक्षेत्र एक **विजय** है, इसी प्रकार जंबूद्वीप के महाविदेह में ऐसी 32 विजय है। प्रत्येक विजय की लम्बाई 16,592 योजन 2 कलां अधिक है तथा चौड़ाई 2213 योजन की है। ये सभी विजय उत्तर-दक्षिण में लम्बे और पूर्व पश्चिम में चौड़े हैं, पल्यंक के आकार में अवस्थित हैं। भरतक्षेत्र के समान ही यहाँ भी उतने ही लम्बे-चौड़े वैताढ्य पर्वत हैं। ये पूर्व-पश्चिम लम्बे व उत्तर-दक्षिण में चौड़े है। वहाँ पर विद्याधरों की उत्तर और दक्षिण श्रेणियों में 55-55 हजार नगर हैं। आभियोग्य श्रेणियाँ भी उसी प्रकार हैं। विशेष सीता महानदी के उत्तर में जो श्रेणियाँ है वे ईशानेन्द्र के अधीन हैं, शेष श्रेणियाँ शक्रेन्द्र की है। प्रत्येक विजय अपने-अपने वैताढ्य पर्वत के कारण दक्षिणार्ध और उत्तरार्ध इन दो भागों में विभाजित हो जाता है। प्रत्येक वैताढ्य पर्वत के उत्तर में नीलवंत पर्वत के पास 8 योजन ऊँचे ऋषभकूट पर्वत हैं, इन पर उस-उस विजय के चक्रवर्ती अपना नाम अंकित करते हैं। **(चित्र क्रमांक 47)**

महाविदेह क्षेत्र की एक विजय

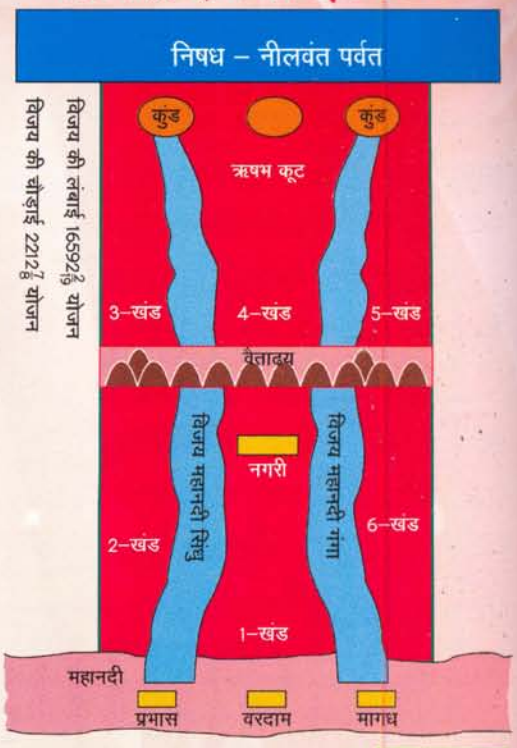

चित्र क्र. 47

महाविदेह की 1 से 8 विजय और 17 से 24 कुल 16 विजयों में 16 गंगा नदी और 16 सिंधु नदी हैं। इसी प्रकार 9 से 16 और 25 से 32 विजय—इन सोलह क्षेत्रों में रक्ता व रक्तवती नाम से 16-16 नदियाँ हैं। ये नदियाँ निषध या नीलवन्त वर्षधर पर्वत के पास ऋषभकूट के दोनों ओर आये हुए कुण्ड में से निकलती हैं। 32 विजय होने से महाविदेह के 64 कुण्ड हैं। इन्हें प्रपातकुण्ड नहीं कहते, क्योंकि महाविदेह की ये नदियाँ पर्वत के ऊपर से नीचे नहीं गिरती हैं। तथा इन नदियों को महानदियाँ भी नहीं कहते क्योंकि वे सीधी लवण समुद्र में नहीं मिलती। वरन् अपने 14-14 हजार नदियों के परिवार के साथ महाविदेह क्षेत्र की सीता-सीतोदा महानदी में मिलकर उसके परिवार रूप बनकर उसके साथ लवण समुद्र में मिलती है। ऋषभकूट से पूर्व में गंगा या रक्ता कुण्ड है और पश्चिम में सिन्धु या रक्तवती कुंड है। ये चारों कुण्ड 60 योजन लम्बे-चौड़े गोलाकार हैं। इन कुण्डों से गंगा-सिन्धु आदि नदियाँ निकलकर, वैताढ्य पर्वत की दोनों गुफाओं के नीचे होकर 14-14 हजार नदियों के परिवार से सीता या सीतोदा महानदी में जाकर मिल जाती है। इससे प्रत्येक विजय छह खण्डों में विभाजित हो जाता है। महाविदेह की एक विजय क्षेत्र की दृष्टि से भरतक्षेत्र से कई गुना अधिक है। इन सभी विजयों में मनुष्यों का निवास है। महाविदेह की गंगा-सिंधु, रक्ता और रक्तवती नाम की 64 ही नदियों का विस्तार, गहराई आदि पूर्वोक्त भरत क्षेत्र की गंगा-सिंधु नदी के समान है।

(1) पूर्व-उत्तर महाविदेह— इसे हम 'ईशान महाविदेह' भी कह सकते हैं। ईशान महाविदेह में 8 विजय 4 वक्षस्कार पर्वत एवं 3 अंतरनदी है। उनका क्रम इस प्रकार है—

1. **कच्छ विजय**—यह सीता महानदी के उत्तर में नीलवान वर्षधर पर्वत के दक्षिण में, चित्रकूट वक्षस्कार पर्वत के पश्चिम में और माल्यवान् पर्वत के पूर्व में उत्तर-दक्षिण लम्बी और पूर्व-पश्चिम चौड़ी है। यहाँ गंगा और सिंधु नदी के बीच में '**क्षेम नगरी**' राजधानी है। इस विजय की सीमा सीता नदी के पास 500 योजन ऊँचे चार कूट वाले 'चित्रकूट वक्षस्कार' पर्वत के द्वारा निर्धारित की जाती है। इसके चार कूट हैं—**(1) सिद्धायतन, (2) चित्रकूट, (3) कच्छकूट, (4) सुकच्छकूट।**

2. **सुकच्छ विजय**—चित्रकूट पर्वत के बाद दूसरी सुकच्छ विजय है। '**क्षेमंपुरा**' इसकी राजधानी है, यहाँ ग्राहावती कुण्ड से निकली हुई '**ग्राहावती नदी**' है, जो सीता नदी में जाकर मिल गई है।

3. **महाकच्छ विजय**—ग्राहावती नदी के पास पूर्व की ओर महाकच्छ विजय है। '**अरिष्टा**' राजधानी है। इसके पास '**ब्रह्मकूट वक्षस्कार**' पर्वत है। ब्रह्म या पद्मकूट के चार कूट (शिखर) हैं—(1) सिद्धायतन, (2) पद्मकूट, (3) महाकच्छ, (4) कच्छावती।

4. **कच्छावती विजय**—यह ब्रह्मकूट (पद्मकूट) वक्षस्कार के पूर्व में हैं। इसकी '**अरिष्टवती**' राजधानी है। यहाँ आगे '**द्रहवती नदी**' है।

5. **आवर्त्त विजय**—द्रहवती नदी के पूर्व में आवर्त विजय है। इसमें '**पंकावती**' राजधानी है। इसके बाद पूर्व में '**नलिन कूट वक्षस्कार**' पर्वत है इस पर (1) सिद्धायतन, (2) नलिन, (3) आवर्त्त और (4) मंगलावर्त—ये चार कूट हैं।

6. **मंगलावती विजय**—नलिनकूट वक्षस्कार के पूर्व में उक्त विजय और उसकी '**मंजूषा**' राजधानी है। वहाँ नलिन कूट से निकलने वाली '**वेगवती नदी**' है जो मंगलावती विजय और आगे पुष्कर विजय को दो भागों में विभक्त करती है।

7. **पुष्कर विजय**—इसमें ऋषभपुरी राजधानी है और सीमा पर '**एकशैल पर्वत**' है। इस पर (1) सिद्धायतन, (2) एक शैल, (3) पुष्कलावर्त और (4) पुष्कलावती—ये चार कूट है।

8. **पुष्कलावती विजय**—इसकी '**पुण्डरीकिणी**' राजधानी है। पुष्कलावती विजय के पूर्व में '**सीतामुखवन**' है, वह 16,592 योजन 3 कलां लम्बा और दक्षिण में सीता महानदी के पास 2,922 योजन चौड़ा है। पश्चात् क्रमशः घटता हुआ उत्तर में नीलवान् पर्वत के पास यह केवल 1/19 योजन चौड़ा रह गया है। इसके पास पूर्व में जंबूद्वीप का 'विजय द्वार' है।

(2) पूर्व-दक्षिण महाविदेह—इसे '**आग्नेय कोण महाविदेह**' भी कह सकते हैं। यहाँ भी पूर्ववत् 8 विजय 4 वक्षस्कार और तीन नदी हैं। जंबूद्वीप के विजय द्वार के अंदर सीता नदी की दक्षिण दिशा में '**वत्स विजय**' से पूर्व' दक्षिणी '**सीतामुख वन**' है। उत्तर दिशावर्ती सीतामुख वन से इसकी विशेषता यह है कि यह वन निषध पर्वत के पास 1/19 योजन चौड़ा है।

1. **वत्स विजय**—सीतामुखवन के पश्चिम में सीता नदी के दक्षिण में त्रिकूट वक्षस्कार से पूर्व '**वत्स नामक**' नौवीं विजय है। इसकी '**सुसीमा**' राजधानी है। इसके बाद त्रिकूट वक्षस्कार पर्वत है। 2. **सुवत्स**

विजय—पर्वत के बाद दसवीं सुवत्स विजय है। उसकी '**कुण्डला राजधानी**' आती है। इसके बाद '**तप्तजला महानदी**' है। **3. महावत्स विजय**—तप्त जला नदी के बाद ग्यारहवीं विजय है, इसकी अपराजिता राजधानी है। इसके अनन्तर 'वक्षस्कार कूट' है। **4. वत्सकावती विजय**—पूर्वोक्त वक्षस्कार पर्वत के पश्चात् बारहवीं '**वत्सकावती**' विजय है। इसकी 'प्रभंकरा' राजधानी है। पश्चात् '**मत्तजला महानदी**' है। **5. रम्य विजय**—वत्सकावती के पश्चात् तेरहवीं विजय '**रम्य**' है। यहाँ अंकावती राजधानी है। इसकी सीमा बाँधने वाला 'अंजन वक्षस्कार' पर्वत है। **6. रम्यक विजय**—चौदहवीं रम्यक् विजय की '**पद्मावती**' राजधानी है वहाँ '**उन्मत्तजला**' नामक महानदी है। **7. रमणीय विजय**—यह पन्द्रहवीं विजय है। इसकी '**शुभा**' राजधानी है। आगे '**मातंजन वक्षस्कार पर्वत**' है। **8. मंगलावती विजय**—यह सोलहवीं विजय कहलाती है। इसकी '**रत्नसंचया**' राजधानी है। इसके पास 22 हजार योजन का भद्रशाल वन है।

(3) पश्चिम-दक्षिण महाविदेह—इसे '**नैऋत्य महाविदेह**' नाम दिया जा सकता है। इसमें 8 विजय, 4 वक्षस्कार और 3 अन्तरनदियाँ इस क्रम से हैं—

1. पक्ष्म विजय—मेरूपर्वत से पश्चिम में निषध पर्वत के उत्तर में, शीतोदानदी के दक्षिण भाग में 17वीं विजय है। इसकी राजधानी '**अश्वपुरी**' है। इसकी सीमा बांधने वाला '**अंकावती वक्षस्कार पर्वत**' है। **2. सुपक्ष्म विजय**—इसकी राजधानी '**सिंहपुरी**' है। इसके पास '**क्षीरोदा नदी**' है। **3. सुपक्ष्म विजय**—इसकी राजधानी '**महापुरी**' है। इसके पास '**पक्ष्मावती वक्षस्कार**' पर्वत है। **4. पक्ष्मावती विजय**—पक्ष्मावती वक्षस्कार के बाद यह 20वीं विजय है। इसकी राजधानी '**विजयपुरी**' है। इसके पास '**शीतस्रोता**' नदी है। **5. शंख विजय**—यह 21वीं विजय है, इसकी राजधानी '**अपराजिता**' है। उसके पास '**आशीविष वक्षस्कार**' पर्वत है। **6. कुमुद विजय**—यह 22वीं विजय है, इसकी राजधानी '**अरजा**' है। इसके पास '**अन्तर्वाहिनी नदी**' है। **7. नलिन विजय**—यह 23वीं विजय है, इस की '**अशोका**' राजधानी है। इसके आगे '**सुखावह वक्षस्कार**' है। **8. नलिनावती विजय**—यह 24वीं विजय है, इसकी राजधानी '**वीतशोका**' हैं।

इस विजय के पास सीतामुख वन के समान ही '**शीतोदामुख वन**' आता है और उसके बाद जम्बूद्वीप का पश्चिम '**जयन्तद्वार**' आता है। **(चित्र क्रमांक 48)**

(4) पश्चिम-उत्तर महाविदेह—यह '**वायव्य महाविदेह**' कहलाता है। इसमें भी आठ विजय 4 वक्षस्कार और 3 अन्तरनदियाँ है।

1. वप्रा विजय—जयन्त द्वार के अन्दर शीतोदा नदी के उत्तर में भी '**उत्तरमुखी शीतोदामुख वन**' है। इसके पास पूर्व में मेरू की तरफ 25वीं '**वप्रा विजय**' है। इसमें 'विजया राजधानी' है। इसके पास '**चन्द्रकूट वक्षस्कार**' पर्वत है। **2. सुवप्रा विजय**—26वीं सुवप्रा विजय की '**वैजयन्ती**' नाम की राजधानी है। उसके पास '**उर्मिमालिनी नदी**' है। **3. महावप्रा विजय**—यह 27वीं विजय है, उसकी राजधानी '**जयन्ती**' है, उसके पास '**सूरकूट वक्षस्कार**' है। **4. वप्रावती विजय**—यह 28वीं विजय है। इसकी राजधानी '**अपराजिता**' है।

महाविदेह के चार मुखवन

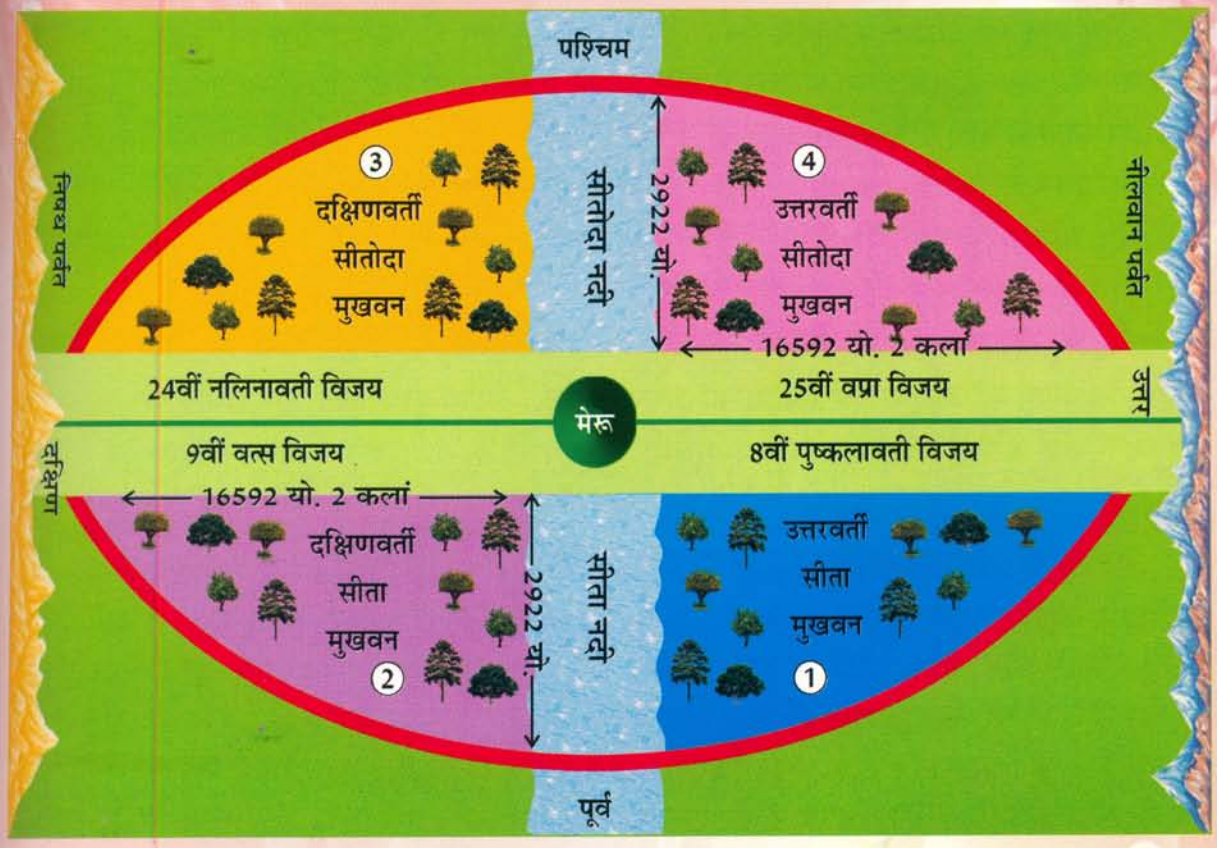

चित्र क्र. 48

उसके पास '**फेनमालिनी नदी**' है। **5. वल्गु विजय**—यह 29वीं विजय है, इसकी राजधानी '**चक्रपुरा**' है। उसके पास '**नागकूट वक्षस्कार**' है। **6. सुवल्गु विजय**—यह 30वीं विजय है, इसकी राजधानी '**खड्गी**' है। इसके पास '**गम्भीरमालिनी नदी**' है। **7. गन्धिला विजय**—इसकी राजधानी '**अवध्या**' है। इसके पास '**देवकूट वक्षस्कार**' है। **8. गंधिलावती विजय**—यह महाविदेह की 32वीं विजय कहलाती है। '**अयोध्या**' इसकी राजधानी है। इसके पास मेरूपर्वत का '**भद्रशाल वन**' और '**गन्धमादन पर्वत**' है।

जंबूद्वीप की इन 32 विजयों में से आठवीं पुष्कलावती विजय में श्री सीमंधर स्वामी, पच्चीसवीं वप्रा विजय में श्री युगमंधर स्वामी, नौवीं वत्सविजय में श्री बाहु स्वामी और चौबीसवीं नलिनावती विजय में श्री सुबाहुस्वामी—इस प्रकार क्रम से चार विहरमान वर्तमान में विचरण कर रहे हैं। अपनी अपेक्षा से श्री सीमंधर स्वामी ईशानकोण में हैं अत: हम उन्हें ईशान कोण में वंदन करते हैं।

पश्चिम महाविदेह की भूमि अनादि से क्रमिक नीचे गई है। मेरु के पास से प्रारम्भ होकर पश्चिम की ओर जाते हुए जगती के नजदीक 24वीं सलिलावती और 25वीं वप्रा विजय के अंतिम कई ग्राम 1,000 योजन तक नीचे गये हैं, उन्हें 'अधोलोक' के ग्राम, नगर, नदी, पर्वत आदि कहा जाता है। सीतोदा नदी भी क्रमश: 1,000 योजन नीचे बहती हुई जगती के अधोभाग को भेदकर समुद्र में मिलती है।

देवकुरू-उत्तरकुरू क्षेत्र

मेरूपर्वत के दक्षिण में निषध पर्वत के पास दो गजदन्त पर्वतों के बीच में '**देवकुरू**' नाम से अकर्मभूमिक क्षेत्र है तथा देवकुरू क्षेत्र के ठीक सामने मेरूपर्वत के उत्तर में, नीलवन्त पर्वत के पास, दो गजदन्त पर्वतों के बीच में '**उत्तरकुरू**' नाम का क्षेत्र है। ये दोनों क्षेत्र पूर्व-पश्चिम लम्बे और उत्तर-दक्षिण चौड़े हैं। ये अर्द्धचन्द्र की आकृति के हैं। इनकी उत्तरवर्ती जीवा पूर्व-पश्चिम वक्षस्कार पर्वत का स्पर्श करती है। वह **53,000 योजन लम्बी है, 11,842 योजन 2 कलां अधिक चौड़ी** है। दक्षिण में उसके **धनुपृष्ठ की परिधि 60,418 योजन 12 कलां** की है।

यहाँ युगलिक मनुष्य एवं तिर्यंचों का निवास है। अकर्मभूमि के सभी क्षेत्रों में ये दोनो विशिष्ट क्षेत्र हैं। यहाँ 3 पल्योपम की आयुष्य एवं 3 कोस की अवगाहना वाले अतीव पुण्यशाली, शुभवर्णादि युक्त, यौगलिक मनुष्य निवास करते है। यहाँ सदा '**सुषम-सुषमा**' जैसा काल है। कहा जाता है भगवान ऋषभदेव के लिये देवता देवकुरू-उत्तरकुरू के कल्पवृक्षों से ही फल लाकर देते थे।

युगलपर्वत—उत्तरकुरू क्षेत्र में नीलवंत वर्षधर पर्वत से $834^{4/7}$ योजन दक्षिण में सीता नदी के पूर्वी और पश्चिमी तट पर '**यमक-समक**' नामक दो पर्वत हैं। वे 1,000 योजन ऊँचे, 250 योजन जमीन में गहरे, मूल में 1,000 योजन चौड़े, मध्य में 750 योजन तथा ऊपर 500 योजन चौड़े हैं। इनकी परिधि मूल में कुछ अधिक 3,162 योजन चौड़े, मध्य में कुछ अधिक 2,372 योजन एवं ऊपर कुछ अधिक 1,581 योजन है। ये स्वर्ण के समान पीले और यमक पक्षियों के समान संस्थान वाले हैं मानों ये दोनो एक साथ उत्पन्न दो भाई हों। यहाँ दो-दो कोश ऊँची और 500-500 धनुष चौड़ी एक-एक पद्मवरवेदिका तथा एक-एक वनखण्ड है। प्रत्येक वनखण्ड के मध्य साढ़े 62 योजन ऊँचा, 31 योजन एक कोश का लम्बा-चौड़ा एक-एक उत्तम प्रसाद हैं, वहाँ 'यमक-समक' नाम के दो परम ऋद्धिशाली देव अपने परिवार के साथ रहते हैं। इनकी राजधानी मेरू पर्वत के उत्तर में अन्य जम्बूद्वीप में 12 हजार योजन आगे जाने पर आती है। इसी प्रकार देवकुरू क्षेत्र में भी शीतोदा प्रपातकुण्ड के दोनों ओर '**चित्र-विचित्र**' नामक ऐसे ही दो पर्वत हैं। उनका वर्णन '**यमक-समक**' पर्वत के समान है। देवकुरू के अधिष्ठायक देव **चित्र** एवं **विचित्र** हैं।

देवकुरू-उत्तरकुरू क्षेत्र के दस द्रह—निषध पर्वत से $834^{4/7}$ योजन उत्तर में देवकुरू क्षेत्र के मध्यभाग में शीतोदा महानदी के ठीक मध्यभाग में पाँच द्रह सरोवर हैं—**(1) निषधद्रह, (2) देवकुरू द्रह, (3) सुरप्रभद्रह, (4) सुलस द्रह, (5) विद्युत्प्रभ द्रह।**

इसी प्रकार नीलवंत पर्वत से $834^{4/7}$ योजन दक्षिण में उत्तरकुरू में सीता महानदी के ठीक मध्यभाग में भी पाँच द्रह है—**(1) नीलवंत द्रह, (2) उत्तरकुरू द्रह, (3) चन्द्रद्रह, (4) ऐरावत द्रह, (5) माल्यवंत द्रह।**

ये दसों द्रह 'पद्मद्रह' के समान 1,000 योजन लम्बे, 500 योजन चौड़े और 10 योजन गहरे हैं। प्रत्येक द्रह में छह-छह कमल वलय हैं। इन द्रहों को भेदकर ही शीतोदा और सीता महानदी आगे जाती है।

कंचनगिरी पर्वत—इन द्रहों के आस-पास 10-10 कंचनगिरी पर्वत है। स्वर्ण के होने कारण इन्हें '**कंचनगिरि**' कहते हैं। ये दस-दस पूर्व में और दस-दस पश्चिम में है। इस प्रकार कुल 20-20 पर्वत है।

पाँचों द्रहों के 20 × 5 = 100 पर्वत उत्तर दिशा में है और 100 पर्वत दक्षिण दिशा में हैं। 100 + 100 = 200 ही कंचनगिरि पर्वत भूमि पर 100 योजन, मध्य में 75 योजन एवं ऊपर 50 योजन विस्तार वाले ऊर्ध्व गोपुच्छाकार गोलाकार हैं। ये सभी पर्वत दस-दस योजन के अन्तराल पर स्थित है। पर्वतों के ऊपर की बावड़ियों में कंचन जैसी कांति वाले कमल होने से ये पर्वत 'कांचनक' कहे जाते हैं। 'कांचनदेव' ही इन पर्वतों का अधिष्ठायक है।

चार गजदन्त पर्वत—उत्तरकुरू क्षेत्र में जैसे जंबूवृक्ष है, उसी प्रकार पश्चिमी देवकुरू क्षेत्र के बीचोंबीच कूट शाल्मली वृक्ष है। इसके अधिपति गरूड़ देव हैं। देवकुरू और उत्तरकुरू के दोनों ओर दो-दो वक्षस्कार पर्वत हैं। उनमें **'सोमनस वक्षस्कार'** और **'विद्युत्प्रभ वक्षस्कार'** ये दोनों पर्वत देवकुरू क्षेत्र के दोनों ओर पूर्व-पश्चिम में स्थित है। इसी प्रकार उत्तरकुरू क्षेत्र के पूर्व-पश्चिम में **'माल्यवान और गंधमादन'** दो **'पर्वत'** है। ये चारों पर्वत हाथी के दाँत के समान मूल में चौड़े, बीच में वक्र (टेढ़े) और अंत में पतले है, अत: इन्हें **'गजदन्त'** पर्वत भी कहते हैं। ये पर्वत निषध और नीलवन्त पर्वत के पास मूल में 500 योजन चौड़े एवं मेरू पर्वत की तरफ घटते-घटते अंत में अंगुल के असंख्यातवें भाग जितने पतले हैं। इनकी ऊँचाई निषध और नीलवंत के पास मूल में 400 योजन की और वह बढ़ते-बढ़ते मेरूपर्वत के पास 500 योजन की हो जाती है। इन पर्वतों की लम्बाई 30,209 योजन 6 कलां की अर्थात् निषध पर्वत या नीलवन्त पर्वत से मेरू पर्वत जितनी है। गहराई मूल में 100 योजन की और अंत में 125 योजन की है। (प्राय: सर्वत्र पर्वतों में ऊँचाई का चौथा भाग गहराई होती है।)

सोमनस वक्षस्कार पर बहुत से सौम्य सरल मधुर स्वभाव युक्त देव-देवी विश्राम करते हैं, इसलिये उसे 'सोमनस कहते हैं। **विद्युत्प्रभ पर्वत** विद्युत की तरह आभा और उद्योत लिये हुए है। **गंधमादन पर्वत** से तगर आदि सुगंधित पदार्थों जैसी सुगंध निकलती है और **माल्यवान् पर्वत** विविधवर्ण एवं सुगंध से युक्त लताओं और पुष्पों से सुशोभित है, अत: इनके नाम भी उसी प्रकार गुण सम्पन्न हैं। अथवा इन पर्वतों पर अपने-अपने नाम वाले ऋद्धिसम्पन्न देवों के आवास हैं, अत: उन्हें इन नामों से पुकारा जाता है।

'सोमनस पर्वत' चाँदी के समान श्वेत है, **विद्युत्प्रभ पर्वत** तपे हुए स्वर्ण के सदृश पीला, **माल्यवन्त पर्वत** वैडूर्यरत्न समान नीला और **'गंधमादन पर्वत'** सर्वरत्नमय है । सोमनस वक्षस्कार पर सात कूट हैं— **(1) सिद्धायतनकूट, (2) सोमनस कूट, (3) मंगलावती कूट, (4) देवकुरू कूट, (5) विमलकूट, (6) कंचन कूट, (7) वशिष्ठकूट।** ये सब कूट 500 योजन ऊँचे हैं। **विमलकूट** तथा **कंचनकूट** पर **'सुवत्सा'** एवं **'वत्समित्रा'** नामक दो दिक्कुमारियों का निवास हैं। शेष कूटों पर कूटों के सदृश नाम वाले देव निवास करते है।

विद्युत्प्रभ वक्षस्कार पर नौ कूट हैं—**(1) सिद्धायतनकूट, (2) विद्युत्प्रभ कूट, (3) देवकुरू कूट, (4) पक्ष्मकूट, (5) कनककूट, (6) सौवत्सिक कूट, (7) शीतोदा कूट, (8) शतज्वल कूट, (9) हरि कूट।**

हरिकूट के अतिरिक्त सभी कूट पाँच-पाँच सौ योजन ऊँचे हैं। उनमें तत्सदृश नाम वाले देवों का निवास है। हरिकूट एक हजार योजन ऊँचा है, यहाँ हरिदेव की राजधानी है। कनककूट तथा सौवत्सिक कूट में **'वारिषेणा'** एवं **'बलाहका'** नाम की दो दिशाकुमारियों का निवास है।

माल्यवान् वक्षस्कार पर नौ कूट है—**(1) सिद्धायतनकूट, (2) माल्यवान कूट, (3) उत्तरकुरू कूट, (4) कच्छ कूट, (5) सागरकूट, (6) रजत कूट, (7) शीताकूट, (8) पूर्णभद्रकूट, और (9) हरिस्सह कूट।** सागरकूट पर '**सुभोगा**' और रजतकूट पर '**भोगमालिनी देवी**' रहती हैं। हरिस्सह कूट पर '**हरिस्सह देव**' की 500 योजन राजधानी है। यह कूट एक हजार योजन ऊँचा है। शेष 500 योजन ऊँचे कूटों पर कूट सदृश नाम वाले देवों का निवास हैं।

गंधमादन वक्षस्कार पर सात कूट हैं—**(1) सिद्धायतनकूट, (2) गंधमादन कूट, (3) गन्धिलावती कूट, (4) उत्तरकुरूकूट, (5) स्फटिककूट, (6) लोहिताक्षकूट, (7) आनन्दकूट** । ये सभी कूट 500 योजन ऊँचे हैं। स्फटिककूट तथा लोहिताक्षकूट पर '**भोगंकरा**' एवं '**भोगवती**' नामक दो दिक्कुमारिकाएँ निवास करती है। बाकी के कूटों पर तत्सदृश नाम वाले देव निवास करते हैं।

उक्त चारों कूटों की आठ दिशाकुमारियाँ नीचे अधोलोक में भवनपति निकाय की देवियाँ कहलाती हैं। इन सभी के दो-दो प्रासाद गजदन्त पर्वत पर भी हैं। ये सभी तीर्थंकरों के जन्म समय संवर्तक वायु से एक योजन तक की भूमि को स्वच्छ करती है तथा प्रसूतिगृह का निर्माण करती हैं।

नीलवान् वर्षधर पर्वत—महाविदेह की सीमा बाँधने वाला जैसे दक्षिण में निषध पर्वत है, वैसे ही महाविदेह के उत्तर में नीलवान् नामक वर्षधर पर्वत है। इसका संपूर्ण वर्णन निषध पर्वत के समान है। इतना अंतर है कि इसकी जीवा दक्षिण में है, और धनुपृष्ठ भाग उत्तर में है। इसका वर्ण '**नीलम**' के समान है। नीलवान् वर्षधर पर्वत के नौ कूट हैं—**(1) सिद्धायतनकूट, (2) नीलवंतकूट, (3) पूर्वविदेहकूट, (4) शीताकूट, (5) कीर्तिकूट, (6) नारीकान्ताकूट, (7) अपरविदेहकूट, (8) रम्यककूट, (9) उपदर्शनकूट।** ये सब कूट पाँच सौ योजन ऊँचे हैं। इनके अधिष्ठातृ देवों की राजधानियाँ मेरू के उत्तर में है।

केसरी द्रह और उससे निर्गत नदियाँ—नीलवंत पर्वत के मध्य में '**केसरी द्रह**' है। उससे दो नदियाँ निकलती हैं—(1) सीता महानदी, (2) नारीकान्ता महानदी। दक्षिण से '**सीता महानदी**' निकली है। सीता महानदी दक्षिण तरफ **उत्तरकुरू क्षेत्र** और यमक-समक पर्वत के मध्य में होकर **(1) नीलवान्, (2) उत्तरकुरू क्षेत्र, (3) चन्द्र, (4) ऐरावत एवं (5) माल्यवान्**—इन पाँच द्रहों को दो भागों में विभाजित करती हुई आगे बढ़ती है। उसमें 84 हजार नदियाँ मिलती है। उनसे आपूर्ण होकर वह भद्रशाल वन के मध्य में बहती हुई मेरू पर्वत से 2 योजन पहले पूर्व दिशा की तरफ मुड़कर नीचे माल्यवन्त वक्षस्कार पर्वत को भेदती हुई पूर्व विदेह क्षेत्र को दो भागों में विभाजित करती है। एक-एक चक्रवर्ती विजय की 28-28 हजार नदियाँ उसमें मिलती है। इस प्रकार 28,000 × 16 + 84000 = **5,32,000 नदियों** से आपूर्ण वह नीचे विजयद्वार की जगती को विदीर्ण कर पूर्वी लवण समुद्र में मिल जाती है।

केसरीद्रह से दूसरी '**नारीकन्ता नदी**' उत्तराभिमुख होकर बहती है। वह रम्यक्वास क्षेत्र के मध्य में होकर 56,000 नदियों के साथ पश्चिम लवण समुद्र में जाकर मिलती है। उसका वर्णन पूर्व के सदृश है। इतना अन्तर है—जब गन्धापाति वृत्तवैताढ्य पर्वत एक योजन दूर रह जाता है, तब वह वहाँ से पश्चिम की ओर मुड़

जाती है। बाकी का वर्णन पूर्वानुरूप है। उद्गम तथा संगम के समय उसके प्रवाह का विस्तार हरिकान्ता नदी के सदृश होता है। द्रह के मणि रत्नमय कमल की कर्णिका पर '**कीर्तिदेवी**' सपरिवार निवास करती है।

रम्यक्वर्ष क्षेत्र

यह क्षेत्र नीलवान् वर्षधर पर्वत की उत्तरदिशा में तथा रूक्मि पर्वत के दक्षिण में स्थित है। यह अकर्मभूमिक क्षेत्र है। यहाँ पर युगलिया मनुष्य व तिर्यंच हैं। दूसरे 'सुषम' काल जैसी यहाँ स्थिति है। यह हरिवर्ष क्षेत्र के समान है। इतना अन्तर है कि इसकी जीवा दक्षिण में और धनुपृष्ठ भाग उत्तर में है। इसके मध्य '**गंधापाती**' नामक गोलाकार वैताढ्य पर्वत है। विकटापाती सदृश उसका वर्णन है। रम्यक्वास के युगलियों का शरीर बड़ा ही रमणीक है तथा 'रम्यक्देव' का भी यहाँ निवास है अत: इसे 'रम्यक्वर्ष' कहा जाता है।

रूक्मि वर्षधर पर्वत—यह पर्वत रम्यक्वर्ष क्षेत्र और हैरण्यवत क्षेत्र की सीमा निश्चित् करता है। यह रम्यक्वर्ष के उत्तर में और हैरण्यवत के दक्षिण में तथा पूर्व से पश्चिम लवण समुद्र तक फैला हुआ है। महाहिमवन्त पर्वत के सदृश इसका वर्णन है। विशेष इसकी जीवा दक्षिण में और धनुपृष्ठभाग उत्तर में है। यह रजत की आभा वाला रजतमय है तथा पल्योपम की स्थिति वाला '**रूक्मि**' नामक देव इस पर्वत का अधिष्ठाता है अत: इसें '**रूक्मि पर्वत**' कहा गया है।

इसके आठ कूट बतलाये गये हैं—**(1) सिद्धायतनकूट, (2) रूक्मीकूट, (3) रम्यककूट, (4) नरकान्ताकूट, (5) बुद्धिकूट, (6) रूप्यकूलाकूट, (7) हैरण्यवतकूट तथा (8) मणिकांचनकूट।** ये सभी कूट पाँच-पाँच सौ योजन ऊँचे है। उत्तर में इनकी राजधानियाँ है।

महापुण्डरीकद्रह और नरकान्ता व रूप्यकूला नदियाँ—रूक्मि पर्वत के मध्य '**महापुण्डरीक द्रह**' हैं। इसके दक्षिण तोरण से नरकान्ता नदी निकलती हैं। वह दक्षिण की ओर रम्यक्वास क्षेत्र के मध्य में होकर 15 हजार नदियों के परिवार से पूर्व के लवण समुद्र में जाकर मिलती है।

दूसरी '**रूप्यकूला नदी**' महापुण्डरीद्रह के उत्तरी तोरण से निकलती है वह हैरण्यवत क्षेत्र के मध्य में होती हुई 28 हजार नदियों के परिवार से पश्चिमी लवण समुद्र में जाकर मिलती है। नरकान्ता नदी का वर्णन रोहिता नदी के सदृश और रूप्यकला नदी का वर्णन हरिकान्ता नदी के सदृश है। महापुण्डरिक द्रह के रत्नमय कमल की कर्णिका पर '**बुद्धिदेवी**' सपरिवार रहती है।

हैरण्यवत क्षेत्र

रूक्मि नामक वर्षधर पर्वत के उत्तर में तथा शिखरी वर्षधर पर्वत के दक्षिण में पूर्व से पश्चिम छोर तक लम्बा हैरण्यवत क्षेत्र है। यह क्षेत्र रूक्मि और शिखरी वर्षधर पर्वतों से दो ओर घिरा हुआ है यह नित्य हैरण्य-चाँदी के समान चमकता है तथा '**हैरण्यवत देव**' इस क्षेत्र का अधिपति है अत: इसे '**हैरण्यवत**' कहते हैं। इस क्षेत्र में हैमवत क्षेत्र के समान ही सदैव तीसरे आरे सुषम-दुषमा के प्रथम भाग जैसी स्थिति रहती है। विशेष, इसकी जीवा दक्षिण में और धनुपृष्ठभाग उत्तर में है। इसके मध्य में '**माल्यवंत**' नाम का वृत्त-गोलाकार वैताढ्य पर्वत है। उसका वर्णन शब्दापाती वृत्त वैताढ्य सदृश समझना।

शिखरी वर्षधर पर्वत—यह पर्वत हैरण्यवत के उत्तर में है। ऐरावत क्षेत्र की सीमा बाँधने वाला यही पर्वत है। यह पूर्वी लवण समुद्र से पश्चिमी लवण समुद्र तक लम्बा है। इसका वर्णन '**चुल्लहिमवान्**' पर्वत के सदृश है। केवल इसकी जीवा दक्षिण में और धनुपृष्ठ भाग उत्तर में है। इस पर्वत के बहुत से कूट उसी के आकार के हैं। शिखरी नामक देव का यहाँ निवास है, अत: इसे '**शिखरी पर्वत**' कहा है।

उसके ग्यारह कूट बतलाये गये है—**(1) सिद्धायतन कूट, (2) शिखरी कूट, (3) हैरण्यवत कूट, (4) सुवर्णकूला कूट, (5) सुरादेवी कूट, (6) रक्ता कूट, (7) लक्ष्मी कूट, (8) रक्तावती कूट, (9) इलादेवी कूट, (10) ऐरावत कूट, (11) तिगिंच्छ कूट।** ये सभी कूट पाँच-पाँच सौ योजन ऊँचे है। इनके अधिष्ठातृ देवों की राजधानियाँ उत्तर में है।

पुण्डरिक द्रह और सुवर्णकूला, रक्त व रक्तवती महानदियाँ—शिखरी वर्षधर पर्वत पर '**पुण्डरिक**' नाम का द्रह है। जिस पर '**लक्ष्मीदेवी**' सपरिवार रहती है। पद्मद्रह के समान पुण्डरीक द्रह से भी तीन नदियाँ निकली है। इनमें से '**रक्ता**' और '**रक्तवती**' नामक दो नदियाँ उत्तर की ओर ऐरावत क्षेत्र में होकर 14-14 हजार नदियों के परिवार से पूर्व और पश्चिम लवण समुद्र में गिरती है और तीसरी '**सुवर्णकूला**' नदी दक्षिण की तरफ हैरण्यवत क्षेत्र में होकर 28 हजार नदियों के परिवार के साथ लवण समुद्र में जाकर मिल गई है। सुवर्णकूला का वर्णन रोहितांशा नदीवत् और रक्ता-रक्तवती नदी का वर्णन गंगा-सिंधु नदी के समान हैं।

ऐरवत क्षेत्र

ऐरवत क्षेत्र **भरतक्षेत्र** के समान ही कर्मभूमि क्षेत्र है। यहाँ भी अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी काल है। प्रत्येक काल के छह-छह आरे हैं तथा प्रत्येक सुषमा-दुषमा और दुषम-सुषम काल में कुल 24 तीर्थंकर, 12 चक्रवर्ती, 9 बलदेव, 9 वासुदेव एवं 9 प्रतिवासुदेव होते हैं। वर्तमान में वहाँ भी पाँचवा '**दुषम आरा**' चल रहा है। भरतक्षेत्र में जैसे प्रथम भरत चक्रवर्ती थे वैसे यहाँ '**ऐरवत**' चक्रवर्ती थे। '**ऐरवत नामक देव**' यहाँ का अधिष्ठाता है। यह क्षेत्र मेरूपर्वत के उत्तर दिशा में है। अर्द्धचन्द्राकार है। उत्तर में लवण समुद्र से और दक्षिण में शिखरी पर्वत से इसकी सीमा बँधी है।

सारांश—इस प्रकार एक लाख योजन विस्तार वाले जम्बूद्वीप में भरत आदि मुख्य 7 क्षेत्र हैं। 170 म्लेच्छ खण्ड, 34 कर्मभूमियाँ और 6 भोगभूमियाँ हैं। 4 वृत्त वैताढ्य, 34 दीर्घ वैताढ्य, 16 वक्षस्कार, चित्र-विचित्र और यमक-समक 4 युगल पर्वत, 200 कंचनगिरि, 4 गजदंत, मेरु और 6 वर्षधर पर्वत, आदि कुल मिलाकर 269 शाश्वत पर्वत हैं। 16 वक्षस्कार पर्वतों के 4-4 कूट (16 × 4 =) 64 कूट, सोमनस और गंधमादन के 7-7 शिखर, रूक्मि, महाहिमवंत के 8-8 कूट, चौंतीस दीर्घ वैताढ्य, विद्युत्प्रभ, माल्यवंत, निषध, नील और नंदनवन के 9-9 कूट, हिमवंत और शिखरी पर्वत के 11-11 कूट, इस प्रकार 61 पर्वतों पर कुल 467 पर्वत कूट हैं। चौंतीस विजयों में 34 ऋषभकूट, मेरुपर्वत और जंबू वृक्ष के ऊपर 8 कूट, देवकुरु में 8, हरिकूट और हरिस्सह कूट—इस प्रकार ये 60 भूमिकूट हैं। अर्थात् ये पर्वत ऊपर के शिखर नहीं हैं अपितु सीधे ही भूमि के ऊपर शिखर होते हैं। इनमें हरिकूट और हरिस्सहकूट; जो गजदन्त पर्वत के हैं, उन्हें 'सहस्रांक कूट' के नाम से जाना जाता है।

महाविदेह क्षेत्र की 32 विजय एवं भरत-ऐरवत क्षेत्र में मागध, वरदाम और प्रभास तीर्थ है। अत: (34 × 3 =) 102 **तीर्थ** हैं। 34 दीर्घ वैताढ्य पर्वत के ऊपर, विद्याधर और आभियोगिक देवों की दो-दो श्रेणियाँ हैं। अत: (34 × 4 =) 136 **श्रेणियाँ** हैं। चक्रवर्ती के जीतने योग्य 34 विजय हैं। छह पद्मद्रह और देवकुरू-उत्तरकुरू के 5-5 द्रह; ऐसे (6 + 10 =) 16 **द्रह** हैं।

भरत-ऐरावत क्षेत्र की गंगा-सिंधु और रक्ता-रक्तवती महानदियों का (14,000 × 4 =) 56,000 नदियों का परिवार है।

इसी तरह आभ्यंतर क्षेत्र (हिमवंत, हिरण्यवंत, हरिवर्ष, रम्यक्वर्ष क्षेत्रों की चार महानदियों का (28,000 × 4 =) 1,12,000 और चार महानदियों का (56,000 × 4 =) 2,24,000 कुल 3,36,000 नदियों का परिवार है।

देवकुरु-उत्तरकुरु की 84-84 हजार नदियाँ तथा महाविदेह की 64 नदियाँ हैं। प्रत्येक के 14-14 हजार का परिवार (14,000 × 64 =) 8,96,000 नदियाँ। इनमें 84-84 हजार मिलाने से महाविदेह की 10,64,000 नदियाँ हुईं। इनमें पूर्व की संख्या मिलाने पर (56,000 + 3,36,000 + 10,64,000 =) 14,56,000 नदियाँ हैं।

इसकी संग्रहणी गाथा से जम्बूद्वीप की सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त होती है—

खंडा जोयण वासा पव्वय कूडा य तित्थ सेढीओ।
विजय द्दह सलिलाओ य, पिंडेहिं होइ संगहणी॥

(जम्बू. 6 वक्षस्कार)

जम्बूद्वीप में जो छह वर्षधर पर्वत और सात क्षेत्र हैं, वे भरतक्षेत्र से मेरु पर्वत तक दूने-दूने विस्तार वाले हैं और मेरु से आगे ऐरवत क्षेत्र तक आधे-आधे विस्तार वाले हैं। एक लाख योजन जम्बूद्वीप के 526 योजन 6 कलां (भरत क्षेत्र) जितने खण्ड किये जायें तो 190 खण्ड होते हैं, अर्थात् भरत क्षेत्र जम्बूद्वीप का 190वाँ भाग होता है। **(चित्र क्रमांक 49)**

जम्बूद्वीप के 190 विभाग

जम्बूद्वीप के नौ क्षेत्रों की तालिका—भरत क्षेत्र

चित्र क्र. 49

नाम	लंबाई/जीवा	चौड़ाई	बाहा	धनुपृष्ठ	पर्वत	नदी	काल	संस्थान
दक्षिणार्ध भरत क्षेत्र	9,748 यो. 12 कला	238 यो. 3 कला	—	9,766 यो. 1 कला	दीर्घ वैताढ्य	गंगा-सिंधु नदी 28,000 परिवार	सुषमादि 6 आरे कर्मभूमि क्षेत्र	तीर चढ़े धनुष जैसा
उत्तरार्ध भरत क्षेत्र	14,471 यो. 5 कला	238 यो. 3 कला	1,842 यो. 7½ कला	14,528 यो. 11 कला				पल्यंक लंब चौरस
सम्पूर्ण भरत क्षेत्र	14,471 यो. 6 कला	526 यो. 6 कला	1,892 यो. 7½ कला	14,528 यो. 11 कला				तीर चढ़े धनुष जैसा

हरिवर्ष क्षेत्र की तालिका

दिशा	मेरु पर्वत का दक्षिण महाहिमवंत पर्वत के उत्तर में
लम्बाई	73,901 योजन 17½ कला
चौड़ाई	8,421 योजन 1 कला
बाहा	13,361 योजन 6½ कला
जीवा	73,901 योजन 17½ कला
धनुपृष्ठ	84,016 योजन 4 कला
पर्वत	मध्य में विकटापाती वृत्त वैताढ्य
नदी	हरिकांता हरिसलिला का 1,12,000 का परिवार
काल	सुषमा काल जैसा अकर्म भूमि क्षेत्र
संस्थान	पल्यंक (लंब चौरस)

हैमवत क्षेत्र की तालिका

दिशा	मेरु पर्वत का दक्षिण चुल्लहिमवंत पर्वत के उत्तर में
लम्बाई	37,674 योजन 16 कला
चौड़ाई	2,105 योजन 5 कला
बाहा	6,755 योजन 3 कला
जीवा	देशोन 37,674 योजन 16 कला
धनुपृष्ठ	38,740 योजन 10 कला
पर्वत	मध्य में शब्दापाती वृत्त वैताढ्य
नदी	रोहिता रोहितांशा और 56,000 परिवार
काल	सुषम दुषम जैसा अकर्म भूमि क्षेत्र
संस्थान	पल्यंक (लंब चौरस)

महाविदेह क्षेत्र की तालिका

दिशा	निषध पर्वत का दक्षिण नीलवंत पर्वत के उत्तर में
लम्बाई	1,00,000 योजन
चौड़ाई	33,684 योजन 4 कला
बाहा	33,767 योजन 7 कला
जीवा	1,00,000 योजन
धनुपृष्ठ	1,58,113 योजन 16 कला
पर्वत	मध्य में मेरु पर्वत, 16 वक्षस्कार पर्वत
नदी	सीता सीतोदा का 10,64,000 परिवार तथा 12 अंतर नदी
काल	दुषम सुषमा जैसा कर्म भूमि क्षेत्र
संस्थान	पल्यंक (लंब चौरस)

देवकुरु क्षेत्र की तालिका

दिशा	लम्बाई	चौड़ाई	जीवा	धनुपृष्ठ	पर्वत	नदी	काल	संस्थान
मेरु पर्वत के दक्षिण में निषध पर्वत के उत्तर में	53,000 योजन	11,842 योजन 12 कला	53,000 योजन	60,418 योजन 12 कला	चित्र-विचित्र पर्वत और 100 कांचनक पर्वत	सीतोदा व 84,000 का परिवार	सुषम सुषमा	अर्द्धचन्द्र

उत्तरकुरु क्षेत्र की तालिका

दिशा	लम्बाई	चौड़ाई	जीवा	धनुपृष्ठ	पर्वत	नदी	काल	संस्थान
मेरु पर्वत के उत्तर में नीलवंत पर्वत के दक्षिण में	53,000 योजन	11,842 योजन	53,000 योजन	60,418 योजन 12 कला	दो यमक पर्वत 100 कांचनक पर्वत	सीता नदी का 84,000 परिवार	सुषमा सुषमा	अर्द्धचन्द्र

रम्यक्वर्ष क्षेत्र की तालिका

दिशा	लम्बाई	चौड़ाई	बाहा	जीवा	धनुपृष्ठ	पर्वत	नदी	काल	संस्थान
मेरु पर्वत से उत्तर में शिखरी पर्वत से दक्षिण में	73,901 योजन 17½ कला	8,421 योजन 1 कला	13,361 योजन 6½ कला	73,901 योजन 17½ कला	84,016 योजन 4 कला	मध्य में गंधापाती वृत्त वैताढ्य	नारीकांता नरकांता व 1,12,000 का परिवार	सुषम काल जैसा अकर्म भूमि क्षेत्र	पल्यंक (लंब चौरस)

हैरण्यवत क्षेत्र की तालिका

दिशा	लम्बाई	चौड़ाई	बाहा	जीवा	धनुपृष्ठ	पर्वत	नदी	काल	संस्थान
मेरु पर्वत के उत्तर में शिखरी पर्वत के दक्षिण में	37,674 योजन 15 कला	2,105 योजन 5 कला	6,755 योजन 3 कला	देशोन 37,674 योजन 16 कला	38, 740 योजन 10 कला	मध्य में माल्यवंत वृत्त वैताढ्य	सुवर्णकूला रूप्यकूला व 56,000 परिवार	सुषम दुषमा जैसा अकर्मभूमि क्षेत्र	पल्यंक (लंब चौरस)

ऐरावत क्षेत्र की तालिका

नाम	लम्बाई	चौड़ाई	बाहा	जीवा	धनुपृष्ठ	पर्वत	नदी	काल	संस्थान
दक्षिणार्ध ऐरावत	14,471 यो. 6 कला	238 यो. 3 कला	1,892 यो. 7½ कला	14,471 यो. 6 कला	14,528 यो. 11 कला	—	रक्ता-रक्तवती का 28,000 परिवार	सुषमादि 6 आरा कर्मभूमि क्षेत्र	पल्यंक
उत्तरार्ध ऐरावत	9,748 यो. 12 कला	238 यो. 3 कला	—	9,748 यो. 12 कला	9,766 यो. 1 कला	ऋषभकूट पर्वत			तीर चढ़े धनुष जैसा
सम्पूर्ण ऐरावत	14,471 यो. 6 कला	526 यो. 6 कला	1,892 यो. 7½ कला	14,471 यो. 6 कला	14,528 यो. 11 कला	मध्य में दीर्घ वैताढ्य			तीर चढ़े धनुष जैसा

जंबूद्वीप का आयाम-विष्कम्भ

क्रम.	सात क्षेत्र एवं छह वर्षधर पर्वत	लंबाई पूर्व से पश्चिम (योजन में)	चौड़ाई (योजन में)	जंबूद्वीप के खंड
1	भरत क्षेत्र	$14,471^{5/91}$	526/6	1 खण्ड प्रमाण
2	चुल्लहिमवंत पर्वत	24,932	1,052/12	2 खण्ड प्रमाण
3	हैमवत क्षेत्र	$37,674^{16/19}$	2,105/5	4 खण्ड प्रमाण
4	महाहिमवंत पर्वत	$53,931^{6/19}$	4,210/10	8 खण्ड प्रमाण
5	हरिवर्ष क्षेत्र	$73,901^{17/19}$	8,421/1	16 खण्ड प्रमाण
6	निषध क्षेत्र	94,156	16,842/2	32 खण्ड प्रमाण
7	महाविदेह क्षेत्र	1,00,000	33,684/4	64 खण्ड प्रमाण
8	नीलवंत क्षेत्र	94,156	16,842/2	32 खण्ड प्रमाण
9	रम्कयवर्ष क्षेत्र	$73,901^{17/19}$	8,421/1	16 खण्ड प्रमाण
10	रूक्मी पर्वत	$53,931^{6/19}$	4,210/10	8 खण्ड प्रमाण
11	हैरण्यवत क्षेत्र	$37,674^{16/19}$	2,105/5	4 खण्ड प्रमाण
12	शिखरी पर्वत	24,932	1,052/12	2 खण्ड प्रमाण
13	ऐरवत क्षेत्र	$14,471^{5/91}$	526/6	1 खण्ड प्रमाण
	जंबूद्वीप का आयाम विष्कम्भ	**1,00,000 योजन**	**1,00,000 योजन**	**190 खंड भरत क्षेत्र जितने**

नोट—इसमें क्षेत्रों का प्रमाण 55,789 योजन कला और पर्वतों का प्रमाण 44210 योजन 10 कला है।

शाश्वत पर्वत एवं उनके कूट

क्रम.	शाश्वत पर्वत के नाम	पर्वत की संख्या	पर्वत पर कूट की संख्या
1	मेरू पर्वत	1	9
2	लघु हिमवंतादि छह वर्षधर पर्वत	6	56
3	दीर्घ वैताढ्य पर्वत (32 विजयों में 32, 1 भरत, 1 ऐरवत)	34	306
4	वृत्त वैताढ्य पर्वत	4	—
5	यमक समक पर्वत	2	—
6	चित्रकूट विचित्रकूट पर्वत	2	—
7	गजदन्त पर्वत (देवकुरू, उत्तरकुरू)	4	32
8	कंचनगिरी पर्वत	200	—
9	वक्षस्कार पर्वत	16	64
		269 पर्वत	**467 कूट**

नोट—यमक, समक, चित्रकूट, विचित्रकूट, चार वृत्त वैताढ्य एवं कंचनगिरि पर कूट नहीं है।

छह वर्षधर पर्वत पर आये छह महाद्रह से निकलती नदियाँ

क्रम.	पर्वत का नाम	महाद्रह	लंबाई	अधिष्ठाता	महानदियाँ	सम्मिलित नदी संख्या
1	लघुहिमवंत पर्वत	पद्मद्रह	1,000	श्री देवी	पूर्व द्वार से गंगा नदी पश्चिम द्वार से सिंधु नदी उत्तर द्वार से रोहितांशा नदी	चौदह हजार चौदह हजार अट्ठाईस हजार
2	महाहिमवंत पर्वत	महापद्मद्रह	2,000	ह्री देवी	दक्षिण द्वार से रोहिता उत्तर द्वार से हरिकांता	अट्ठाईस हजार छप्पन हजार
3	निषध पर्वत	तिगिंच्छद्रह	4,000	घी देवी	दक्षिण द्वार से हरिसलिला उत्तर द्वार से शीतोदा	छप्पन हजार 5 लाख 32 हजार
4	नीलवन्त पर्वत	केशरीद्रह	4,000	कीर्ति देवी	उत्तर द्वार से नारीकान्ता दक्षिण द्वार से शीता	छप्पन हजार 5 लाख 32 हजार
5	रूक्मी पर्वत	महापुण्डरिक द्रह	2,000	बुद्धि देवी	उत्तर द्वार से रूप्यकूला दक्षिण द्वार से नरकान्ता	अट्ठाईस हजार छप्पन हजार
6	शिखरी पर्वत	पुण्डरिक द्रह	1,000	लक्ष्मी देवी	पूर्व द्वार से रक्ता पश्चिम द्वार से रक्तवती दक्षिण द्वार से सुवर्णकूला	चौदह हजार चौदह हजार अट्ठाईस हजार
1	चित्र-विचित्रकूट पर्वत (देवकुरू में)	निषध देवकुरू सूर, सुलस, विद्युत्प्रभ = 5	—	—	—	—
2	यमक समक पर्वत (उत्तरकुरू में)	नीलवंत उत्तरकुरू चंद्र, ऐरवत, माल्यवंत = 5	—	—	—	—
	कुल योग	**16 महाद्रह**			**14 महानदियाँ**	**14,56,000 नदियाँ**

नोट—सभी द्रहों की लम्बाई से चौड़ाई आधी है। गहराई सबकी 10 योजन है।

छप्पन अन्तर्द्वीप

भरतक्षेत्र से उत्तर में स्थित चुल्लहिमवान् पर्वत के पूर्व-पश्चिम दोनों चरमान्त से हाथी के दाँत के समान वक्राकार दो-दो पंक्तियाँ लवण समुद्र में 8,400 योजन से कुछ अधिक आगे तक है। दोनों दिशाओं की एक पंक्ति दक्षिण की ओर मुड़ी हुई है और एक उत्तर की ओर। इन चार पंक्तियों पर सात-सात द्वीप हैं, जो थोड़े-थोड़े अन्तर पर हैं, अर्थात् उनके बीच-बीच में समुद्री जल है। जंबूद्वीप की जगती से प्रथम अन्तर 300 योजन का है उसके पश्चात् 300 योजन विस्तार वाला द्वीप है। दूसरा अन्तर 400 योजन का है, फिर 400 योजन ही विस्तृत द्वीप, तीसरा अन्तर 500 योजन का और 500 योजन विस्तृत द्वीप इसी प्रकार सौ-सौ योजन आगे बढ़ाते हुए सातवाँ अन्तर 900 योजन का है और आगे 900 योजन का ही द्वीप है। इन सभी द्वीपों की जगती से दूरी भी इतनी ही है। एक पंक्ति में सात अन्तर्द्वीप हैं, अत: चारों पंक्तियों में कुल मिलाकर 7 × 4 = 28 अन्तर्द्वीप है। इन 28 अन्तर्द्वीपों को चार-चार समूह में विभक्त करने से सात चतुष्क बनते हैं। **(चित्र क्रमांक 50-51)**

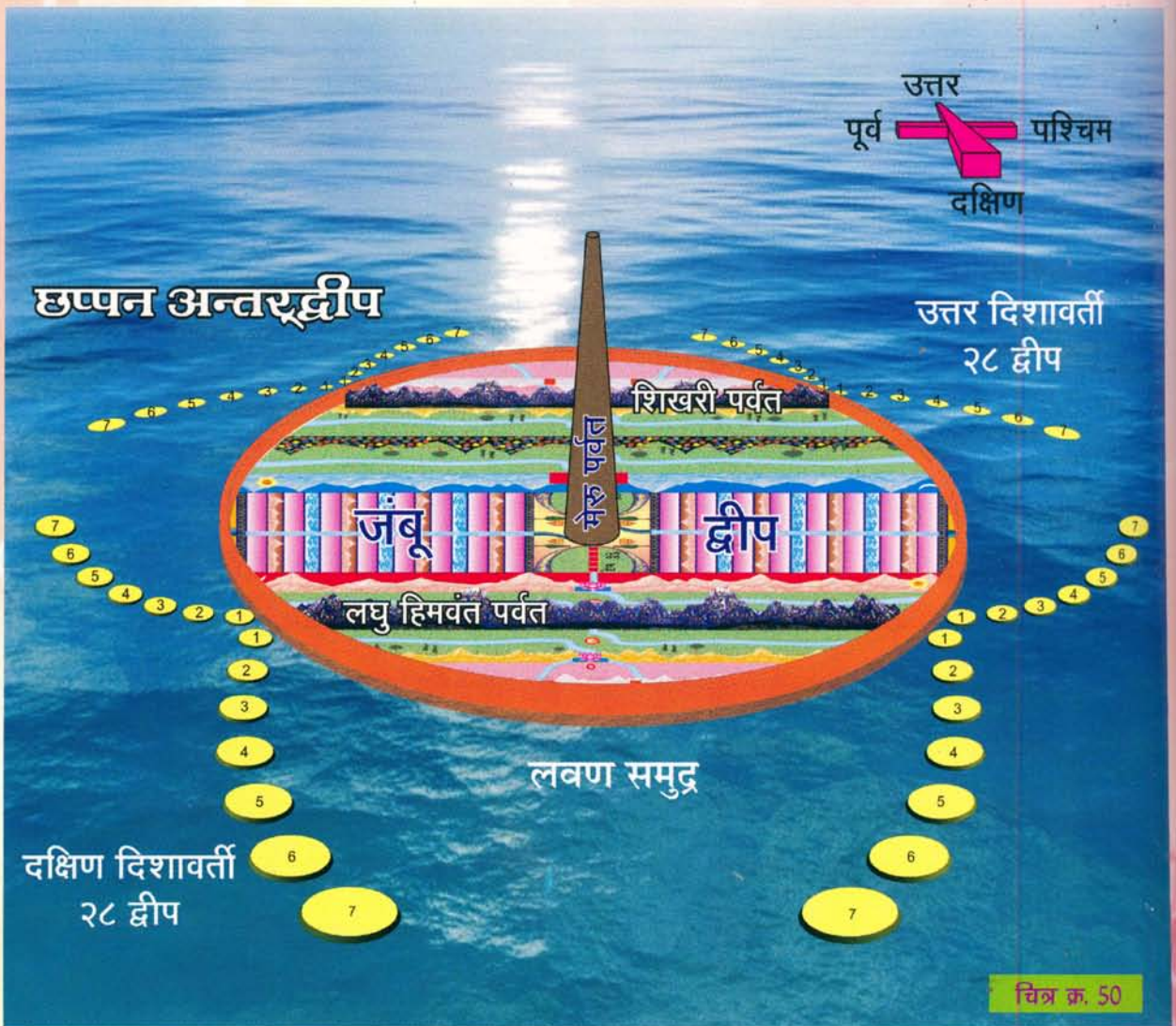

चित्र क्र. 50

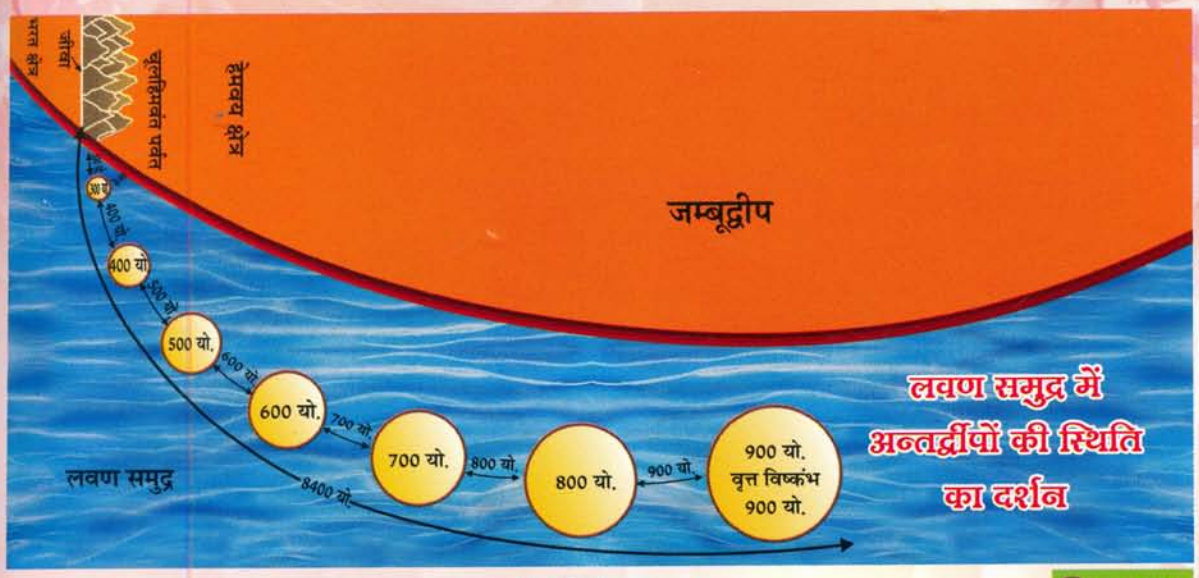

चित्र क्र. 51

56 अन्तर्द्वीपों के सात चतुष्क

दिशा	पहला चतुष्क	दूसरा चतुष्क	तीसरा चतुष्क	चौथा चतुष्क	पाँचवा चतुष्क	छठा चतुष्क	सातवाँ चतुष्क
ईशान	एकोरूक	हयकर्ण	आदर्शमुख	अश्वमुख	अश्वकर्ण	उल्कामुख	घनदन्त
आग्नेय	आभासिक	गजकर्ण	मेंढक मुख	हस्तिमुख	सिंहकर्ण	मेघमुख	लष्टदन्त
नैऋत्य	वैषाणिक	गोकर्ण	अयोमुख	सिंहमुख	अकर्ण	विद्युत्मुख	गूढदन्त
वायव्य	नाङ्गलिक	शष्कुलीकर्ण	गोमुख	व्याघ्रमुख	कर्ण प्रावरण	विद्युत्दन्त	शुद्धदन्त
विस्तार लं. चौ. योजन में	300	400	500	600	700	800	900
जगती से दूरी	300	400	500	600	700	800	900
परिधि	949	1265	1581	1897	2213	2529	2845

56 अन्तर्द्वीप व अकर्मभूमि की तालिका

स्थान	देहमान	आयुष्य	आहारदिन	आहार परिमाण	पसली	अपत्य पालन
56 अन्तरद्वीप	800 धनुष	पल्योपम का असंख्यभाग	एक दिन के अन्तराल से	आँवले के बराबर	64	79 दिन
हिमवन्त, हिरण्यवंत	1 गाउ	1 पल्योपम	एक दिन के अन्तराल से	आँवले के बराबर	64	79 दिन
हरिवर्ष, रम्यक् वर्ष	2 गाउ	2 पल्योपम	दो दिन के अन्तराल से	बेर के बराबर	128	64 दिन
देवकुरू, उत्तरकुरू	3 गाउ	3 पल्योपम	तीन दिन के अन्तराल से	तुअर के दाने के बराबर	256	49 दिन

इसी प्रकार शिखरी पर्वत के पूर्व-पश्चिमी चरमान्त से निकली हुई चार गोलाकार पंक्तियों पर भी पूर्वोक्त नाम एवं प्रमाण वाले 28 द्वीप हैं। ये सब मिलकर 28 + 28 = 56 अन्तरद्वीप होते हैं। ये सभी द्वीप दो कोस ऊँची एवं 500 योजन चौड़ी पद्मवरवेदिका से परिवृत हैं। वेदिका रमणीय वनों से सुशोभित है।

एकोरूकादि 28-28 द्वीप के सभी मनुष्य और स्त्रियाँ सुंदर अंगोपांग युक्त, प्रमाणोपेत अवयव वाले, चन्द्र के समान सौम्य और अत्यन्त भोगश्री सम्पन्न होते हैं। प्रकृति से भद्रिक होते हैं, एक दिन के बाद आहार की इच्छा होती है वह कल्पवृक्षों से पूर्ण होती है। ये मनुष्य 800 धनुष ऊँचे और पल्योपम के असंख्यातवें भाग की आयु वाले सर्वरोग उपद्रव रहित होते हैं। छह मास आयु शेष रहने पर युगलिक स्त्री सन्तान को जन्म देती है। यहाँ सदा सुषम-दुषमा काल की स्थिति रहती है। ये भोगभूमिज मनुष्य सुख पूर्वक आयु पूर्ण कर भवनपति या वाणव्यन्तर देवों में जाकर उत्पन्न होते हैं।

लवण समुद्र

चित्र क्र. 52

जंबूद्वीप की जगती के बाहर साधिक तीन लाख योजन की परिधि वाले जम्बूद्वीप को घेरे हुए वलय-चूड़ी के आकार का लवण समुद्र है। इसका चक्रवाल विष्कम्भ दो लाख योजन का है। इसकी परिधि 15 लाख 81 हजार 139 योजन से कुछ अधिक है, जो जम्बूद्वीप की परिधि से लगभग 5 गुनी अधिक है। गहराई में यह समुद्र किनारे पर बाल के अग्रभाग जितना है किंतु आगे क्रम से इसकी गहराई बढ़ती चली गई है। लवण समुद्र के दोनों किनारों से 95 हजार योजन तक की भूमि क्रमशः नीचे उतरती चली गई है। इस कारण लवण समुद्र की गहराई भी क्रमशः बढ़ती गई है। इस ढलान वाली जगह को गोतीर्थ कहते हैं। दोनों तरफ के गोतीर्थ के मध्य 10,000 योजन का भूमिभाग समतल है। वहाँ लवण समुद्र की 1000 योजन गहराई है। फिर क्रमशः कम होते-होते धातकी खण्ड द्वीप के समीप पुनः बाल के अग्रभाग जितनी ही गहराई है। इसका पानी नमक जैसा खारा, कटुक व अमनोज्ञ है। यह पद्मवर वेदिका और वनखण्ड से क्रमशः चारों तरफ से घिरा हुआ है। चारों दिशाओं में विजय आदि चार द्वार हैं। जिसका सम्पूर्ण वर्णन जम्बूद्वीप के समान है। **(चित्र क्रमांक 52-53)**

इस लवण समुद्र में उत्सेधांगुल से 500 योजन तक के देहधारी मत्स्य होते हैं। कालोदधि समुद्र में 700 योजन एवं स्वयंभूरमण नामक अन्तिम समुद्र में 1000 योजन के मत्स्य होते हैं। अन्य समुद्रों में जलचर जीव नहीं होते हैं।

1-1 अंतर में 9-9 लड़ियाँ

प्रथम लड़ी में	215
दूसरी लड़ी में	216
तीसरी लड़ी में	217
चौथी लड़ी में	218
पाँचवीं लड़ी में	219
छठी लड़ी में	220
सातवीं लड़ी में	221
आठवीं लड़ी में	222
नौवीं लड़ी में	223
कुल मिलाकर	1971

चारों अंतर में 1971 × 4 = 7884 लघुपाताल कलश

चित्र क्र. 53

चार महापाताल कलश—लवण समुद्र में जम्बूद्वीप और धातकीखंड द्वीप के दोनो किनारों से 95-95 हजार योजन अंदर जाने पर बीच का जो दस हजार योजन का समतल भाग है इसी में महापाताल कलश हैं। ये महापाताल कलश घड़े के आकार के हैं तथा चारों दिशाओं में चार हैं- पूर्व दिशा के तल में '**वलयामुख**', दक्षिण दिशा में '**केयूप**', पश्चिम दिशा में '**यूपक**' एवं उत्तर दिशा में '**ईश्वर**' नामक महाकलश है। कलशों के नीचे का तलभाग 10,000 योजन है। मुख भाग 10,000 योजन चौड़ा है एवं मध्य में ये महाकलश 1,00,000 योजन विस्तार वाले और इतनी ही गहराई वाले हैं। महापाताल कलश के तीन विभाग हैं। ये तीनों ही विभाग 33,333$^{1}/_{3}$ योजन प्रमाण विस्तृत हैं। इनके नीचे के त्रिभाग अर्थात् $^{1}/_{3}$ भाग में वायु भरी हुई है। दूसरे $^{1}/_{3}$ भाग अर्थात् मध्य में जल और वायु भरा हुआ है एवं ऊपर के $^{1}/_{3}$ भाग में मात्र जल भरा हुआ है। इन चार पाताल कलशों में पल्योपम की स्थिति वाले चार महर्द्धिक देव रहते हैं—(1) काल, (2) महाकाल, (3) वेलंब और (4) प्रभंजन।

चित्र क्र. 54

लघुपाताल कलश—इन चारों ही महापाताल कलशों के बीच के चार अंतरों में क्रमशः 1,971-1,971 ऐसे कुल मिलाकर 7,884 लघु पाताल कलशों की नौ-नौ पंक्तियाँ हैं। लघुकलशों की चौड़ाई नीचे मूल भाग में तथा ऊपर मुख भाग में 100 योजन, मध्य भाग में 1,000 योजन है तथा इनकी गहराई 1,000 योजन है। इनकी ठीकरी की मोटाई सर्वत्र एक जैसी 10 योजन की है।

जम्बूद्वीप की ओर प्रथम पंक्ति में 215 लघु कलश हैं। इसके बाद समुद्र की परिधि बढ़ने से आगे-आगे की प्रत्येक पंक्ति में एक-एक कलश की वृद्धि होती है। अतः दूसरी पंक्ति में 216, तीसरी पंक्ति में 217—इस प्रकार नवमी पंक्ति में 223 लघुपाताल कलश हैं। इस प्रकार नौ पंक्ति में कुल मिलाकर 1,971 लघु कलश हैं। ऐसे चार आंतरों के मिलाकर 7,884 लघु पाताल कलश हैं। इन सब लघु कलशों के नीचे भी 1/3 भाग (333$^{1}/_{3}$) में वायु, मध्य के 1/3 भाग में वायु और जल तथा ऊपर के 1/3 भाग में जल है। इन सभी महाकलश व लघुकलशों का मुख लवण समुद्र के समतल भूमि भाग पर समश्रेणी में है और कलश समुद्र के भूमि तल से लगे हुए हैं। **(चित्र क्रमांक 54-55)**

जलशिखा—जम्बूद्वीप और धातकीखण्ड द्वीप के दोनों किनारों से 95,000-95,000 योजन छोड़कर मध्य के 10,000 योजन का पानी स्वभावतः ही सदा 16,000 योजन की ऊँचाई पर ही स्थित रहता है। दीवार की तरह स्थित लवण समुद्र के इस पानी को जलशिखा या दगमाला कहते हैं। इसके कारण लवण समुद्र के दो भाग हो जाते हैं। दगमाला से जम्बूद्वीप की तरफ का भाग आभ्यन्तर लवण समुद्र और धातकीखण्ड की ओर का भाग बाह्य लवण समुद्र कहा जाता है।

जलवृद्धि (भरती व ओट)— पाताल कलशों के नीचे के त्रिभाग की वायु जब क्षुभित होती है, तब वह ऊपर से पानी को ऊर्ध्वमुखी बनाती है। परिणामस्वरूप 16,000 योजन की ऊँचाई वाला दगमाला (जलशिखा) का पानी दो कोस (आधा योजन) अधिक ऊँचा हो जाता है। जलशिखा में जलवृद्धि होने से सम्पूर्ण समुद्र में तरंगें-लहरें उत्पन्न होती हैं, चारों और पानी में खलबलाहट मच जाती है। उसी को 'जलवृद्धि' या 'भरती' कहते हैं। जब पाताल कलशों की वायु शांत हो जाती है, तब पानी भी अपनी मूल स्थिति में आ जाता है। उसी को समुद्र की 'ओट' कहते हैं।

चित्र क्र. 55

जलवृद्धि का समय—प्रायः दिन में दो बार जलशिखा में 'भरती' और 'ओट' अर्थात् वधघट होती है। इसी प्रकार अष्टमी, चौदस, पूनम तथा अमावस्या के दिन भी इसी प्रकार भरती और ओट आती है। असंख्य द्वीप-समुद्रों में से एक लवण समुद्र में ही भरती और ओट आती है। अन्य समुद्रों के जल एक समान रहते हैं।

जलवृद्धि रोकने वाले वेलंधर देव—लवण समुद्र की जलशिखा का पानी जब पाताल कलशों की वायु के क्षुभित होने पर तीव्र वेग से ऊपर उछलता है, तब वह पानी जम्बूद्वीप और धातकीखण्ड द्वीप की जगती की ओर बहने लगता है। उस जलवृद्धि को वेलंधर जाति के नागकुमार देव बड़े-बड़े कड़छों से रोकते हैं। उसमें जम्बूद्वीप की ओर भित्तिरूप आभ्यन्तर वेला को 42,000 देव, धातकी खण्ड तरफ की बाह्य वेला को 72,000 देव और जलशिखा के ऊपर के भाग का अग्रोदक वेला को 60,000 देव—इस प्रकार कुल 1,74,000 वेलंधर जाति के नागकुमार देव वेला के पानी को रोकने का कार्य करते हैं। परिणामतः वह जल जम्बूद्वीप में या धातकी खण्ड द्वीप में नहीं आ पाता। जंबूद्वीप और धातकीखंड के तीर्थंकर आदि उत्तम पुरूषों के प्रभाव से भी ये दोनों द्वीप जलमग्न नहीं होते। '**वेल**' अर्थात् समुद्र की बढ़ती जलधारा को '**धर**' अर्थात् धारण करने वाले '**वेलन्धर देव**' कहलाते हैं, इनका अनुसरण करने वाले देवों को अनुवेलन्धर देव कहा जाता है। **(चित्र क्रमांक 56)**

इनके आवास लवण समुद्र में 42 हजार योजन आगे जाने पर पूर्व दिशा में '**गोस्तूप**' दक्षिण दिशा में '**शिवका**' पश्चिम में '**शंख**' तथा उत्तर में '**मनःशिलाक**' नामक पर्वत पर है। सभी वेलन्धर देवों की आयु एक पल्योपम की है। ये सभी भवनपतिनिकाय के नागकुमार जाति के देव हैं। अनुवेलंधर देवों के निवास लवण समुद्र में चारों विदिशाओं में हैं।

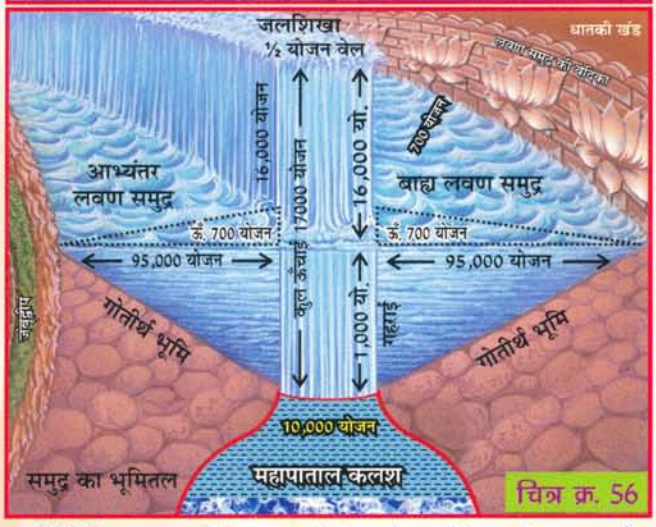

गोतीर्थ—गाय आदि पशुओं के सरोवर में उतरने का मार्ग जो तट पर से क्रमशः नीचे ढलावदार होता है।

लवण समुद्र के अधिष्ठायक देव और उसका निवास—लवण समुद्र का अधिष्ठायक **'सुस्थित'** नामक देव है। इसका आवास **'गौतम द्वीप'** पर है जो जम्बूद्वीप की जगती से 12,000 योजन अंदर लवण समुद्र में है। मेरू पर्वत की अपेक्षा पश्चिम दिशावर्ती जयंतद्वार के सम्मुख स्थित हैं। यह 62 योजन 5 कलाँ ऊँचा तथा 31 योजन 25 कलां विस्तार वाला है। इसकी आयुष्य एक पल्योपम की है। यह देव लवण समुद्र में स्थित सभी पर्वत, द्वीप आदि का अधिपति है।

दृश्यमान समुद्र एवं लवण समुद्र—जैन शास्त्रों के अनुसार दृश्यमान सभी समुद्र चाहे वह **हिंदमहासागर**, हो या **अरब सागर**, **अटलांटिक सागर**, हो या **पेसिफिक सागर**—सभी लवण समुद्र के ही भाग हैं। क्योंकि लवण समुद्र भरतक्षेत्र की अपेक्षा दक्षिण में है। और ये सभी समुद्र भी दक्षिण में ही हैं। दूसरी बात, जैसे लबण समुद्र का पानी खारा माना गया है वैसे ही दृश्यमान सभी समुद्रों का पानी भी खारा है। इसके अतिरिक्त जैन शास्त्रों में वर्णित असंख्य समुद्रों में से केवल लवण समुद्र में ही ज्वार भाटा आता है, अन्य किसी भी समुद्र में नहीं। इसी प्रकार लवण समुद्र के अंश होने से पाँच खण्डों में दिखाई देने वाले उक्त सभी समुद्रों में भी ज्वार-भाटा आता है। इन सब प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि दृश्यमान सभी समुद्र लवण समुद्र के ही अंश हैं और इन्होंने ही पृथ्वी को पाँच भागों में बाँट दिया है।

धातकी खण्ड द्वीप

लवण समुद्र को चारों ओर से वेष्टित करके रहा हुआ चूड़ी के समान गोलाकार धातकीखण्ड द्वीप है। इसका चक्रवाल विष्कम्भ अर्थात् गोलाकार चौड़ाई 4,00,000 योजन है। यह द्वीप अंदर में 15 लाख 81 हजार 139 योजन की परिधि में और बाहर 41 लाख 10 हजार 961 योजन से कुछ न्यून परिधि वाला है। इस द्वीप में **'धातकी'** (आंवला) के अनेक वन हैं और इस द्वीप का अधिष्ठायक भी धातकी वृक्ष पर निवास करता है। अतः इस क्षेत्र को **'धातकी खण्ड'** नाम से पुकारा जाता है। इस द्वीप के दो अधिष्ठायक हैं—**1. सुदर्शन देव व 2. प्रियदर्शन देव।** सुदर्शन देव धातकी वृक्ष पर और प्रियदर्शन देव महाधातकी वृक्ष पर रहता है। ये दोनों वृक्ष शाश्वत है।

धातकीखण्ड के मध्य में 500 योजन ऊँचे, 4 लाख योजन लम्बे और 1,000 योजन चौड़े पूर्व और पश्चिम द्वार से निकले दो इषुकार पर्वत हैं। 'इषु' अर्थात् 'बाण' बाणाकार दीर्घ और सीधे होने से ये दोनों पर्वत '**इषुकार**' कहलाते हैं। इन दोनों पर्वतों के कारण धातकी खण्ड द्वीप दो भागों में विभाजित हो गया है— (1) **पूर्व धातकी खण्ड**, (2) **पश्चिम धातकी खण्ड**। पूर्व में 'विजय' मेरू है और पश्चिम में 'अचल' मेरू है। प्रत्येक मेरू 85-85 हजार योजन ऊँचे हैं, 1,000 योजन गहरे और भूमि पर 9,400 योजन चौड़े है। ऊपर चलकर नन्दनवन में 9,250 योजन, सोमनस वन में 3,800 योजन तथा शिखर पर 1,000 योजन चौड़े हैं।

समभूमि पर स्थित '**भद्रशाल वन**' से 500 योजन ऊपर 'नन्दनवन' है और वहाँ से 55,500 योजन ऊपर '**सोमनस वन**' है और इससे भी 28,000 योजन ऊपर '**पाण्डुक वन**' है।

जम्बूद्वीप और धातकीखण्ड के मेरू पर्वत में अंतर

1. मेरू पर्वत से समभूमि तक 1,000 योजन ऊँचा	मेरू पर्वत मूल से समभूमि तक 1,000 योजन ऊँचा
2. समभूमि से नंदनवन 500 योजन	समभूमि से नंदनवन तक 500 योजन
3. नंदनवन से सोमनस वन 62,500 योजन	नंदनवन से सोमनस वन तक 55,000 योजन
4. सोमनस वन से पंडकवन 36,000 योजन	सोमनस से पंडकवन तक 28,000 योजन
कुल — 1,00,000 योजन	**कुल — 85,000 योजन**

विस्तार में जम्बूद्वीप के मेरूपर्वत का 11 योजन पर 1 योजन विस्तार (चौड़ाई) घटता है और धातकीखण्ड के मेरूपर्वत का 10 योजन पर 1 योजन घटता है।

धातकीखण्ड के प्रत्येक विभाग में क्षेत्र, पर्वत, द्रह नदी, जगती और चार द्वार आदि सभी पदार्थ जम्बूद्वीप के अनुसार ही है, लेकिन प्रत्येक पर्वत की लम्बाई 4 लाख योजन और चौड़ाई जम्बूद्वीप के वर्षधर पर्वतों से दुगुनी है। ऊँचाई जम्बूद्वीप के पर्वतों के समान ही है। गहराई 12 वर्षधर पर्वतों की ऊँचाई से 1/4 भाग है। वर्षधर पर्वत सभी चक्र के आरे के समान है और वर्षक्षेत्र दो आरों के मध्य के अंतर के समान है। अर्थात् पर्वतसम हैं और क्षेत्र विषम है। ये सभी पदार्थ शाश्वत हैं। सभी क्षेत्र लवण समुद्र की ओर संकीर्ण और कालोदधि की ओर विस्तृत हैं। धातकीखंड के महाविदेह में जो अंतरनदी, पर्वत और वनमुख हैं, इन तीनों का विस्तार मात्र जम्बूद्वीप से दुगुना है। जगती तो सब जगह की 12 योजन की ही होती हैं। शेष सारा विस्तार विजय की लम्बाई में आ जाता है। इसी प्रकार मेरू पर्वत का माप भी शाश्वत है, इस कारण शेष लम्बाई भद्रशाल वन में गिनी जाती है। पूर्व धातकीखंड में 68 विजय हैं। 34 विजय पूर्वार्ध और 34 विजय पश्चिमार्ध में है। पूर्वार्ध धातकीखंड महाविदेह की 8, 25, 9 और 24वीं विजय में क्रमशः **सुजात स्वामी**, **स्वयंप्रभ स्वामी**, **ऋषभानन स्वामी** और **अनन्तवीर्य स्वामी**—ये चार विहरमान हैं तथा पश्चिम धातकीखंड की 8, 25, 9 और 24वीं विजय में क्रमशः **सूरप्रभ स्वामी**, **विशालधर स्वामी**, **वज्रधर स्वामी** और **चन्द्रानन स्वामी**—ये चार विहरमान हैं। इस प्रकार धातकीखंड में कुल आठ विहरमान हैं। धातकीखंड में 12 चन्द्र और 12 सूर्य हैं। उसमें 6 चन्द्र और 6 सूर्य धातकीखंड की एक दिशा में पंक्तिबद्ध हैं और 6 चन्द्र, 6 सूर्य उसके सामने की दिशा में पंक्तिबद्ध हैं। सब सूर्य-चन्द्र के परिवार में कुल 336 नक्षत्र, 1056 ग्रह और 8,03,700 कोटाकोटी तारे हैं। **(चित्र क्रमांक 57)**

धातकीखंड

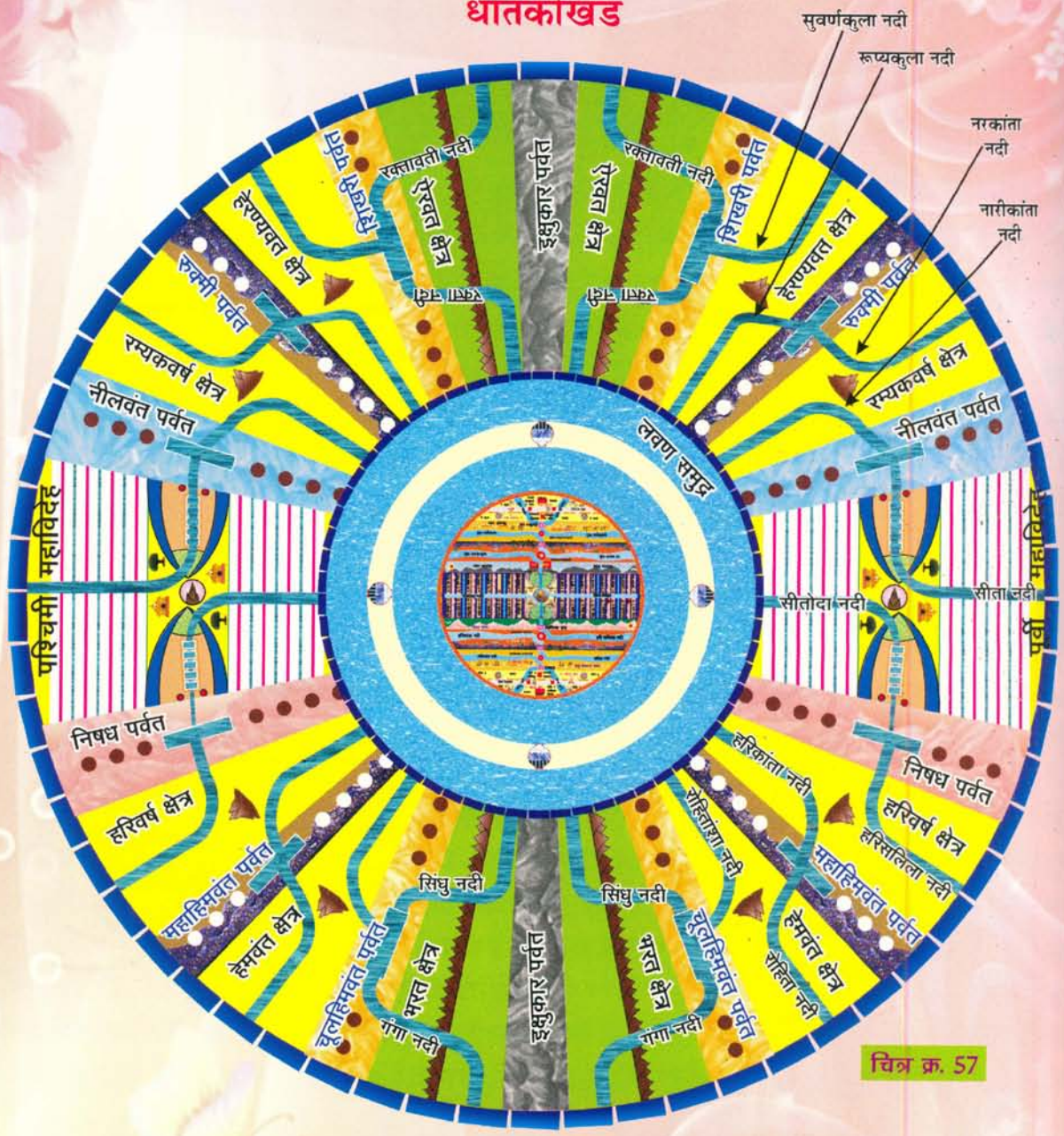

चित्र क्र. 57

❐ कालोदधि समुद्र

धातकीखण्ड द्वीप को चारों ओर से घेरे हुए वलय-चूड़ी के आकार का सभी ओर से 8 लाख योजन विस्तार वाला कालोदधि समुद्र है। इसकी परिधि 91 लाख 70 हजार 605 योजन से कुछ अधिक है। यह एक किनारे से दूसरे किनारे तक एक जैसा अर्थात् एक हजार योजन गहरा है। इसका जल काले रंग का है और पानी का स्वाद साधारण पानी जैसा है। लवण समुद्र की तरह इस समुद्र में न भरती आती है न ओट। ज्वारभाटा भी नहीं आता, न ही इसमें 56 अंतरद्वीप है।

चित्र क्र. 58

कालोदधि समुद्र के भी दो अधिष्ठायक देव हैं। जिनके नाम '**कालं**' एवं '**महाकाल**' है। ये दोनों एक पल्योपम की आयुष्य वाले व्यंतर जाति के महर्द्धिक देव हैं, जो कालोदधि समुद्र में स्थित '**गौतम द्वीप**' में रहते हैं। यहाँ दो गौतम द्वीप व एक सौ आठ सूर्य-चन्द्र के द्वीप हैं। कालोदधि में 42 चन्द्र, 42 सूर्य, 1176 नक्षत्र, 3696 महाग्रह और 28,12,950 कोटाकोटी तारे हैं। **(चित्र क्रमांक 58)**

धातकी खण्ड द्वीप से अंतिम स्वयंभूरमण समुद्र तक दो-दो अधिष्ठायक देव हैं। कालोदधि के बाद जो नाम द्वीप के हैं, वे ही नाम समुद्र के हैं। ऐसे असंख्यात द्वीप व समुद्र के नाम एक सदृश हैं।

❑ पुष्कर द्वीप

कालोदधि समुद्र को चारों ओर से घेरे हुए चूड़ी के आकार का ही वलयाकार तथा सभी ओर से 16 लाख योजन विस्तार वाला '**पुष्कर द्वीप**' है। इसकी परिधि 1,92,89,894 योजन की है। इसके चारों ओर एक

पद्मवरवेदिका और एक वनखण्ड है तथा विजय, वैजयंत, जयंत और अपराजित—ये चार द्वार क्रमशः पूर्वादि चार दिशा में हैं। पुष्कर द्वीप में पद्मवृक्षों, पद्मवनों की अधिकता है, अतः इस द्वीप को पुष्कर द्वीप कहते हैं। यहाँ पद्मवृक्ष पर 'पद्मदेव' और महापद्मवृक्ष पर 'पुण्डरीक देव' सपरिवार निवास करता है, उसकी एक पल्योपम की स्थिति है। महाऋद्धिशाली ये दोनों देव पुष्करद्वीप के अधिष्ठायक हैं।

मानुषोत्तर पर्वत—पुष्करवर द्वीप के ठीक मध्य भाग में चूड़ी के समान वलयाकार मानुषोत्तर पर्वत है, वह 1,721 योजन ऊँचा, 430 योजन व एक गाऊ पृथ्वी में गहरा, मूल में 1,022 योजन चौड़ा, मध्य में 723 योजन और शिखर पर 424 योजन का चौड़ा है। मनुष्य क्षेत्र की सीमा बाँधने वाला या मनुष्य क्षेत्र के अंत में होने के कारण इसे 'मानुषोत्तर पर्वत' कहते हैं। यह सिंहनिषादी आकार का सुवर्णमय है। इस पर्वत के कारण पुष्करद्वीप के दो विभाग हो गये हैं—1. आभ्यन्तर पुष्करार्द्ध, 2. बाह्य पुष्करार्द्ध।

(1) आभ्यन्तर पुष्करार्द्ध द्वीप—मानुषोत्तर पर्वत के अंदर के विभाग को 'आभ्यन्तर पुष्करार्द्ध द्वीप' कहते हैं। आभ्यन्तर पुष्करार्द्ध द्वीप का चक्रवाल विष्कम्भ आठ लाख योजन का है। उसकी परिधि 1,42,30,249 योजन है। धातकी खण्ड द्वीप के समान ही इसमें क्षेत्र, पहाड़ व नदियों की संख्या है। पुष्करार्ध के प्रत्येक क्षेत्र की लम्बाई 8 लाख योजन और चौड़ाई विषम होने से अलग-अलग हैं। प्रारम्भ में चौड़ाई कम है और क्रमशः बढ़ती हुई अंत में अधिक हैं प्रत्येक पर्वत की लम्बाई भी 8 लाख योजन है और चौड़ाई धातकीखंड के वर्षधर पर्वतों की अपेक्षा दुगुनी है। ऊँचाई जम्बूद्वीप के पर्वतों के समान है। गहराई ऊँचाई से 1/4 भाग है।

इस द्वीप के मध्य में भी दो इषुकार पर्वत है, जिनसे इसके भी दो विभाग हो गये हैं—**(1) पूर्व पुष्करार्द्ध द्वीप** और **(2) पश्चिम पुष्करार्द्ध द्वीप**। धातकी खण्ड जैसे और उतने ही ऊँचे तथा विस्तार वाले दो मेरू पूर्व में मन्दिर और पश्चिम में विद्युन्माली आदि समस्त शाश्वत पदार्थ पुष्करार्द्ध द्वीप में भी है। यहाँ भी धातकीखंड के समान पूर्व पुष्करार्द्ध की 8, 25, 9 और 24वीं विजय में क्रमशः **श्री चन्द्रबाहु स्वामी**, **भुजंगस्वामी**, **ईश्वर स्वामी** और **नेमप्रभु स्वामी** तथा पश्चिम पुष्करार्द्ध द्वीप की 8, 25, 9 और 24वीं विजय में क्रम से **श्री वीरसेन स्वामी**, **महाभद्र स्वामी**, **देवयश स्वामी** और **अजितवीर्य स्वामी**—इस प्रकार 8 विहरमान विचरण कर रहे है। आभ्यंतर पुष्करार्द्ध द्वीप में 72 चन्द्र और 72 सूर्य, 6,336 महाग्रह, 2016 नक्षत्र और 48,22,200 कोटाकोटि तारे हैं।

अढ़ाई द्वीप—असंख्य द्वीप-समुद्रों में से मध्य के आभ्यन्तर पुष्करार्द्ध द्वीप तक अढ़ाई द्वीप और दो समुद्र प्रमाण क्षेत्र को ही अढ़ाई द्वीप या मनुष्य क्षेत्र कहते हैं। एक लाख योजन का **जम्बूद्वीप**, दोनों और 4 लाख योजन का लवण समुद्र, दोनों ओर 8 लाख योजन का धातकी खण्ड द्वीप, दोनों ओर 16 लाख योजन का कालोदधि समुद्र तथा दोनों ओर 16 लाख योजन का पुष्करार्ध द्वीप इस प्रकार 1 + 4 + 8 + 16 + 16 = 45 लाख योजन का अढ़ाई द्वीप है। इन अढ़ाई द्वीपों में ही 101 क्षेत्रों के मनुष्यों का निवास है। यह अढ़ाई द्वीप मनुष्यों का स्वक्षेत्र है। इसकी परिधि आभ्यन्तर पुष्करार्द्ध द्वीप के समान अर्थात् 1,42,30,249 है।

अढ़ाई द्वीप में मनुष्यों की जघन्य और उत्कृष्ट संख्या 29 अंक प्रमाण कही है। अर्थात् जघन्य एक-एक के अंक से 29 और उत्कृष्ट 7,92,28,162, 51,42,643, 37,59,351, 39,50,336 = 29 अंक प्रमाण मनुष्य रहते हैं। कहा जाता है कि अजितनाथ भगवान के समय मनुष्यों की 29 अंक प्रमाण उत्कृष्ट संख्या थी, संभवतः इस उत्कृष्ट गणना में स्त्री की योनि से उत्पन्न 9 लाख संज्ञी जीवों को भी मिला दिया है।

अढ़ाई द्वीप

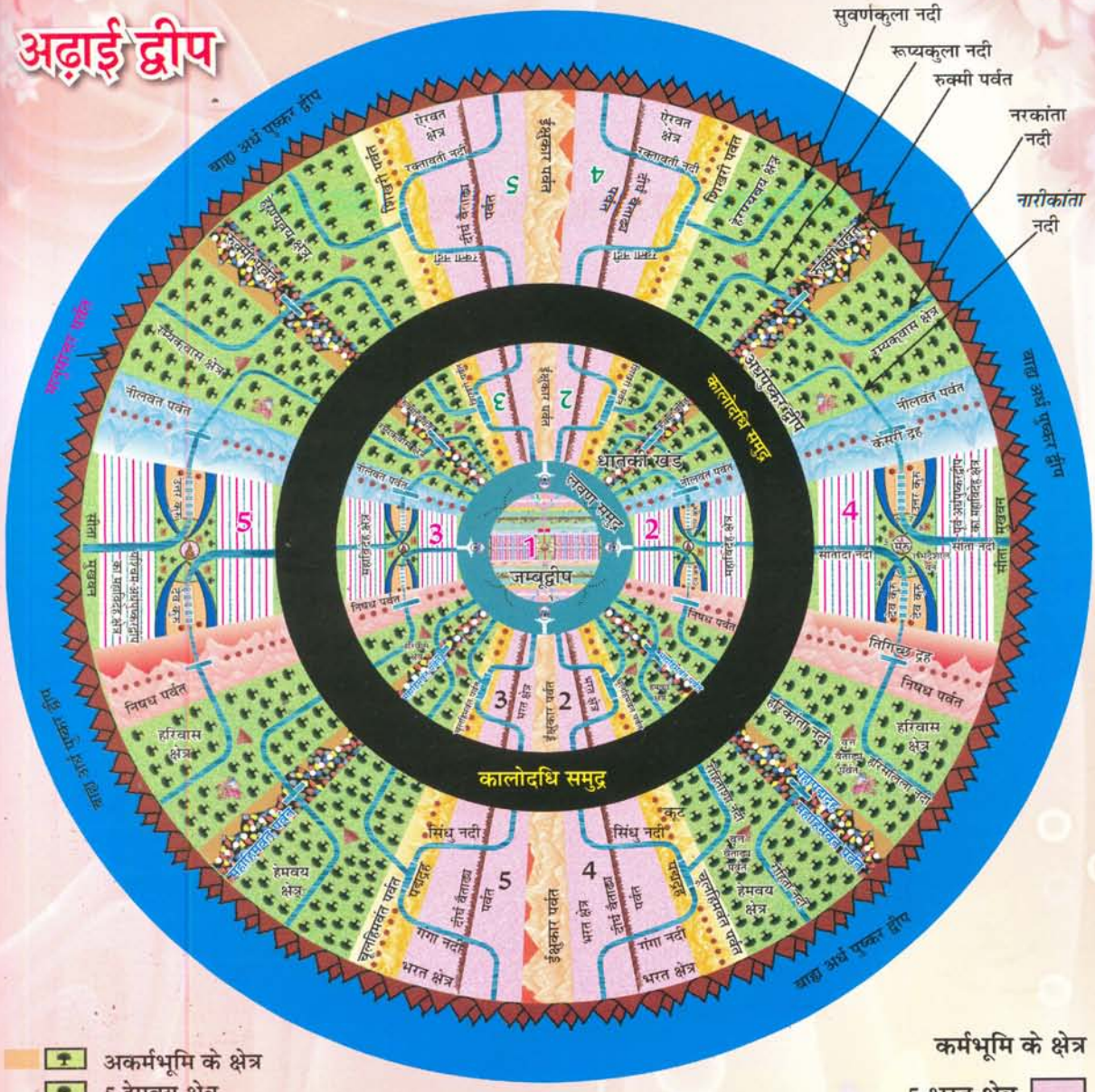

अकर्मभूमि के क्षेत्र
5 हेमवय क्षेत्र
5 हेरण्यवय क्षेत्र
5 हरिवास क्षेत्र
5 रम्यक्वास क्षेत्र
5 देवकुरु
5 उत्तरकुरु

कर्मभूमि के क्षेत्र
5 भरत क्षेत्र
5 ऐरवत क्षेत्र
5 महाविदेह क्षेत्र

चित्र क्र. 59

अढ़ाई द्वीप में हाथी और सिंह की आयुष्य मनुष्य की आयु के बराबर होती है। घोड़े की आयु मनुष्य की आयु का चौथा भाग, बकरे-मेंढ़े की आयु आठवाँ भाग, गाय, भैंस, ऊँट, गधे की आयु पाँचवाँ भाग और कुत्ते की आयु दसवाँ भाग समझना चाहिए। **(चित्र क्रमांक 59)**

अढ़ाई द्वीप में तीर्थंकरों की संख्या

अढ़ाई द्वीप में पाँच भरत एवं पाँच ऐरावत क्षेत्र में सदाकाल तीर्थंकर नहीं होते, किन्तु महाविदेह की 160 ही विजय तीर्थंकरों की उत्पत्ति के योग्य है। अर्थात् सभी विजयों में तीर्थंकर सर्वकाल उत्पन्न हो सकते हैं। तथापि सभी विजयों में तीर्थंकर वर्तमान रहें यह आवश्यक नहीं और सभी विजय खाली रहे यह भी सम्भव नहीं। कम से कम 20 और अधिक से अधिक 160 तीर्थंकर, नित्य ही महाविदेह में विचरण करते हैं। एक विजय में एक ही तीर्थंकर हो सकता है, अधिक नहीं।

महाविदेह में जब कोई विहरमान तीर्थंकर रूप में होता है, उस समय अन्य कोई विहरमान बनने वाली आत्मा श्रमण पर्याय में, कोई राज्यावस्था में, कोई बाल्यावस्था में अन्य-अन्य विजयों में होती है। एक तीर्थंकर की 84 लाख पूर्व की आयु में उसके पीछे एक-एक लाख पूर्व के अन्तराल में 83 विहरमान होते हैं। इस संख्या को 20 से गुणित करने पर (83 × 20 =) 1,660 विहरमान होते हैं। उनमें वर्तमान 20 तीर्थंकर मिलाने पर 1,680 की जघन्य संख्या आती है। और जब महाविदेह के उत्कृष्ट 160 तीर्थंकरों को 83 से गुणित किया जाए तो (160 × 83 =) 13,280; उनमें 160 वर्तमान विहरमान मिलाने पर 13,440 तीर्थंकर होते हैं। ये सभी तीर्थंकर एक-दूसरे से मिलते नहीं, इतनी क्षेत्रीय दूरी सभी में होती है। भरत-ऐरावत क्षेत्र में काल परिवर्तन के कारण न तो सदा तीर्थंकर होते हैं, न ही उन सभी का एक जैसा अन्तर है। यहाँ काल के प्रभाव से शासन विच्छेद की स्थितियाँ आती रहती हैं, किन्तु महाविदेह में कभी शासन विच्छेद नहीं होता।

अढ़ाई द्वीप के शाश्वत पदार्थ

क्रम	नाम	जम्बूद्वीप में	धातकीखंड में	अर्द्धपुष्कर द्वीप में	कुल
1.	वर्षधर क्षेत्र	7	14	14	35
2.	वर्षधर पर्वत	7	14	14	35
3.	पर्वत पर कूट	467	942	962	2371
4.	अभिषेक शिलाएँ	4	8	8	20
5.	जन्माभिषेक के सिंहासन	6	12	12	30
6.	ऋषभकूट पर्वत	34	68	68	170
7.	कोटिशीला (वासुदेव उठाते हैं)	34	68	68	170
8.	वैताढ्य पर्वत की गुफाएँ	68	136	136	340
9.	वैताढ्य पर्वत के बिल	144	288	288	720
10.	मागध आदि तीर्थ	102	204	204	510

11.	विजय क्षेत्रों के खण्ड	(34 × 6=) 204	408	408	1020
12.	विजय क्षेत्रों-के देश	10,88,000	21,76,000	21,76,000	54,40,000
13.	विजय क्षेत्रों के आर्य देश	(34 × 25½) 867	1734	1734	4334
14.	वैताढ्य पर्वत की श्रेणियाँ	136	272	272	680
15.	द्रह	16	32	32	80
16.	महानदियाँ	14	28	28	70
17.	प्रपातकुण्ड	14	28	28	70
18.	नदियों का परिवार	14,56,000	29,12,000	29,12,000	72,80,000
19.	पृथ्वीकायमय महावृक्ष	2	4	4	10
20.	प्रत्येक वृक्ष के वलय वृक्ष	1,20,50,120	2,41,00,240	4,82,00,480	31,33,03,120
21.	सीता-सीतोदा के मुखवन	4	8	8	20
22.	मेरू पर्वत के वन	4	8	8	20
23.	युगलिक क्षेत्र	6	12	12	30
24.	कर्मभूमि क्षेत्र	3	6	6	15
25.	अन्तर्द्वीप	56	—	—	56

अढ़ाई द्वीप के बाहर की स्थिति

तिर्च्छालोक में अढ़ाई द्वीप के बाद असंख्याता द्वीप और असंख्याता समुद्र हैं। वहाँ केवल तिर्यंच गति के ही जीव हैं, वहाँ मनुष्य नहीं हैं। मनुष्य क्षेत्र के बाहर मनुष्यों का जनम-मरण नहीं होता है। किसी विशेष विद्या या देवीय शक्ति के प्रभाव से मनुष्य अढ़ाई द्वीप के बाहर जा तो सकता है, किंतु वहाँ जन्म-मरण नहीं करता। यहाँ तक कि किसी भी स्त्री, चाहे वह मानुषी हो या विद्याधरी; उसके गर्भ में भी कोई जीव उत्पन्न नहीं हो सकता। किसी का आयुष्य पूर्ण होने आया हो तो क्षेत्र का अधिष्ठायक देव उसे उठाकर अढ़ाईद्वीप में छोड़ देता है। इसका कारण वहाँ का क्षेत्र-स्वभाव है।

मनुष्य क्षेत्र के बाहर भरत आदि क्षेत्र, गाँव, नगर, धन-धान्य आदि निधि, गंगा, सिंधु आदि शाश्वती महानदियाँ, पद्मादि द्रह और वर्षधर आदि पर्वत भी नहीं होते, किंतु अशाश्वती नदियाँ या सरोवर हो सकते हैं। पुष्करावर्त मेघ गर्जना आदि भी नहीं होती। असुरादि देवों द्वारा कभी-कभी माया के कारण मेघ गर्जना या बिजली का चमकना हो सकता हैं। पर, वहाँ बादर अग्नि का अभाव है। काल, समय, आवली आदि व्यवहार भी वहाँ नही है, क्योंकि अढ़ाई द्वीप के बाद सूर्य और चंद्र भ्रमण नहीं करते, जहाँ सूर्य है वहाँ सदा दिन ही रहता है एवं जहाँ चंद्र हैं वहाँ सदा पूनम की चाँदनी जैसा प्रकाश रहता है। वहाँ चन्द्रग्रहण या सूर्यग्रहण भी नहीं होता।

अढाई द्वीप का पूर्व से पश्चिम तक 45 लाख योजन का माप

1.	पुष्करार्ध द्वीप के 2 वनमुख प्रत्येक 11,688 यो. के × 2	= 23,376
2.	पुष्करार्ध द्वीप के 32 विजय, 1,979 1/4 यो. के × 32	= 6,33,416
3.	पुष्करार्ध द्वीप के 16 वक्षस्कार प्रत्येक 2,000 यो. के × 16	= 32,000
4.	पुष्करार्ध द्वीप के 12 अंतरनदी, प्रत्येक 500 यो. के × 12	= 6,000
5.	पुष्करार्ध द्वीप के 2 मेरू के 2 वन, प्रत्येक 4,40,916 यो. के × 2	= 8,81,832
6.	पुष्करार्ध द्वीप के अंदर के 2 वनमुख, प्रत्येक 11,676 यो. के × 2	= 23,352
7.	अढ़ाई द्वीप में दो द्वीप दो समुद्र की 78 जगती[1], प्रत्येक 12 यो. के × 8	= 96
8.	कालोदधि समुद्र दोनो ओर 8-8 लाख यो.	= 16,00,000
9.	धातकी खंड के दोनों ओर के 4 वनमुख, प्रत्येक 11,664 यो. × 4	= 23328
10.	धातकी खंड की 32 विजय, प्रत्येक 9603 3/8 यो. × 32	= 307308
11.	धातकी खंड के 16 वक्षस्कार, प्रत्येक 1000 यो. × 16	= 16000
12.	धातकी खंड के 12 अंतरनदी, प्रत्येक 250 यो. ग 12	= 3000
13.	धातकी खंड के 2 मेरू के भद्रशालवन, प्रत्येक 2,25,158 यो. × 2	= 450316
14.	लवणसमुद्र दोनो ओर 2-2 लाख योजन	= 4,00,000
15.	जंबूद्वीप की दोनो ओर की जगती 2910 यो. × 2	= 5,820
16.	जंबूद्वीप के महाविदेह की 16 विजय, प्रत्येक कुछ कम 2213 यो. × 16	= 35,406
17.	जंबूद्वीप के 8 वक्षस्कार, प्रत्येक 500 यो. × 8	= 4,000
18.	जंबूद्वीप की 6 अंतरनदी, प्रत्येक 125 यो. × 6	= 750
19.	जंबूद्वीप का मेरू और भद्रशालवन कुल	= 54,000
	इस प्रकार पूर्व-पश्चिम अढ़ाई द्वीप की कुल लम्बाई	= 45,00,000 योजन

अढाई द्वीप का दक्षिण से उत्तर तक 45 लाख योजन का माप

1.	पुष्करार्ध द्वीप के दोनों ओर के 2 इक्षुकार पर्वत, प्रत्येक 8 लाख योजन के × 2	= 16,00,000 योजन
2.	कालोदधि समुद्र दोनों ओर 8-8 लाख योजन	= 16,00,000 योजन
3.	धातकीखंड के 2 इक्षुकार पर्वत, प्रत्येक 4 लाख योजन × 2	= 8,00,000 योजन
4.	लवण समुद्र के दोनो ओर के 2-2 लाख योजन	= 4,00,000 योजन
5.	दक्षिण भरतार्द्ध और दक्षिण ऐरावतार्द्ध, प्रत्येक 229 3/19 योजन × 2	= 458 6/19 योजन
6.	वैताढ्य पर्वत (भरत क्षेत्र + ऐरावत क्षेत्र) प्रत्येक 50 योजन × 2	= 100 योजन
7.	अयोध्या नगर की चौड़ाई (द. भरतार्द्ध + उ. ऐरावतार्द्ध) प्रत्येक 9 योजन × 2	= 18 योजन
8.	उत्तर भरतार्द्ध और उत्तर ऐरावतार्द्ध प्रत्येक 238 3/19 योजन × 2	= 476 6/19 योजन

1. पुष्करार्ध द्वीप की जगती पुष्करद्वीप पूर्ण होने पर आती है, अत: उसकी गणना यहाँ नहीं की।

9.	चुल्लहेमवन्त पर्वत तथा शिखरी पर्वत की चौड़ाई प्रत्येक $1052^{12}/_{19} \times 2$	$= 2104^{24}/_{19}$ योजन
10.	हेमवन्त क्षेत्र तथा हेरण्यवत क्षेत्र की चौड़ाई प्रत्येक $2105^{5}/_{12} \times 2$	$= 4210^{10}/_{19}$ योजन
11.	महाहिमवंत तथा रूक्मि पर्वत की दक्षिणोत्तर चौड़ाई प्रत्येक $4210^{10}/_{19} \times 2$	$= 8420^{20}/_{19}$ योजन
12.	हरिवर्ष क्षेत्र व रम्यक क्षेत्र की दक्षिणोत्तर चौड़ाई प्रत्येक $8421^{1}/_{19} \times 2$	$= 16842^{2}/_{19}$ योजन
13.	निषध पर्वत तथा नीलवंत पर्वत की चौड़ाई प्रत्येक $16,842^{2}/_{19} \times 2$	$= 33684^{4}/_{19}$ योजन
14.	देवकुरू क्षेत्र तथा उत्तरकुरू क्षेत्र की दक्षिणोत्तर चौड़ाई $11842^{2}/_{19} \times 2$	$= 23684^{4}/_{19}$ योजन
15.	मेरूपर्वत का दक्षिणोत्तर विष्कम्भ	= 10,000 योजन
	दक्षिणोत्तर की कुल चौड़ाई	= 45,00,000 योजन

अढ़ाई द्वीप के बाहर द्वीप-समुद्र

पुष्कर द्वीप के बाद 32 लाख योजन का पुष्कर समुद्र, पश्चात् दुगुने-दुगुने विस्तार वाले वरुणवर द्वीप-वरुणवर समुद्र, क्षीरवर द्वीप-क्षीरवर समुद्र, घृतवर द्वीप-घृतवर समुद्र, क्षोदवर द्वीप-क्षोदवर समुद्र आदि असंख्य द्वीप और समुद्र हैं।

इनमें पुष्कर समुद्र का पानी मीठा है तथा पाचक भी। वरूण समुद्र का जल मदिरा जैसा है। 'क्षीरसमुद्र' का जल चक्रवर्ती के दूध जैसा स्वादिष्ट है। इस जल से देव मेरूपर्वत पर तीर्थंकरों का अभिषेक करते हैं। 'घृतवरसमुद्र' का जल गाय के घी जैसा है। मन:शील सागर और स्वयंभूरमण समुद्र का जल सामान्य है तथा 'इक्षुवर समुद्र' एवं शेष असंख्यात समुद्रों का पानी इक्षु के रस जैसा स्वादिष्ट है।

नन्दीश्वर द्वीप

अढ़ाई द्वीप के बाहर मध्यलोक का यह आठवाँ द्वीप है। यह द्वीप अत्यंत रमणीय व मनोहर है। इसकी दिव्य-भव्य प्राकृतिक संरचना वैभव सम्पन्न होने से इसका नाम **'नंदीश्वर द्वीप'** रखा। इस द्वीप में कार्तिक, फाल्गुन और आषाढ़ मास के अंतिम आठ दिनों में (तीनों चौमासी के समय) तथा तीर्थंकरों के पंच कल्याणक आदि शुभ दिनों में देवता **अष्टाह्निका** (अठाई) महोत्सव करते हैं।

इस द्वीप की चौड़ाई 163 करोड़ 84 लाख योजन है। इसमें चारों दिशा के मध्य में 84 हजार योजन ऊँचे श्यामवर्ण वाले चार **'अंजनगिरि पर्वत'** है। अंजनगिरि 'पर्वत' के चारों ओर एक-एक लाख योजन के अंतर पर 1,00,000 योजन लम्बी-चौड़ी तथा दस योजन गहरी $4 \times 4 = 16$ बावड़ी है। इन सब के मध्य भाग पर उलटे प्याले के आकार वाले श्वेतवर्णीय **'दधिमुख'** नामक 16 पर्वत हैं, जो 64 हजार योजन ऊँचे और 1 हजार योजन गहरे तथा 10,000 योजन चौड़े हैं। प्रत्येक दधिमुख पर्वत पर एक सिद्धायतन है, जो 100 योजन लम्बे, 50 योजन चौड़े और 72 योजन ऊँचे है। द्वीप के मध्य भाग में चारों विदिशा में चार **'रतिकर पर्वत'** हैं। वे 1,000 योजन ऊँचे 100 कोस गहरे और 10,000 योजन लम्बे-चौड़े पलंग संस्थान वाले हैं। इस तरह एक दिशा में 1 अंजनगिरि 4 दधिमुख पर्वत और 8 रतिकर पर्वत हैं।

चार विदिशा के रतिकर पर्वत से लाख योजन दूर, लाख योजन प्रमाण वाली सौधर्मेन्द्र एवं ईशानेन्द्र की 8-8 अग्रमहिषियों की 8-8 राजधानी है। इस प्रकार 16 राजधानियाँ हैं।

नंदीश्वर द्वीप

चार दिशा में - 13 x 4 = 52 पर्वत हैं। प्रत्येक पर्वत के ऊपर एक-एक सिद्धायतन है। इसलिये नन्दीश्वर द्वीप में 52 सिद्धायतन हैं। ऐसी दिव्य रचना जगत के किसी भी द्वीप में नहीं है।

चित्र क्र. 60

जब तीर्थंकर भगवान के कल्याणक होते हैं तब **सौधर्मेन्द्र** आदि इन्द्र '**पालक**' नामक विमान जो एक लाख योजन प्रमाण है। उसमें बैठकर '**नंदीश्वर द्वीप**' पर उतरते हैं और यहाँ से अपने-अपने विमानों का संक्षेप कर भरत आदि क्षेत्रों में जाते हैं। **(चित्र क्रमांक 60)**

कुण्डल द्वीप

यह 11वाँ द्वीप है इसके मध्य भाग में वलयाकार मानुषोत्तर पर्वत की तरह ही सिंह निषादी आकार का '**कुण्डलगिरि पर्वत**' है। इसके दक्षिण दिशा की ओर सौधर्मेन्द्र के चार लोकपाल—**सोम, यम, वैश्रवण एवं वरूण** तथा उत्तर दिशा की ओर ईशानेन्द्र के चार लोकपालों की राजधानियाँ हैं। **(चित्र क्रमांक 61)**

रूचक द्वीप

जीवाभिगम सूत्र में पन्द्रहवें द्वीप के रूप में इसका उल्लेख है। रूचक द्वीप के मध्य भाग में मानुषोत्तर पर्वत के समान वलयाकार '**रूचकगिरि**' नामक पर्वत है। यह 84,000 योजन ऊँचा, मूल में 10,022 योजन, मध्य में 7023 योजन और शिखर पर 4024 योजन चौड़ा है। रूचकगिरि पर्वत के 40 कूट (शिखर) हैं। एक-एक कूट पर एक-एक दिशाकुमारी का भव्य प्रसाद है। अतः 40 कूट पर 40 प्रासादों में 40 दिशाकुमारियाँ निवास करती हैं। इस रूचकद्वीप तक जंघाचारण मुनि जाते हैं, इसके आगे कोई भी मनुष्य नहीं जा सकता। रूचक द्वीप से पूर्व के द्वीप-समुद्रों का विष्कम्भ संख्यात योजन है। रूचक द्वीप व उसके बाद स्वयम्भूरमण समुद्र तक के द्वीप-समुद्र असंख्यात योजन विष्कम्भ वाले हैं। **(चित्र क्रमांक 62)**

कुण्डल द्वीप

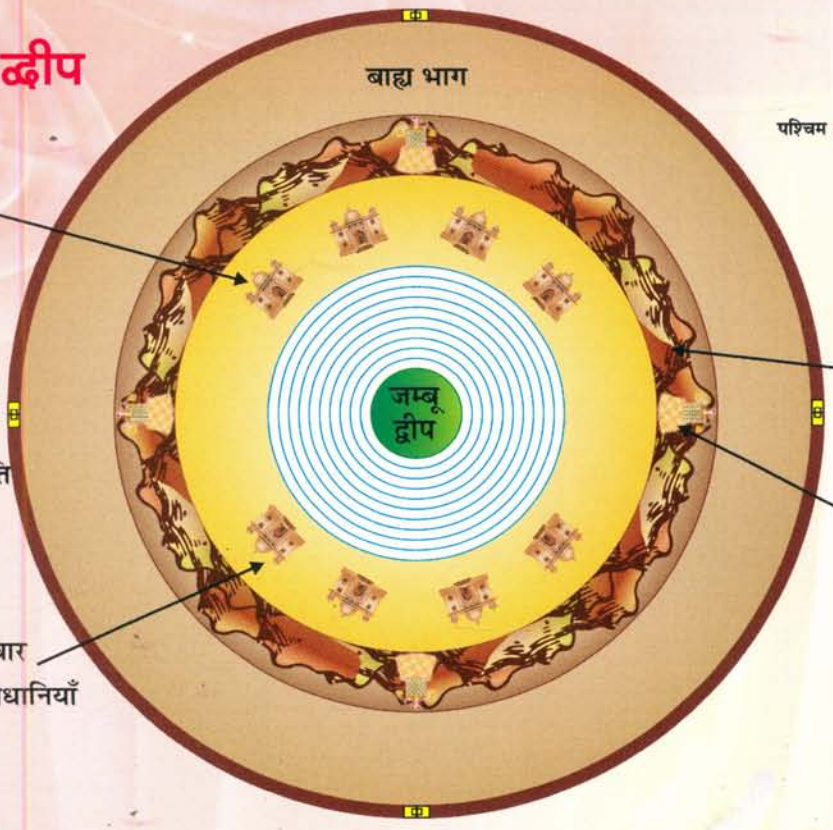

चित्र क्र. 61

रूचक द्वीप पर ४० दिशाकुमारियों के आवास

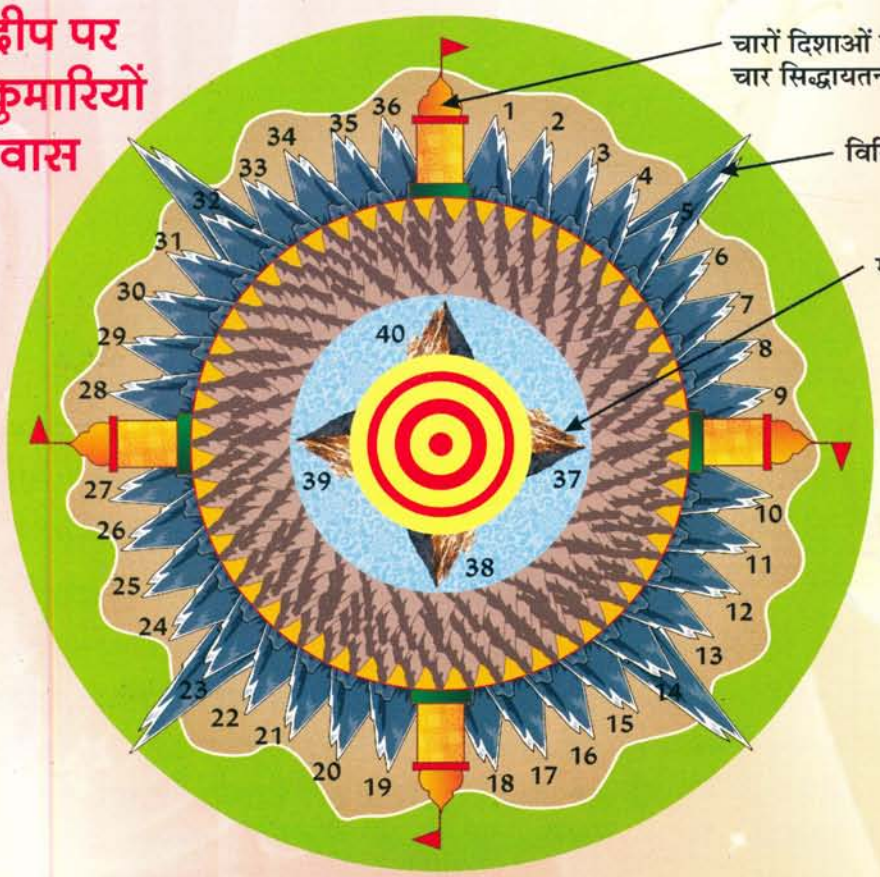

चित्र क्र. 62

मध्यलोकवर्ती द्वीप-समुद्र की स्थापना					
क्रम	द्वीप	समुद्र	क्रम	द्वीप	समुद्र
1.	जंबूद्वीप	– लवण समुद्र	17.	रूचकवरावभास द्वीप	– रूचकवरावभास समुद्र
2.	धातकीखंड द्वीप	– कालोदधि समुद्र	18.	शंखद्वीप	– शंख समुद्र
3.	पुष्करवर द्वीप	– पुष्करवर समुद्र,	19.	शंखवर द्वीप	– शंखवर समुद्र
4.	वारूणीवर द्वीप	– वारूणीवर समुद्र	20.	शंखरावभास द्वीप	– शंखरावभास समुद्र
5.	क्षीरद्वीप	– क्षीरसमुद्र	21.	अरूणोपपात द्वीप	– अरूणोपपात समुद्र
6.	घृत द्वीप	– घृत समुद्र	22.	अरूणोपपातवर द्वीप	– अरूणोपपातवरावभास समुद्र
7.	इक्षुवरद्वीप	– इक्षुवर समुद्र	23.	अरूणोपपातवरावभास द्वीप	– अरूणोपपातवरावभास समुद्र
8.	नंदीश्वर द्वीप	– नंदीश्वर समुद्र	24.	भुजंग द्वीप	– भुजंग समुद्र
9.	अरूण द्वीप	– अरूण समुद्र	25.	भुजंगवर द्वीप	– भुजंगवर समुद्र
10.	अरूणवर द्वीप	– अरूणवर समुद्र	26.	भुजंगवरावभास द्वीप	– भुजंगवरावभास समुद्र
11.	अरूणवरावभास द्वीप	– अरूणवरावभास समुद्र	27.	कुश द्वीप	– कुश समुद्र
12.	कुंडल द्वीप	– कुंडल समुद्र	28.	कुशवर द्वीप	– कुशवर समुद्र
13.	कुंडलवरद्वीप	– कुंडलवर समुद्र	29.	कुशवरावभास द्वीप	– कुशवरावभास समुद्र
14.	कुंडलवरावभास द्वीप	– कुंडलवरावभास समुद्र	30.	क्रौंच द्वीप	– क्रौंच समुद्र
15.	रूचक द्वीप	– रूचक समुद्र	31.	क्रौंचवर द्वीप	– क्रौंचवर समुद्र
16.	रूचकवर द्वीप	– रूचकवर समुद्र	32.	क्रौंचवरावभास द्वीप	– क्रौंचवरावभास समुद्र

यहाँ से प्रत्येक शुभ वस्तु के नाम वाले और सभी त्रिप्रत्यावतारी अर्थात् द्वीप के नाम तथा उसके आगे 'वर' और 'वरावभास' जोड़कर बनने वाले असंख्यात द्वीप व असंख्यात समुद्र हैं। इन असंख्य द्वीप-समुद्र में सबसे अंतिम त्रिप्रत्यवतार '**सूर्य**' नाम का द्वीप व समुद्र है, जैसे—**(1) सूर्यद्वीप, सूर्यसमुद्र, (2) सूर्यवरद्वीप, सूर्यवर समुद्र, (3) सूर्यवरावभास द्वीप, सूर्यवरावभास समुद्र।**

अंतिम प्रत्येक नाम वाले द्वीप समुद्र इस प्रकार हैं—**(1) देवद्वीप-देव समुद्र, (2) नागद्वीप-नाग समुद्र, (3) यक्षद्वीप-यक्ष समुद्र, (4) भूतद्वीप-भूत समुद्र, (5) स्वयंभूरमण द्वीप और अंत में पूर्व वर्णित असंख्य द्वीप समुद्र समा जाय इतना विस्तृत आधे राजू के घेरे में स्वयंभूरमण समुद्र** है। अर्थात् स्वयंभूरमण समुद्र के पूर्व दिशा की वेदिका से पश्चिम दिशा की वेदिका तक का अंतर एक राजू प्रमाण है। इस समुद्र की जगती से 12 योजन दूर चारों ओर अलोक है। **(चित्र क्रमांक 63)**

अरूणोदक समुद्र का विकार–तमस्काय

तमस्काय का अर्थ है—अंधकार वाले पुद्गलों का समूह। गाढ़ अंधकार की राशि को तमस्काय कहते हैं। यह बादर पृथ्वीकाय या अग्निकाय रूप नहीं हैं, क्योंकि पृथ्वीकाय तो रत्नप्रभादि आठों पृथ्वियों, पर्वतों और विमानों में ही होता है तथा कोई पृथ्वी (रत्न आदि) प्रकाशक होती है, कोई अप्रकाशक। अग्निकाय केवल मनुष्यलोक में ही है। किन्तु अप्काय सम्पूर्ण अप्रकाशक ही होता है। अत: अप्काय व तमस्काय का एक

असंख्य द्वीप-समुद्र

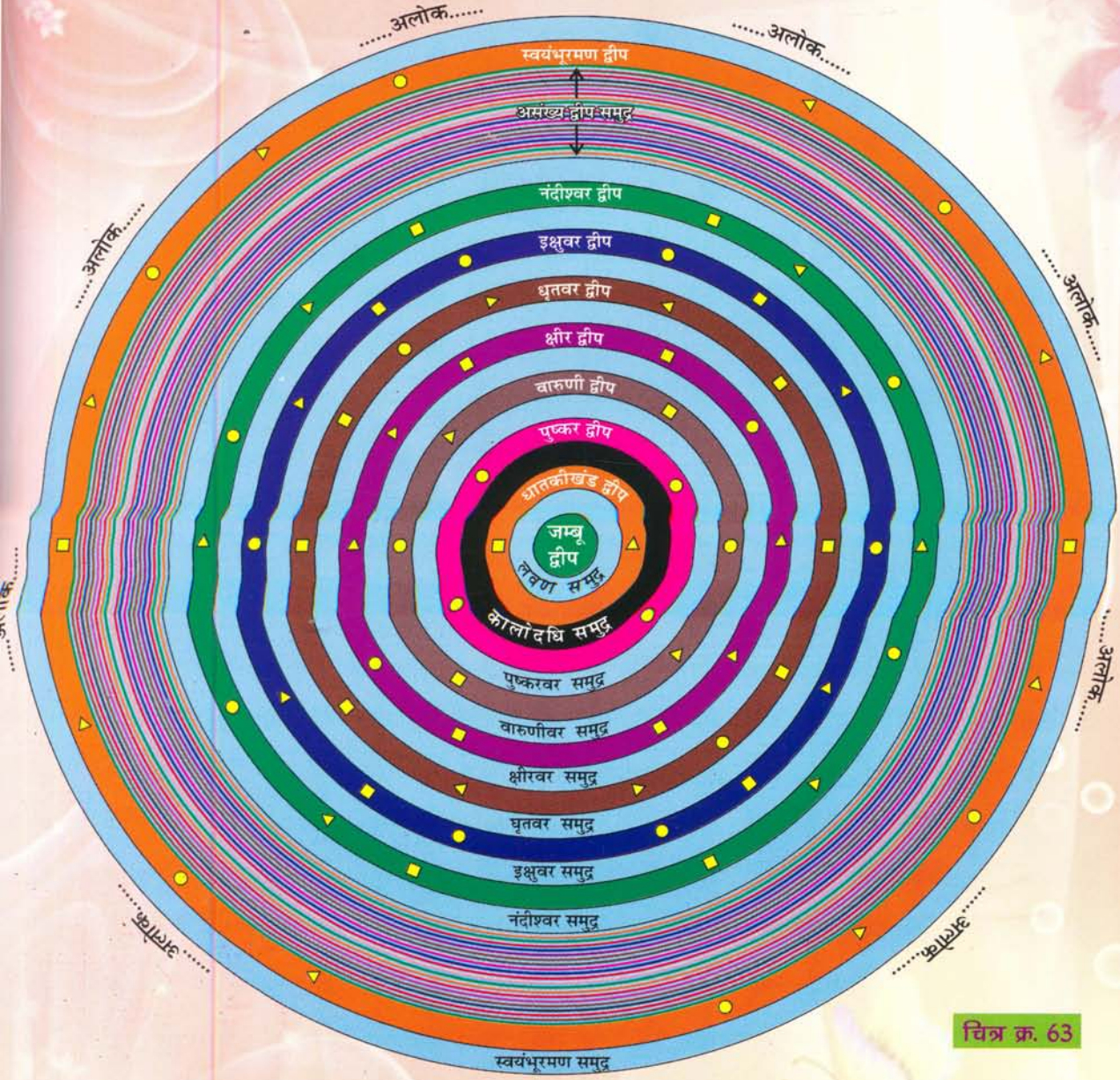

चित्र क्र. 63

सरीखा स्वभाव होने के कारण तमस्काय बादर अप्काय रूप माना गया है। यह पानी का एक विशेष प्रकार का परिणमन है। इसमें बादर अप्काय, बादर वनस्पतिकाय और त्रसजीव उत्पन्न होते हैं।

यह तमस्काय जम्बूद्वीप के बाहर तिरछे असंख्य द्वीप समुद्रों को पार करने के बाद अरूणवरद्वीप आता है, उसके बाद अरूणोदक समुद्र की आभ्यंतर वेदिका से 42 हजार योजन आगे जाने पर समुद्र के उपरितन जलान्त से एक प्रदेश की श्रेणी से प्रारम्भ होती है। अरुणोदक समुद्र चूड़ी के आकार का होने से तमस्काय भी वलयाकार रूप में ऊपर उठी है। लवणशिखा के समान समभित्ति रूप 1721 योजन एक जैसी ऊँची है, उसके बाद तिरछी विस्तृत होती हुई सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार और माहेन्द्र इन चार देवलोकों को आच्छादित करके

तमस्काय का बाह्य दर्शन

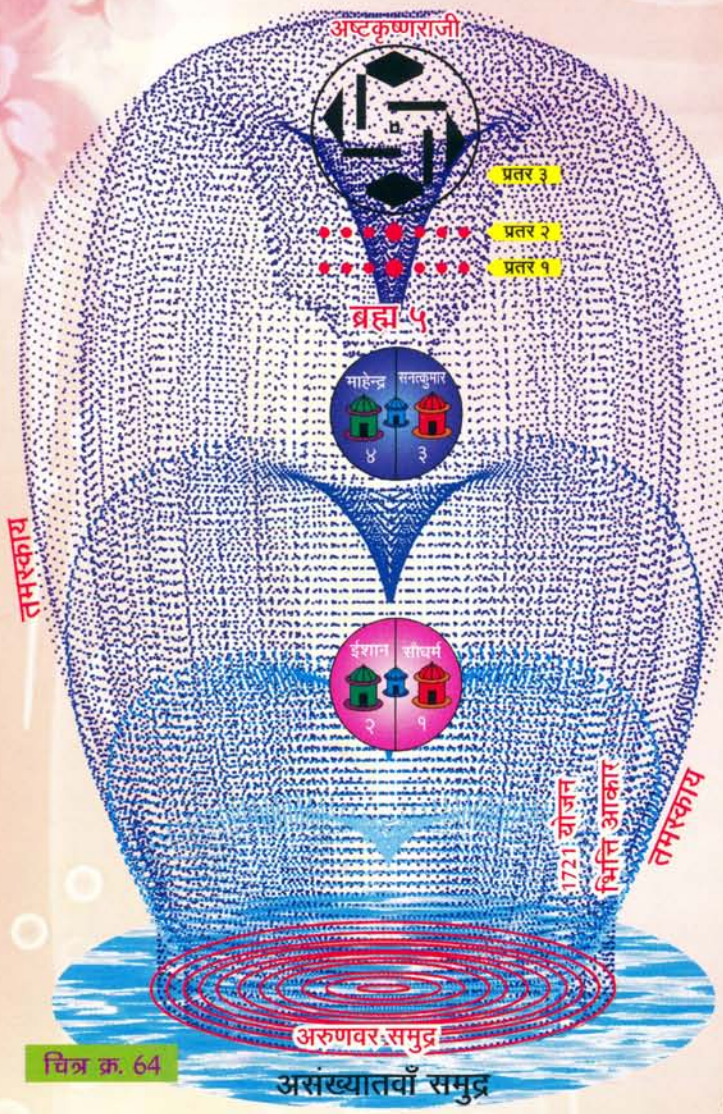

चित्र क्र. 64

उनसे भी ऊपर पंचम ब्रह्मलोक कल्प के रिष्ट विमान नामक प्रस्तर के पास असंख्यात योजन विस्तृत हो गई है। इस प्रकार सम्पूर्ण तमस्काय का आकार नीचे सुराही के मुख जैसा और ऊपर मुर्गे के पिंजरे जैसा है। इसमें सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र नहीं हैं, किन्तु इसके किनारे ज्योतिष विमान हो सकते हैं। इसमें उनकी प्रभा पड़ती है, किन्तु प्रगाढ़ अंधकार के कारण वह निष्प्रभ हो जाती हैं। यहाँ न ग्राम है न मकान है। यह इतनी विस्तारयुक्त है कि एक चुटकी में जंबूद्वीप की इक्कीस परिक्रमा कर लेने वाला देव उत्कृष्ट छः माह तक इसमें चले तो भी तमस्काय का उल्लंघन नहीं कर पाता। तमस्काय संख्यात और असंख्यात हजार योजन विस्तृत है। इसमें बड़े-बड़े बादल बरसते है। देव, असुरों के द्वारा भी यहाँ बादल सी गड़गड़ाहट, बिजली और मेघवर्षा होती है, परन्तु देवकृत होने से वह अचित्त है।

यह भयानक रोमहर्षक काले वर्ण की होने से देव भी वहाँ डर के कारण जाने को तैयार नहीं होते। कभी जाना पड़ भी जाए तो शीघ्र ही उसे पारकर पुनः लौटते हैं। इसलिये इसका तमस्काय, यह नाम जल की मुख्यता से नहीं, बल्कि अंधकार की मुख्यता से दिया गया है। इसके अन्य 13 नाम इस प्रकार हैं—**(1) तम**—अंधकार रूप

तमस्काय के अंदर का दृश्य

चित्र क्र. 65

स्थान, (2) **तमस्काय**—अंधकार का समूह रूप क्षेत्र, (3) **अंधकार**—तमोरूप क्षेत्र, (4) **महाअंधकार**—महातम रूप क्षेत्र, (5-6) **लोकांधकार, लोकतमिस्र**—लोक में सबसे अधिक अंधकार का क्षेत्र, (7-8) **देवांधकार, देवतमिस्र**—देवों को भी महांधकार रूप प्रतीत होने वाला, (9) **देवारण्य**—शक्ति सम्पन्न देव भी जहाँ जाने से डरें, (10) **देवव्यूह**—देवों द्वारा भी दुर्भेद्य, (11) **देवपरिध**—गहरी खाई के समान गति का प्रतिरोधक, (12) **देव प्रतिक्षोभ**—देवों को क्षुभित करने वाला, (13) **अरूणोदक समुद्र**—अरूणोदक समुद्र का विकार।

इस लोक के सभी जीव भूतकाल में तमस्काय के रूप में उत्पन्न हो चुके हैं। **(चित्र क्रमांक 64-65)**

ज्योतिषी देव

'**अत्यंत प्रकाशित्वाज्ज्योतिः**' जिन देवों के विमान सदा प्रकाशित रहते हैं तथा तिर्च्छालोक को द्योतित-प्रकाशित करते हैं वे '**ज्योतिष्क विमान**' कहलाते हैं। ऐसे प्रकाश युक्त विमानों में रहने वाले देव ज्योतिष्क देव है। अथवा जो अपने-अपने मुकुटों में रहे हुए चन्द्रसूर्यादि के चिह्नों से प्रकाशमान हैं, वे ज्योतिष्क देव हैं। ज्योतिषी देव पाँच प्रकार के हैं—**(1) चन्द्र, (2) सूर्य, (3) ग्रह, (4) नक्षत्र, (5) तारा।** इनमें चन्द्र और सूर्य इन्द्र रूप है। इन दोनों के परिवार रूप 28 नक्षत्र, 88 ग्रह और 66,975 कोटाकोटि तारे हैं। तिर्च्छालोक में असंख्य चन्द्र और सूर्य हैं। उन सबका ग्रह आदि परिवार समान है।

आकाश मंडल में जो सूर्य-चंद्र आदि ज्योतिष चक्र दिखाई देते हैं, वे देवों के विमान अर्थात् निवास स्थान हैं। सूर्य-चन्द्र देव एवं उनका देव-देवी परिवार इन विमानों में रहता है। ये विमान शाश्वत हैं तथा पृथ्वीकायिक हैं। अढ़ाई द्वीप में ये सब ज्योतिष्क विमान सदाकाल अपने गतिक्षेत्र पर स्वभावतः परिभ्रमण करते हैं। देवों को जब अन्यत्र जाना हो तो वे विक्रिया द्वारा नया विमान बनाकर जाते हैं। जम्बूद्वीप में परस्पर विरोधी दिशा में 2 चन्द्र और 2 सूर्य हैं लवण समुद्र में 4 चन्द्र, 4 सूर्य हैं। धातकी खण्ड में 12 चन्द्र, 12 सूर्य है। कालोदधि समुद्र में 42 चन्द्र, 42 सूर्य और अर्द्ध पुष्कर द्वीप में 72 चन्द्र और 72 सूर्य हैं। ये सभी चन्द्र, सूर्य एक पंक्ति में समश्रेणी में होते हैं। अढ़ाई द्वीप के बाहर ये परिभ्रमण नहीं करते, अर्थात् ये स्थिर हैं। सभी ज्योतिषी विमानों का आकार वैसा ही है, जैसे एक संतरे के दो खंड करके उन्हें ऊर्ध्वमुखी रखा जाए तो चौड़ाई वाला भाग ऊपर और गोलाई वाला थोड़ा सा भाग नीचे रहता है। हमें यहाँ से मात्र नीचे का भाग दिखाई देता है, ऊपर का नहीं, अतः ये अर्धकपित्थ के आकार वाले कहे गये हैं। किंतु अढ़ाई द्वीप से बाहर वाले ज्योतिष विमान आयत (पकी हुई ईंट) के आकार वाले हैं।

समभूतला पृथ्वी से ज्योतिष्क चक्र का अंतर—जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत के मध्य भाग में अर्थात् मेरु पर्वत की जो 10,000 योजन की चौड़ाई है, उसके मध्यभाग में रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊपर-नीचे दो क्षुल्लक प्रतर हैं। यहीं तिर्यक्लोक का मध्य भाग है। वहाँ आठ रुचक प्रदेश हैं, जहाँ से दिशा-विदिशाओं का प्रारम्भ होता है, यही स्थान समभूतला पृथ्वी कहलाती है। इस समपृथ्वी से 790 योजन की ऊँचाई से लेकर 900 योजन के बीच ग्रह, नक्षत्र और तारों के मंडल हैं। अर्थात् ये 110 योजन के बीच कहीं भी हो सकते हैं। समपृथ्वी से 800 योजन पर सूर्यमंडल और 880 योजन पर चन्द्रमंडल है। कितने ही ग्रंथों में ग्रह, नक्षत्र, तारा मंडल का समपृथ्वी से अंतर निम्न प्रकार से बताया है—

ज्योतिष्क चक्र की समपृथ्वी से ऊँचाई

ज्योतिष्क देव	समपृथ्वी से ऊँचाई	ज्योतिष्क विमान से	ऊँचाई
तारामंडल	790 योजन	—	10 योजन
सूर्य	800 योजन	तारामंडल से	80 योजन
चन्द्र	880 योजन	सूर्य	4 योजन
कितने ही नक्षत्र मंडल	884 योजन	चन्द्र	4 योजन
ग्रह मंडल में बुधादि ग्रह	888 योजन	नक्षत्र	3 योजन
शुक्रादि ग्रह	891 योजन	बुध	3 योजन
बृहस्पति आदि ग्रह	894 योजन	शुक्र	3 योजन
मंगल आदि ग्रह	897 योजन	बृहस्पति	3 योजन
शनि आदि ग्रह	900 योजन	मंगल	—

ज्योतिष्क के मंडल

समपृथ्वी से 790 योजन ऊपर से प्रारम्भ करके 900 योजन तक अर्थात् 110 योजन क्षेत्र में ये ज्योतिषी देव है। अढ़ाई द्वीप में इन पाँचों प्रकार के देवों के विमान मेरु पर्वत की प्रदक्षिणा करते हुए परिभ्रमण करते हैं। इनमें सूर्य और चन्द्र की प्रदक्षिणा का मार्ग सम्पूर्ण मंडलाकार नहीं है, वरन् ये परिभ्रमण करते-करते अपने स्थान से दूर खिसक जाते हैं। जलेबी की तरह अंदर के मार्ग से बाहर और बाहर के मार्ग से अंदर की ओर कुल 510 योजन में परिक्रमा करते हैं। सूर्य के 184 और चन्द्र के 15 अनवस्थित मंडल हैं।

ग्रह, नक्षत्र और तारा अपने निश्चित् वर्तुलाकार मंडल पर ही

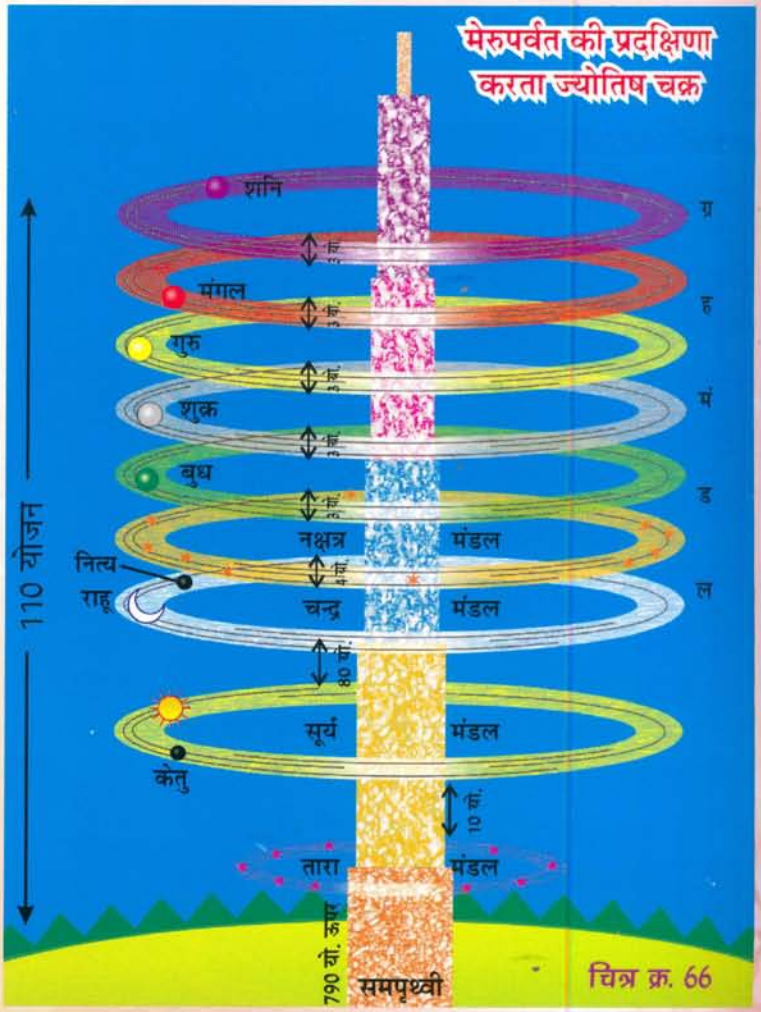

चित्र क्र. 66

परिभ्रमण करते रहते हैं। 28 नक्षत्रों के आठ अवस्थित मंडल हैं, जिन पर वे ही नक्षत्र परिभ्रमण करते रहते हैं, दूसरे नक्षत्र दूसरे मंडल पर—इस प्रकार प्रत्येक नक्षत्र का मंडल निश्चित् है। नक्षत्र के आठ मंडल सूर्य-चन्द्र के समान ही 510 योजन क्षेत्र में है।

चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र का प्रथम मंडल मेरु पर्वत से 44,820 योजन दूर है, ताराओं का प्रथम मंडल 1,121 योजन दूर है। चन्द्र, सूर्य और नक्षत्र का प्रथम व अंतिम मंडल समरेखा में ऊपर-नीचे है। अत: उनका व्यास, परिधि आदि समान है। **(चित्र क्रमांक 66)**

काल गणना का आधार सूर्य और चन्द्र

दोनों सूर्य मिलकर (प्रत्येक सूर्य अर्ध-अर्ध मंडल को पूर्ण करते हुए) 60 मुहूर्त्त (48 घंटे) में एक प्रदक्षिणा पूर्ण करते हैं। 30 मुहूर्त्त (24 घंटे) का एक अहोरात्र होता है। दोनों चन्द्र मिलकर $62^{23}/_{221}$ मुहूर्त्त और नक्षत्र $59^{307}/_{367}$ मुहूर्त्त में एक प्रदक्षिणा पूर्ण करते हैं। इस प्रदक्षिणा में सूर्य जिस क्षेत्र में प्रकाश करता है, वहाँ दिन और सूर्य प्रकाश के अभाव में वहाँ रात्रि कही जाती है। इस प्रकार मनुष्य के दृष्टिपथ की अपेक्षा से सूर्य का यह उदय अस्त का व्यवहार होता है।

चन्द्र परिभ्रमण के आधार पर तिथि निर्मित होती है। चन्द्र-सूर्यादि के इस परिभ्रमण के आधार पर चन्द्र-सूर्यादि मास और संवत्सर आदि काल गणना होती है।

चन्द्र-सूर्य अपने अनेक मंडलों में परिभ्रमण करते हैं। सूर्य जब मेरु पर्वत के प्रथम मंडल से अंतिम मंडल की ओर प्रयाण करता है, उसे दक्षिणायन और लवण समुद्र के अंतिम मंडल से प्रथम मंडल की ओर आता है, उसे उत्तरायण कहा जाता है। ग्रह, नक्षत्र और तारा एक मंडल से अन्य मंडल के ऊपर गमन नहीं करते, अत: उनमें उत्तरायण-दक्षिणायन का विभेद नहीं होता।

ज्योतिष्क सम्बन्धी इस सामान्य ज्ञातव्य के पश्चात् अब हम उनका पृथक्-पृथक् वर्णन करेंगे। पृथ्वी के सबसे निकट तारा मंडल है, अत: सर्वप्रथम तारा ज्योतिष्क का वर्णन कर रहे हैं।

तारा विमान व उसके देव

समभूतला पृथ्वी से 790 योजन से 900 योजन तक अर्थात् 110 योजन क्षेत्र में करोड़ा-करोड़ तारामंडल है। एक योजन के 3200 मील होते हैं, अत: 790 × 3200 = 25,28,000 मील दूर तारों के विमान हैं। ये सभी विमान आधे कोस प्रमाण लम्बे और उतने ही चौड़े हैं। ये पंचवर्णीय और अर्धकपित्थ के आकार के हैं। तारों के विमान में उत्पन्न सभी देवों की देह सात हाथ की होती है और स्थिति जघन्य पल्योपम का आठवाँ भाग एवं उत्कृष्ट पाव पल्योपम की है। तारा देवियों की स्थिति जघन्य पल्य का आठवाँ भाग उत्कृष्ट कुछ अधिक है। इन सबके मुकुट **'तारा'** के चिह्न से युक्त होते है। तारा विमान को दो हजार देव उठाते हैं।

तारा विमान का मेरु आदि से अंतर—ताराओं के विमान मेरु पर्वत से 1121 योजन दूर रहकर परिभ्रमण करते हैं। लोकान्त से ये 1111 योजन दूर है। समपृथ्वी से 790 योजन से लेकर 900 योजन अर्थात् 110 योजन तारामंडल के विमान हैं।

एक तारा विमान से दूसरे तारा विमान का अंतर—जंबूद्वीप में एक तारा विमान से दूसरे तारा विमान का अंतर पर्वत आदि का व्याघात न हो तो जघन्य 500 धनुष तथा उत्कृष्ट 2 कोस का है। यदि व्याघात हो तो जघन्य 266 योजन तथा उत्कृष्ट 12 हजार 242 योजन का है। वह इस प्रकार है—निषध और नीलवंत पर्वत भूमि से 400 योजन ऊँचे और इन पर्वतों के ऊपर 500 योजन ऊँचे नौ-नौ कूट (शिखर) हैं। इनकी चौड़ाई 250 योजन है। कूटों के दोनों ओर 8-8 योजन की दूरी पर इनका संचरण होने से 8 + 250 + 8 = 266 योजन का जघन्य व्याघात कहा है। उत्कृष्ट व्याघात मेरु पर्वत से पड़ता है। क्योंकि मेरूपर्वत से एक (पूर्व) दिशा में 1121 योजन दूर तारामंडल परिभ्रमण करता है, तो उसके सामने की (पश्चिम) दिशा में भी 1121 योजन दूर तारामंडल है। दोनों ओर के 1121 + 1121 के साथ मेरू का व्यास 10,000 योजन जोड़ने पर एक तारा से दूसरे तारा का अंतर (मेरू के व्याघात अपेक्षा) 12 हजार 242 योजन प्रमाण है। इसी प्रकार नक्षत्रों का अंतर भी जान लेना चाहिये। **(चित्र क्रमांक 67)**

चित्र क्र. 67

तारा देवों की ऋद्धि—ज्योतिषी देवों में तारामंडल के सभी विमान समभूतला पृथ्वी से 790 योजन पर ही नहीं, वरन् चन्द्र-सूर्य विमान की समश्रेणी में भी हैं और कई तारा विमान चन्द्र-सूर्य विमान से ऊपर के क्षेत्र में भी हैं। इनमें कितने ही तारा देवों की ऋद्धि अल्प है और कितने ही समऋद्धि सम्पन्न भी हैं।

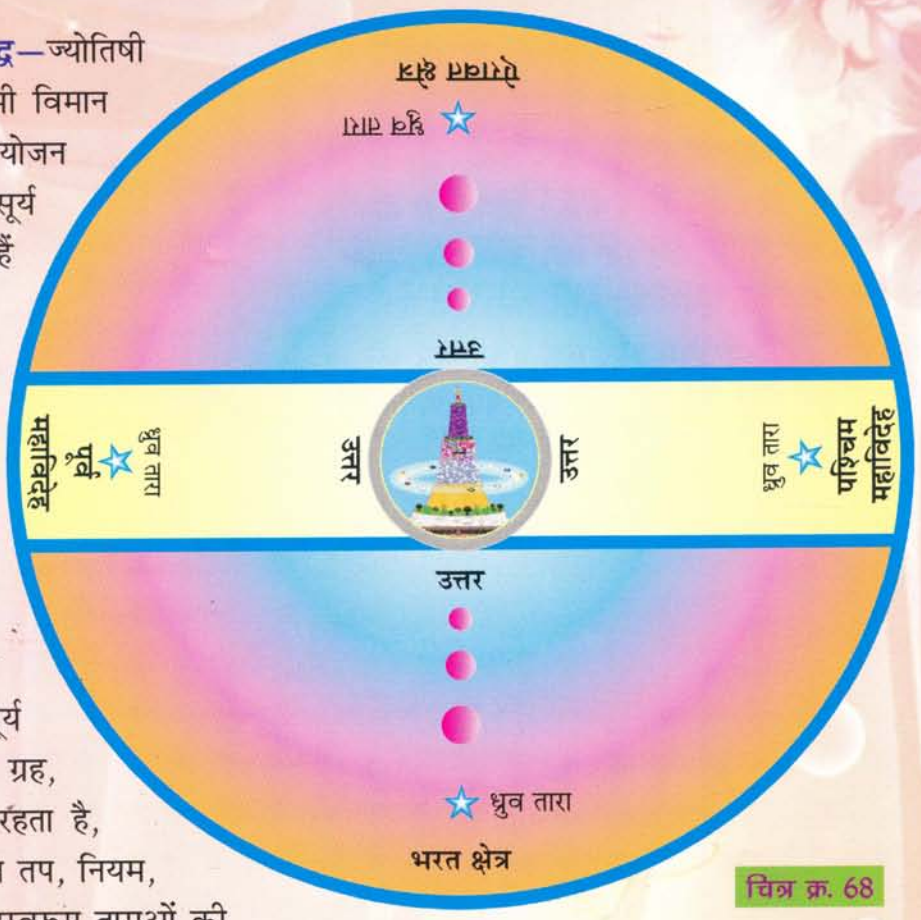

चित्र क्र. 68

यद्यपि सभी ज्योतिषी देवों के इन्द्र, चन्द्र और सूर्य है। उनका स्वामित्व सभी ग्रह, नक्षत्र, तारा विमानों पर रहता है, तथापि पूर्वभव में उपार्जित तप, नियम, ब्रह्मचर्य आदि के परिणामस्वरूप ताराओं की ऋद्धि में समानता भी हो सकती है। जैसे मनुष्य लोग में पूर्व संचित पुण्य के कारण कई श्रेष्ठी राजा नहीं होने पर भी राजा के समान ऋद्धि वाले होते हैं, उसी प्रकार देवों की भी इन्द्र के समान ऋद्धि हो सकती है। किन्तु ऐसे तारादेव अत्यल्प होते हैं। प्रायः तो निम्नतर या निम्नतम ऋद्धि वाले ही होते हैं।

ध्रुवतारा—कोटाकोटी तारामंडल के मध्य यह एक विशिष्ट तारा है, जो जगत के तथाविध स्वभाव से सदा ही स्थिर है। इसके समीप में रहने वाले तारा मंडल मेरू की प्रदक्षिणा नहीं करते, ध्रुव तारे की प्रदक्षिणा करते हुए वहीं के वहीं घूमते हैं। यह ध्रुव तारा भरतक्षेत्र की अपेक्षा से उत्तर दिशा में है। ऐसे ध्रुव तारे चार हैं वे भी ऐरवत क्षेत्र, पूर्व महाविदेह और पश्चिम महाविदेह क्षेत्र की अपेक्षा से अनुक्रम से उत्तर दिशा में है। **(चित्र क्रमांक 68)**

'सर्वेषामेव वर्षाणां मेरूरूत्तरतः स्थितः' अर्थात् जैसे मेरूपर्वत प्रत्येक क्षेत्र की अपेक्षा से उत्तर दिशा में है उसी प्रकार ध्रुव तारा भी उत्तर में स्थित है। उत्तर में होने के कारण यह **'ध्रुवतारा'** दिशासूचक यंत्र द्वारा समुद्र में चलते जहाज, स्टीमर, हवाईजहाज आदि को दिशा का ज्ञान कराने में अत्यंत उपयोगी होता है। क्योंकि उसका काँटा सदा उत्तर ध्रुव की ओर रहता है।

सूर्य ज्योतिष्क

तारा मंडल से 10 योजन ऊपर एवं समभूतला पृथ्वी से 800 योजन ऊपर सूर्य के विमान हैं। ये एक योजन के 61 भाग में से 48 भाग लम्बे-चौड़े और 24 भाग ऊँचे हैं। सूर्य विमानवासी देव स्वर्ण की तरह लाल वर्ण वाले उत्कृष्ट एक पल्योपम और एक हजार वर्ष की आयु वाले होते हैं। इनकी देवियों की आयुष्य जघन्य पाव पल्योपम और उत्कृष्ट आधा पल्योपम एवं 500 वर्ष की है। इनके मुकुट में **'सूर्य'** का चिह्न होता है। सूर्य के विमान को 16,000 देव उठाते हैं। सूर्य विमान के पृथ्वीकायिक जीवों के आतप नामकर्म का उदय है। इस कारण मूल में शीतल होते हुए भी उसकी प्रभा 'किरणें' गर्म होती है। **(चित्र क्रमांक 69)**

चित्र क्र. 69

सूर्यमंडल—सूर्य का मेरु की प्रदक्षिणा का वर्तुलाकार नियत मार्ग सूर्यमंडल कहा जाता है। यह सूर्यमंडल वास्तविक रूप में सम्पूर्ण मण्डलाकार नहीं है। क्योंकि जिस क्षेत्र की समश्रेणी से वर्तुलाकार गति प्रारम्भ कर पुनः उसी क्षेत्र पर आ जाय, उसे वास्तविक मंडल कहते हैं। सूर्य प्रत्येक अर्ध प्रदक्षिणा में दो योजन और एक प्रदक्षिणा पूर्ण होने पर 4 योजन दूर चला जाता है। अतः सूर्य मंडल सम्पूर्ण वर्तुल (गोल) नहीं है, वर्तुल सदृश होने से 'मंडल' कहा गया है। **(चित्र क्रमांक 70)**

चित्र क्र. 70

सूर्य मण्डल का क्षेत्र—कुल सूर्य मण्डल 184 हैं। उसमें से 65 सूर्य मंडल जम्बूद्वीप के ऊपर और 119 मण्डल लवण समुद्र के ऊपर है। जम्बूद्वीप के 65 मंडलों में से 63 मंडल निषध और नीलवंत पर्वत के ऊपर है। 2 मंडल हरिवर्ष और रम्यक् वर्ष क्षेत्र की जीवा कोटी पर है। प्रत्येक दिशावर्ती व्यक्ति अपनी-अपनी दिशा के आधे मंडल को ही देखता है। **(चित्र क्रमांक 71)**

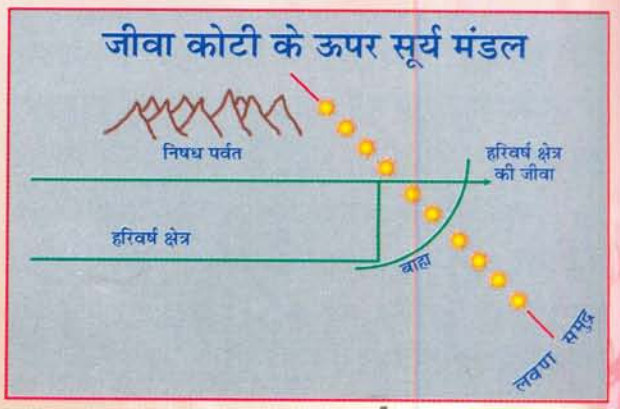

चित्र क्र. 71

सूर्य के बाह्य-आभ्यन्तर मण्डल एवं परिक्रमा परिमाण—सूर्य-चन्द्र के वृत्ताकार भ्रमण क्षेत्र को **'मण्डल'** कहा जाता है। मेरूपर्वत के सबसे

निकटवर्ती मण्डल को **'सर्वाभ्यन्तर मण्डल'** तथा लवण-समुद्र में पहुँच सबसे दूर अन्तिम 184वें मण्डल को **'सर्व बाह्य मण्डल'** कहते हैं। मण्डल 184 होने पर भी सूर्य के चलने के मार्ग 183 हैं। जब सूर्य पहले मंडल से परिक्रमा करता हुआ दूसरे मंडल में उस स्थान की सीध में पहुँचता है, तब उसका प्रथम चक्कर पूर्ण होता है। तीसरे मंडल में पहुँचने पर दो और 184वें मंडल में पहुँचने पर 183 चक्कर पूर्ण होते हैं। इसी प्रकार 184वें मंडल से चलकर पुनः पहले मंडल के उस सीध वाले ध्रुव स्थान पर पहुँचने में फिर 183 चक्कर होते हैं। इस प्रकार प्रथम मंडल से अंतिम मंडल में जाकर पुनः प्रथम मंडल में आने पर सूर्य की एक परिक्रमा 183 + 183 = 366 दिन रात में पूरी होती है।

पहले और अंतिम इन दो मंडलों में सूर्य एक-एक चक्कर लगाता है अर्थात् इनका स्पर्श एक बार करता है जबकि शेष 182 मंडल मार्गों पर दो-दो बार गमन करता है। अतः 182 × 2 + 2 = 366 चक्कर में 366 दिन-रात हो जाते हैं। ऐसी एक परिक्रमा से एक सूर्य संवत्सर अर्थात् एक वर्ष पूरा होता है।

प्रथम मंडल से अंतिम मंडल तक जाने और पुनः प्रथम मंडल तक आने में घुमाव एक दिशावर्ती ही होता है। अर्थात् सूर्य सदा पूर्व से दक्षिण, पश्चिम उत्तर की तरफ ही बढ़ता है। **(चित्र क्रमांक 72)**

सर्वाभ्यन्तरमण्डल से सर्वबाह्यमण्डल में जाते सूर्य के 183 मार्ग

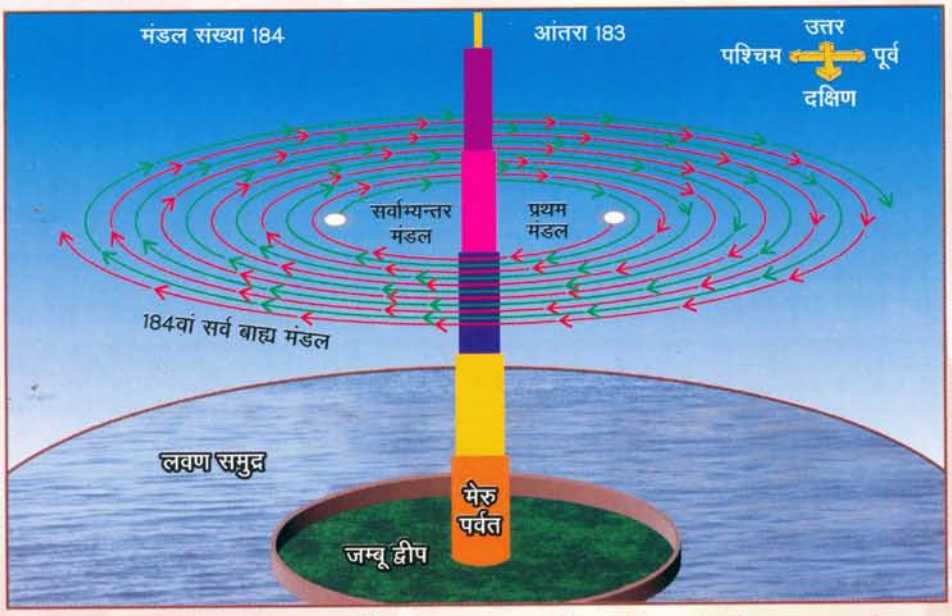

सर्वबाह्यमण्डल से सर्वाभ्यन्तरमण्डल में जाते सूर्य के 183 मार्ग

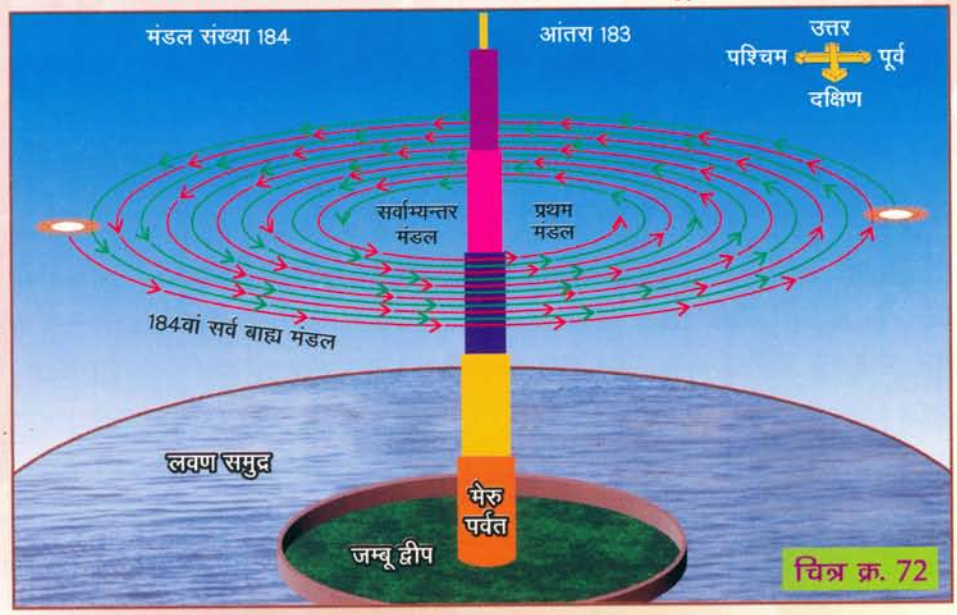

चित्र क्र. 72

सूर्य के उदय-अस्त की व्यवस्था—सूर्य जब उत्तर-पूर्व (ईशान कोण) में उदित होता है तो पूर्व-दक्षिण (आग्नेय कोण) में अस्त होता है। पूर्व-दक्षिण (आग्नेय कोण) में उदित हुआ दक्षिण-पश्चिम (नैऋत्य कोण) में अस्त होता है। दक्षिण-पश्चिम (नैऋत्य कोण) में उदित हुआ पश्चिम-उत्तर (वायव्य कोण) में अस्त होता है और पश्चिम-उत्तर (वायव्य कोण) में उदित होकर उत्तर-पूर्व (ईशान कोण) में अस्त होता है। **(चित्र क्रमांक 73)**

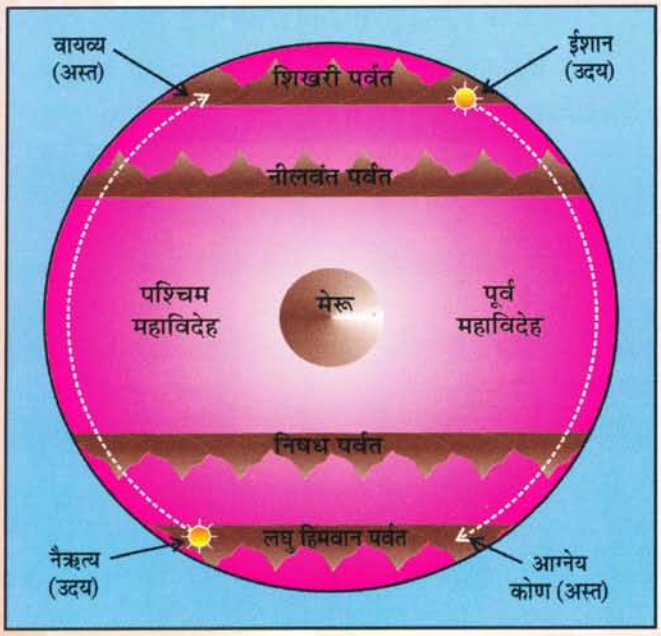

पूर्व-पश्चिम विभाग में सूर्योदय-सूर्यास्त

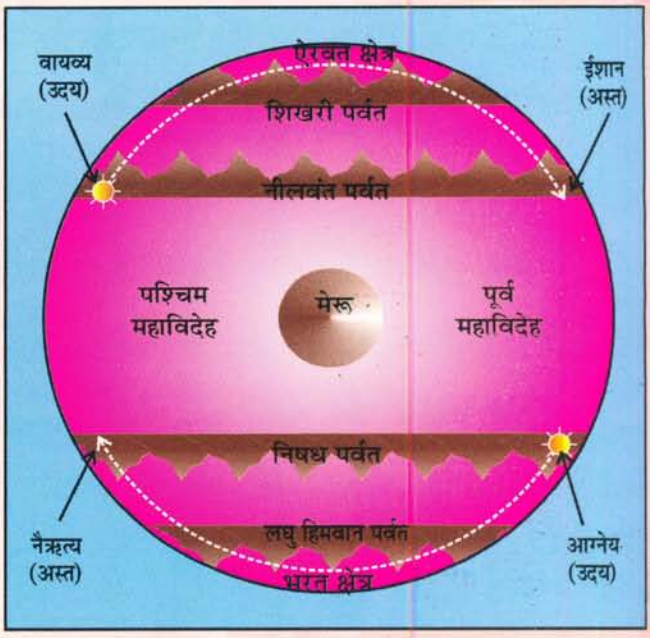

उत्तर-दक्षिण विभाग में सूर्योदय-सूर्यास्त

चित्र क्र. 73

जंबूद्वीप में दिन-रात्रि का विभाग—जंबूद्वीप में रात-दिन का विभाग दो सूर्यों के प्रकाश द्वारा होता है। जंबूद्वीप के दो सूर्यों में से एक सूर्य जब दक्षिण-पूर्व दिशा (आग्नेय कोण) में (जंबूद्वीप की जगती से 180 योजन अंदर) उदित होता है, तब उसी सूर्य की समश्रेणी में उत्तर-पश्चिम दिशा (वायव्य कोण) में जंबूद्वीप का दूसरा सूर्य उदित होता है। उस समय भरत और ऐरवत इन दोनो क्षेत्रों में सूर्योदय हुआ कहा जाता है उसके बाद जैसे-जैसे प्रथम सूर्य मेरू से दक्षिण की ओर एवं दूसरा उत्तर की ओर बढ़ता जाता है वैसे-वैसे भरत और ऐरवत के उन-उन क्षेत्रों को प्रकाशित करता जाता है।

जब भारत सूर्य दक्षिण पश्चिम (नैऋत्य कोण) में आता है। तब पश्चिम महाविदेह में सूर्य उदय होता है और ऐरवत सूर्य उत्तर-पूर्व (ईशान कोण) में आता है तब पूर्व महाविदेह में सूर्य उदय होता है। इसी प्रकार पुनः पश्चिम महाविदेह का सूर्य उत्तर में आकर ऐरवत क्षेत्र को और पूर्व महाविदेह का सूर्य दक्षिण में आकर भरत क्षेत्र को प्रकाशित करता है। इस प्रकार एक सूर्य 30 मुहूर्त अर्थात् एक अहोरात्र में आधे मेरूपर्वत की प्रदक्षिणा करता है और दो अहोरात्र में मेरूपर्वत की पूर्ण प्रदक्षिणा करता हुआ एक मंडल पूर्ण करता है। इससे यह सहज समझा जा सकता है कि अढ़ाई द्वीप में जिसे हम सूर्योदय-सूर्यास्त कहते हैं, वस्तुतः वह सूर्य का उदय या अस्त होना नहीं है। सूर्य के विमान और उसका प्रकाश सदा ही आकाश में रहता है, अर्थात् सूर्य सदा काल

प्रकाशमान है, तथापि जहाँ दिखाई देता है उस प्रदेश में उदय और जहाँ नहीं दिखाई देता हो, वहाँ अस्त मानने का व्यवहार है। (**चित्र क्रमांक 74-75**)

रात्रि-दिवस की हानि-वृद्धि का प्रमाण—सूर्य 366 दिवस में सर्वाभ्यन्तर मंडल से सर्वबाह्य मंडल में और सर्वबाह्य मंडल से सर्वाभ्यन्तर मंडल की परिक्रमा पूर्ण करता है। **जब सूर्य सर्वाभ्यन्तर मंडल में होता है तब 18 मुहूर्त का दिन एवं 12 मुहूर्त की रात्रि होती है।** इस दिन से वर्ष प्रारम्भ होता है। इस प्रथम दिन के प्रथम चक्कर में सूर्य दूसरे मंडल में चला जाता है। फिर जैसे-जैसे बाह्यमंडल की ओर गमन करता है वैसे-वैसे दिवस के परिमाण में 2/61 भाग की हानि और रात्रि के प्रमाण में 2/61 भाग की वृद्धि होती है।

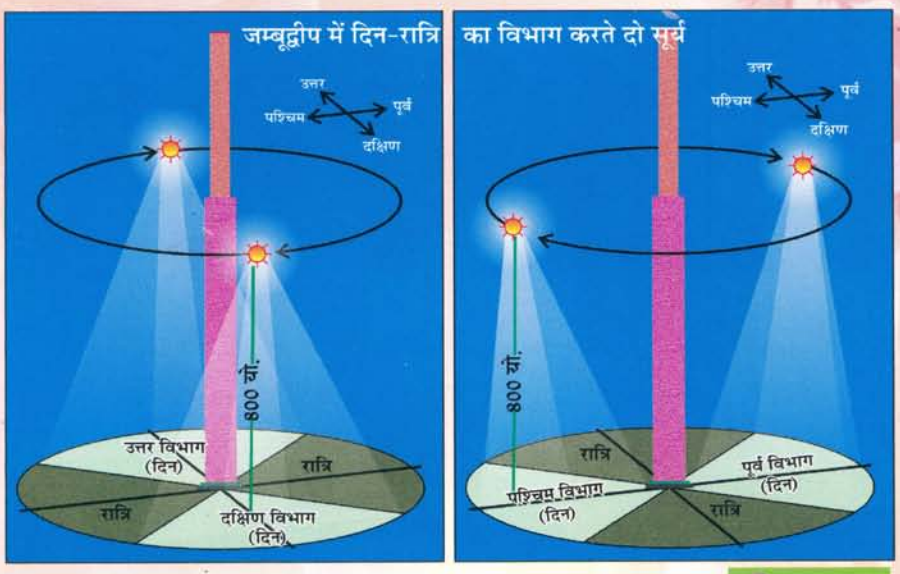

चित्र क्र. 74

सर्वाभ्यन्तर मंडल में स्थित सूर्य का विविध अंतर पर प्राप्त होता उदयास्त समय का अन्तरमान

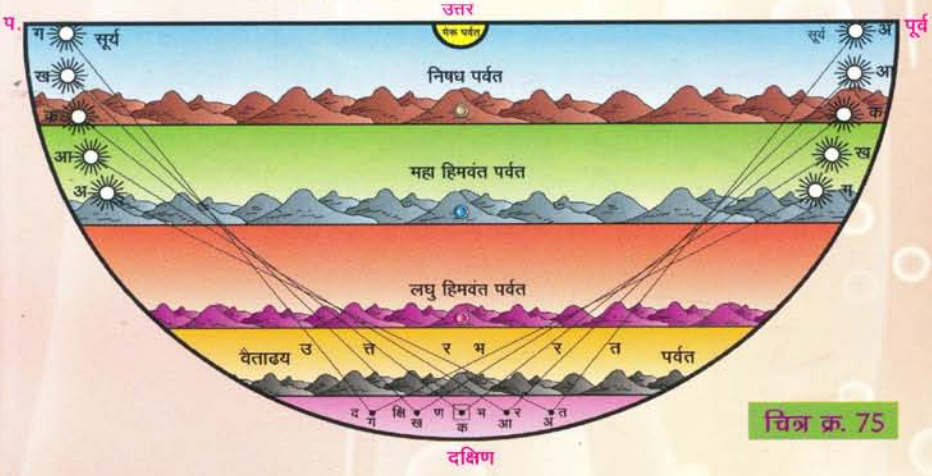

चित्र क्र. 75

इसी प्रकार सूर्य जब सर्वबाह्यमंडल में वर्तमान होता है तब 12 मुहूर्त का दिन और 18 मुहूर्त की रात्रि होती है। फिर जैसे-जैसे सर्वाभ्यन्तरमंडल की तरफ गमन करता है वैसे-वैसे दिन में वृद्धि और रात्रि में हानि होती है। हानि-वृद्धि का प्रमाण मुहूर्त के 2/61 भाग जितना होता है। प्रथम 6 मास में दिन घटता है और रात्रि बढ़ती है। दूसरे 6 मास में दिन बढ़ता है और रात्रि घटती है। जब सूर्य 183 मंडल में से 91½वें मंडल पर अथवा कुल 184 मंडल के 92½वें मंडल पर परिभ्रमण करता है, तब 15 मुहूर्त्त की रात्रि और 15 मुहूर्त्त का दिन होता है।

पौष मास में सबसे बड़ी रात 18 मुहूर्त की होती है और आषाढ़ मास में सबसे बड़ा दिन 18 मुहूर्त का होता है, यह सामान्य कथन है। **हिन्दू ज्योतिष** गणित के अनुसार आषाढ़ में कर्क संक्राति को सबसे बड़ा दिन और

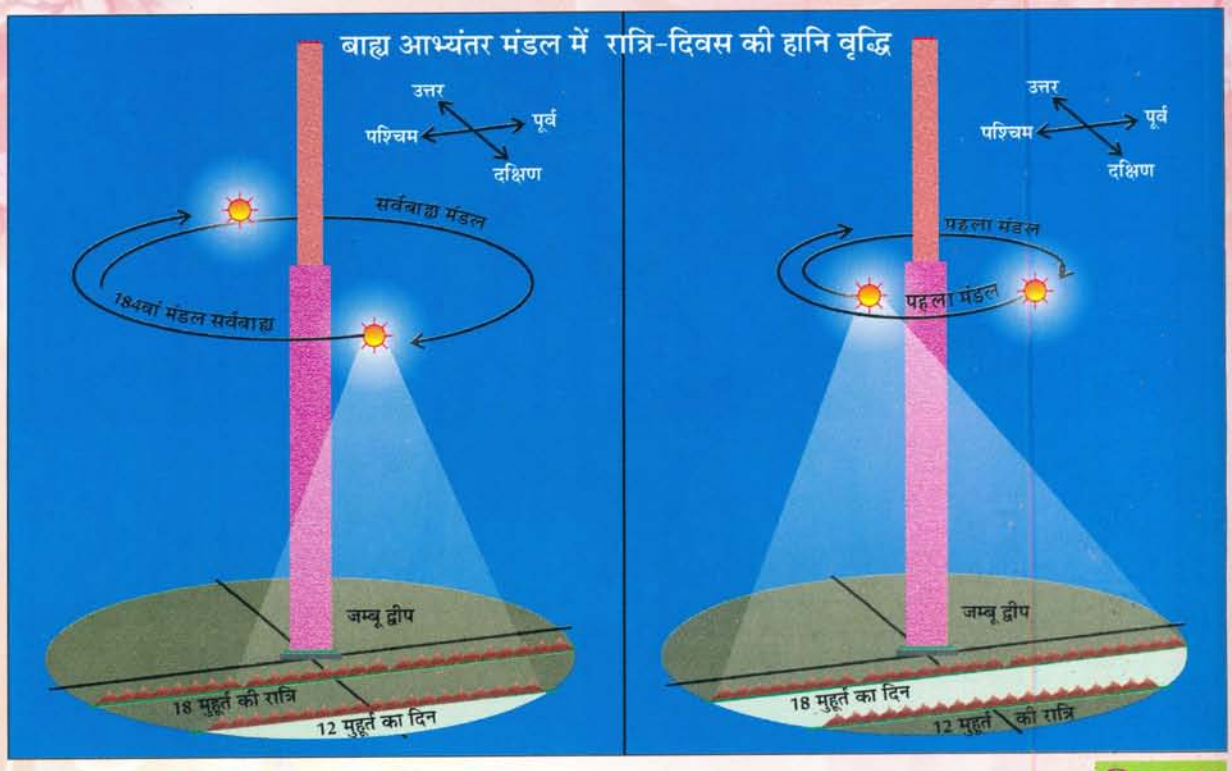

चित्र क्र. 76

रात्रि-दिवस की हानि-वृद्धि

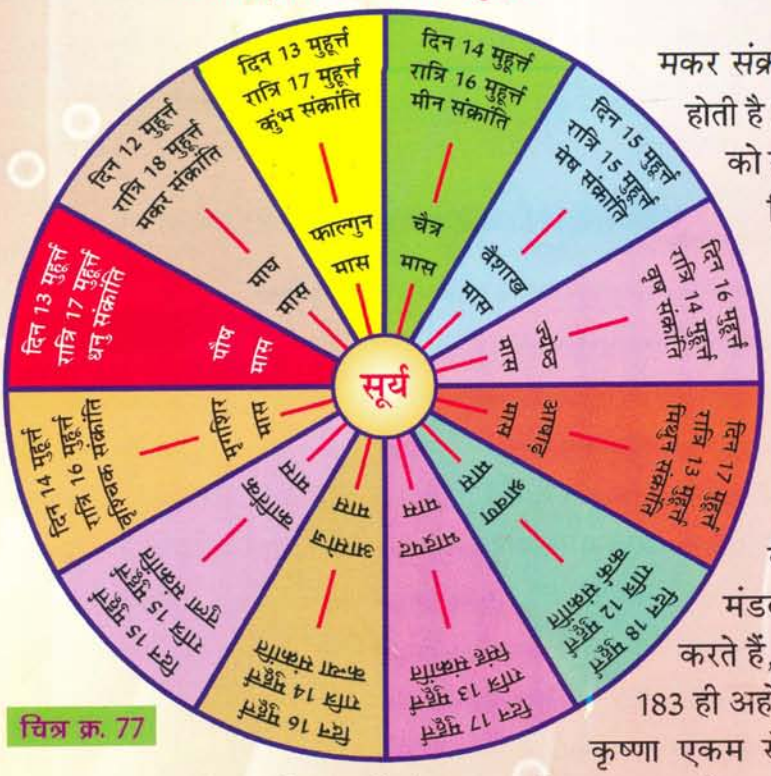

चित्र क्र. 77

मकर संक्राति के दिन पौष मास में सबसे बड़ी रात होती है। **अंग्रेजी ज्योतिष** के अनुसार 23 दिसम्बर को सबसे बड़ी रात और 21 जून को सबसे बड़ा दिन होता है। 21 सितम्बर को दिन-रात बराबर होते हैं। दिन व रात्रि का परिमाण चित्र में देखें। **(चित्र क्रमांक 76-77)**

दक्षिणायन-उत्तरायण—वर्ष में दो अयन होते हैं—दक्षिणायन और उत्तरायण। श्रावण कृष्णा एकम से जब सूर्य संवत्सर प्रारम्भ होता है, तब से प्रथम के 6 मास, जिसमें दोनों सूर्य आभ्यन्तर मंडल से अंतिम 184वें मंडल की ओर प्रयाण करते हैं, तब तक अर्थात् 183 मंडल गति करने की 183 ही अहोरात्रियाँ दक्षिणायन की कही जाती हैं। माघ कृष्णा एकम से उत्तरायण की प्रथम अहोरात्री में सूर्य सर्वबाह्य के दूसरे अर्थात् 183वें मंडल पर परिभ्रमण करता है। उसके बाद 183 से प्रथम मंडल की ओर गति करते हुए सूर्य की 183 अहोरात्रियाँ उत्तरायण की कही जाती है। अर्थात् सूर्य का सर्वबाह्य मंडल से सर्वाभ्यन्तर

मंडल की ओर गमन करना उत्तरायण है। और सर्वाभ्यन्तर मंडल से सर्वबाह्य मंडल की ओर गमन करना दक्षिणायन है।

जब सूर्य सर्वाभ्यन्तर मंडल पर परिभ्रमण करता है, वह दिन 'कर्क संक्रान्ति' का होता है, उसके दूसरे दिन से दक्षिणायन प्रारम्भ होता है। श्रावण कृष्णा एकम को पूर्वीय अथवा भारतीय सूर्य निषध पर्वत के समीप से दूसरे मंडल पर जब जाता है, तब भरत क्षेत्र में नववर्ष तथा पश्चिमी अथवा ऐरावतीय सूर्य नीलवान पर्वत के समीप से दूसरे मंडल पर जाता है तब ऐरावत क्षेत्र में नये वर्ष का प्रारम्भ होता है। इसी प्रकार सूर्य जब सर्वबाह्य मंडल पर परिभ्रमण करता है। वह दिन 'मकर संक्रान्ति' का होता है और उसके दूसरे दिन उत्तरायण का प्रारम्भ होता है। अथवा जिस दिन किसी भी वस्तु की छाया वस्तु के प्रमाण के अनुसार होती है, वह दिन दक्षिणायन का प्रथम दिन होता है। श्रावण कृष्णा एकम को जानु की छाया अपने ही प्रमाण के अनुसार 24 अंगुल पड़ती है, अत: दक्षिणायन श्रावणमास से प्रारंभ होता है और उत्तरायण माघ मास से। इसी प्रकार आषाढ शुक्ला पूनम उत्तरायण का अंतिम दिन तथा पौष शुक्ला पूनम दक्षिणायन का अंतिम दिन है। उत्तरायण और दक्षिणायन में सूर्य की प्रदक्षिणा के कारण समग्र विश्व का तंत्र व्यवस्थित चलता है। इसीलिए भारतीय ज्योतिष ग्रंथों में काल, कोष्ठक गणित आदि व्यवस्थित देखने को मिलता है।

छाया का प्रमाण—दक्षिणायन में छाया बढ़ती है और उत्तरायण में कम होती है। इसमें छाया का आकार वही होता है जो वस्तु का आकार होता है। गोल वस्तु की छाया का आकार गोल, चौरस वस्तु की छाया का आकार चौरस और वटवृक्ष की छाया वटवृक्ष के आकार की होती है। छाया की लम्बाई में हानि-वृद्धि होती है, आकार में नहीं। आकार तो प्रकाश्य वस्तु के समान ही होता है।

पौरूषी प्रमाण—जैन धर्म में 'पौरूषी' का अत्यधिक महत्त्व है। साधु को स्वाध्याय करना हो या तप, प्रत्येक क्रिया में पौरूषी का प्रमाण देखा जाता है। पौरूषी का अर्थ है—**'पुरूष प्रमाण छाया अथवा वस्तु प्रमाण छाया'**। सूर्योदय के समय छाया पुरूष के प्रमाण से लम्बी होती है, वह जब घटते-घटते पुरूष के अपने शरीर प्रमाण रह जाय तब उसे **'पौरूषी'** कहा जाता था। सूर्योदय से सूर्यास्त तक के समय को चार भागों में विभाजित करके दिन की चार पौरूषी इसी प्रकार रात्रि की चार पौरूषी मानी गई है। किंतु सदा ही पौरूषी पुरूष प्रमाण छाया जितनी नहीं होती। दिन और रात्रि के समय में सदा 2/61 भाग की हानि-वृद्धि होती रहने के कारण पौरूषी प्रमाण में भी हानि-वृद्धि होती है। उसे प्रत्येक मास में पाद और अंगुल के माध्यम से समझाया गया है।

दक्षिणायन				उत्तरायण			
क्रम	मास	पौरूषी	वृद्धि	क्रम	मास	पौरूषी	हानि
1.	श्रावण	2 पाद 4 अंगुल	4 अंगुल	1.	माघ	3 पाद 8 अंगुल	4 अंगुल
2.	भाद्रपद	2 पाद 8 अंगुल	8 अंगुल	2.	फाल्गुन	3 पाद 4 अंगुल	8 अंगुल
3.	आसोज	3 पाद	1 पाद	3.	चैत्र	3 पाद	1 पाद
4.	कार्तिक	3 पाद 4 अंगुल	1 पाद 4 अंगुल	4.	वैशाख	2 पाद 8 अंगुल	1 पाद 4 अंगुल
5.	मार्गशीर्ष	3 पाद 8 अंगुल	1 पाद 8 अंगुल	5.	ज्येष्ठ	2 पाद 4 अंगुल	1 पाद 8 अंगुल
6.	पौष	4 पाद	2 पाद	6.	आषाढ़	2 पाद	2 पाद

भारतीय ऐरवतीय सूर्य—श्रावण कृष्णा एकम नये वर्ष के प्रथम दिन जो सूर्य पूर्वी केन्द्र अर्थात् पूर्व दिशा के अंत से (आग्नेय कोण) दक्षिण दिशावर्ती दूसरे अर्धमंडल पर परिभ्रमण प्रारम्भ कर दक्षिण दिशा की ओर गति करता हुआ भरत क्षेत्र को प्रकाशित करता है वह भारतीय सूर्य अथवा पूर्वी सूर्य तथा इसी दिन पश्चिमी केन्द्र अर्थात् वायव्य कोण से उत्तर दिशावर्ती अन्य अर्धमंडल पर परिभ्रमण प्रारम्भ कर उत्तर दिशा की ओर जाकर ऐरावत क्षेत्र को प्रकाशित करने वाला सूर्य ऐरवतीय या पश्चिमी सूर्य कहा जा सकता है। **(चित्र क्रमांक 78)**

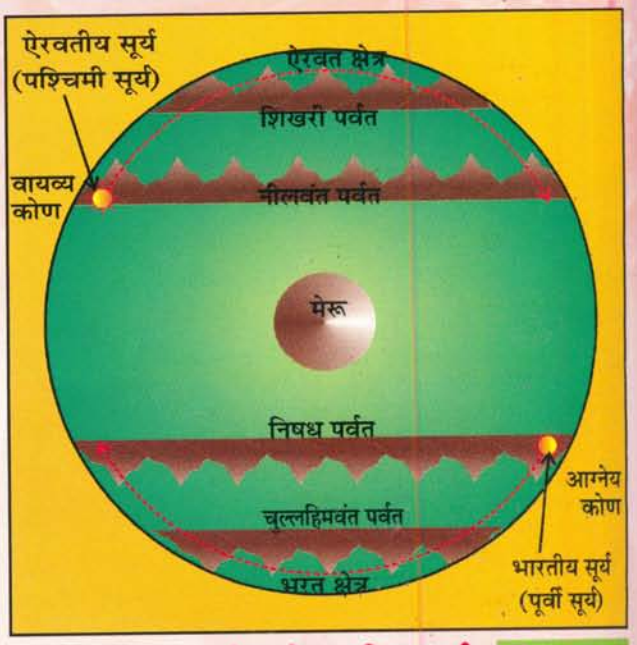

भारतीय ऐरवतीय सूर्य चित्र क्र. 78

दोनों सूर्यों के स्वतन्त्र मार्ग—प्रत्येक संवत्सर (वर्ष) में भारतीय और ऐरवतीय दोनों सूर्य दक्षिणायन में (आभ्यन्तर से बाह्य मंडल में जाते हुए) अपने-अपने स्वतंत्र मंडल पर चलते हैं तथा 183 मंडल पर परिभ्रमण करते हुए 510 योजन का क्षेत्र पार करते हैं। उसमें एक बार भी एक-दूसरे के मंडल का स्पर्श नहीं करते। किन्तु उत्तरायण में (बाहर से अंदर आते हुए) ये स्वचलित और परचलित मंडल पर जितना चलते हैं, उसमें एक पूर्ण मंडल के चार दिशा भाग करके इस प्रकार समझा जा सकता है। **(चित्र क्रमांक 79)**

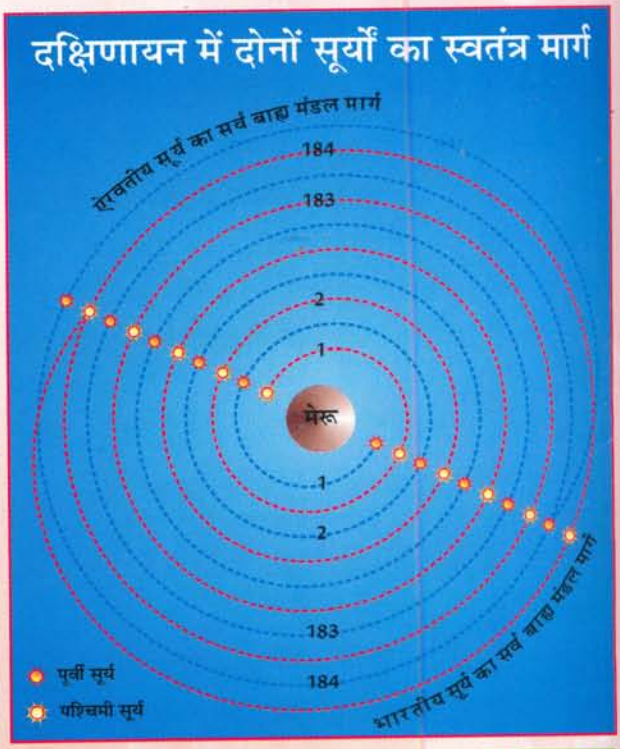

चित्र क्र. 79

भारतीय ऐरवतीय सूर्य के प्रत्यागमन मंडल

मंडल के चार विभाग	भारतीय सूर्य मंडल संख्या	ऐरावतीय सूर्य मंडल संख्या
आग्नेय कोण	92 स्वचलित	91 स्वचलित
वायव्य कोण	91 स्वचलित	92 स्वचलित
ईशान कोण	92 परचलित	91 परचलित
नैऋत्य कोण	91 परचलित	92 परचलित

सूर्य की मुहूर्त्त गति—प्रत्येक मंडल पर सूर्य एक-एक मुहूर्त्त में जितनी गति करता है, उसे मुहूर्त्त गति कहते हैं। यहाँ यह तो स्पष्ट है कि एक सूर्य एक अहोरात्रि में आधा मंडल गति करता है और दूसरा सूर्य मंडल उसी अहोरात्रि में शेष आधा मंडल पूर्ण करता है। दोनों सूर्य की एक-एक अहोरात्रि होती है, किन्तु दोनों की

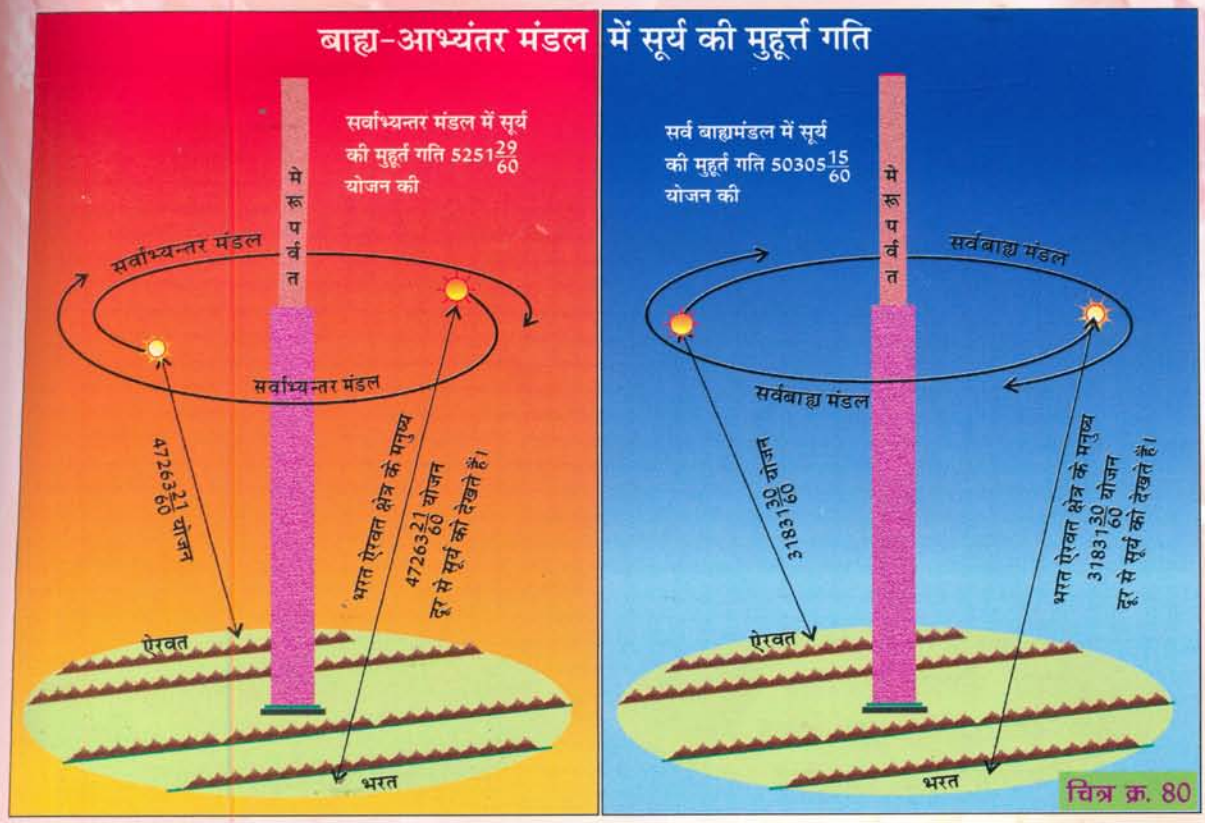

चित्र क्र. 80

मिलकर दो अहोरात्रि होती है। एक अहोरात्रि के 30 मुहूर्त्त हैं, दो अहोरात्रि के 60 मुहूर्त्त होते हैं। दो सूर्य 60 मुहूर्त्त में एक मंडल पूर्ण करते हैं। इस कारण मंडल की परिधि में 60 का भाग देने पर जो संख्या आती है, वह सूर्य की मुहूर्त्त गति होगी। जैसे सर्वाभ्यन्तर मंडल की परिधि 3,15,089 योजन है, उसे दो अहोरात्रि के 60 मुहूर्त्त से भाग देने पर (3,15,089 ÷ 60) $5251^{29}/_{60}$ योजन प्राप्त होते हैं। वह प्रथम मंडल पर सूर्य की मुहूर्त्त गति है। उस समय इस भरत क्षेत्र के मनुष्य उस सूर्य को $47,263^{2}/_{60}$ योजन दूर से देखते हैं।

आगे प्रत्येक मंडल की परिधि में वस्तुतः $17^{38}/_{60}$ और व्यवहार में 18-18 योजन की वृद्धि होती है, इस कारण सूर्य के प्रत्येक मंडल में एक अहोरात्रि (60 मुहूर्त्त) में 18-18 योजन अधिक गति करना पड़ता है। इस प्रकार सूर्य प्रत्येक मंडल में $^{18}/_{60}$ योजन की मुहूर्त्त गति बढ़ाता हुआ सर्वबाह्य मंडल पहुँचता है, तब प्रत्येक मुहूर्त्त में $50305^{15}/_{60}$ योजन क्षेत्र पार करता है। उस समय इस भरत क्षेत्र के मनुष्य उस सूर्य को $31,831^{30}/_{60}$ योजन दूर से देखते हैं। **(चित्र क्रमांक 80)**

ताप-अंधकार क्षेत्र—ताप, आतप या प्रकाश—ये तीनों शब्द एकार्थक है। जितने आकाश खंड में सूर्य प्रकाश फैलता है वह 'ताप क्षेत्र' और जहाँ सूर्य प्रकाश नहीं पहुँचता उसे 'अंधकार क्षेत्र' कहते हैं। इन दोनों तरह के क्षेत्र का आकार ऊर्ध्वमुखी धतुरा या ताड़-पुष्प के समान है, यह उपमा एकदेशीय है, वस्तुतः वह अंदर की ओर मेरु पर्वत के समीप संकड़ा अर्द्ध गोलाकार और बाहर लवण समुद्र की ओर चौड़ा है। **(चित्र क्रमांक 81)**

जम्बूद्वीप के दोनों सूर्यों का प्रकाश मेरु से लवण समुद्र तक $33,333^{1}/_{3}$ योजन पर्यन्त क्षेत्र को प्रकाशित करता है। सूर्य सर्वाभ्यन्तर मंडल में जम्बूद्वीप के $^{6}/_{10}$ भाग को दीप्त रूप में और बाह्य मंडल में $^{4}/_{10}$ भाग को मंद रूप में प्रकाशित करता है।

सूर्य सर्वाभ्यन्तर मंडल में जब 18 मुहूर्त्त का दिन होता है तब अपने सामने की दिशा के तीन-तीन कुल 6 विभागों को प्रकाशित करता है और सर्वबाह्य मंडल पर सूर्य हो और 12 मुहूर्त्त का दिन हो, तब दो-दो विभाग में दिन और शेष तीन विभाग में रात्री होती है। प्रत्येक ताप व अंधकार क्षेत्र मेरु के अंत भाग से प्रारम्भ होता है और लवण समुद्र पर पूर्ण होता है। मेरु से जम्बूद्वीप 45,000 योजन लम्बा और लवण समुद्र में 33,333 1/3 लम्बा है। 45,000+33,333 1/3 = 78,333 1/3 योजन की लम्बाई है। किसी भी मंडल पर परिभ्रमण करते सूर्य के ताप व अंधकार क्षेत्र की लम्बाई हमेशा अवस्थित रहती है। इसे 'बाहा' कहते हैं।

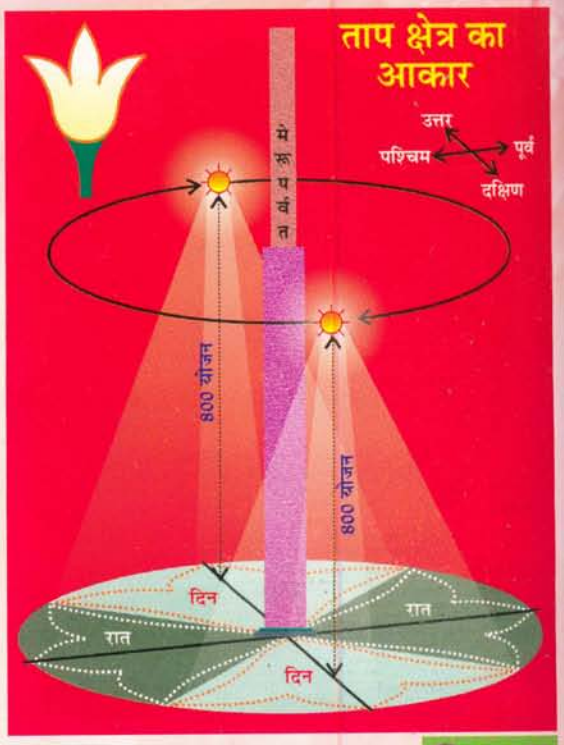

चित्र क्र. 81

ताप व अंधकार क्षेत्र की चौड़ाई परिधि का 3/10 या 2/10 प्रमाण होती है। उत्तरायण के अन्तिम दिन 3/10 क्षेत्र पर प्रकाश और दक्षिणायन के अंतिम दिन उत्कृष्ट 2/10 क्षेत्र पर प्रकाश फैलता है। मेरु पर्वत की ओर ताप-अंधकार क्षेत्र संकड़ा और लवण समुद्र की ओर विस्तृत होने के कारण चौड़ाई एक जैसी नहीं है। अत: सर्वाभ्यन्तर मंडल में परिभ्रमण के समय ताप क्षेत्र की चौड़ाई 9,486 9/10 योजन तथा अंतिम मंडल में 95,494 5/10 योजन है। अंधकार क्षेत्र की चौड़ाई सर्वाभ्यन्तर में 6,324 6/10 और अंतिम मंडल में 63,663 योजन की है। **(चित्र क्रमांक 82)**

सूर्य प्रकाश का प्रमाण—सूर्य का प्रकाश सर्वत्र एक सदृश नहीं है। वरन् ऊर्ध्व दिशा में 100 योजन तक अर्थात् अपने विमान की ध्वजा-पताका तक ही पहुँचता है। अधोदिशा मेंवह 1800 योजन भूमिभाग को प्रकाशित करता है। क्योंकि सूर्य से 800 योजन नीचे समपृथ्वीतल है और वहाँ से 1000 योजन नीचे तक पश्चिम महाविदेह क्षेत्र की 24वीं सलिलावती विजय और 25वीं वप्रा विजय गई हुई है। वहाँ तक का क्षेत्र सूर्य प्रकाश से प्रकाशित होता है। अत: 800 + 1000 = 1800 योजन अधोक्षेत्र तक सूर्य प्रकाश करता है। तिरछी दिशा में 47,263 21/60 क्षेत्र को प्रकाशित करता है। यह कथन दृष्टिपथ की अपेक्षा सर्वाभ्यन्तर मंडल में सूर्य हो, उस अपेक्षा से है। सर्व बाह्यमंडल में सूर्य होने पर 31,831 1/2 योजन तक प्रकाश फैलता है।

सूर्य मंडल का मेरु पर्वत से अंतर

सूर्य के मंडल कुल 184 हैं। उसमें प्रथम मंडल को सर्वाभ्यन्तर मंडल तथा अंतिम मंडल को सर्वबाह्य मंडल कहते हैं। सर्वाभ्यनतर मंडल जम्बूद्वीप की सीमा (जगती) से 180 योजन अंदर है। मेरू पर्वत से जम्बूद्वीप सीमा पर्यन्त 45,000 योजन है, उसमें से 180 योजन निकाल देने पर (45,000—180 =) 44,820 योजन का अंतर मेरू पर्वत से सूर्य के सर्वाभ्यनतर मंडल का है। इसी प्रकार सर्वबाह्य मंडल अर्थात् 184वाँ मंडल लवण समुद्र में 330 योजन दूर है। मेरु से जम्बूद्वीप की सीमा 45,000 योजन में 330 योजन जोड़ देने पर (45,000 + 330 =) 45,330 योजन का अंतर मेरु के दोनों ओर के सर्वबाह्य मंडल पर रहे हुए सूर्य और मेरु पर्वत का है। **(देखें चित्र 83)**

कर्क व मकर संक्रांति में सूर्य

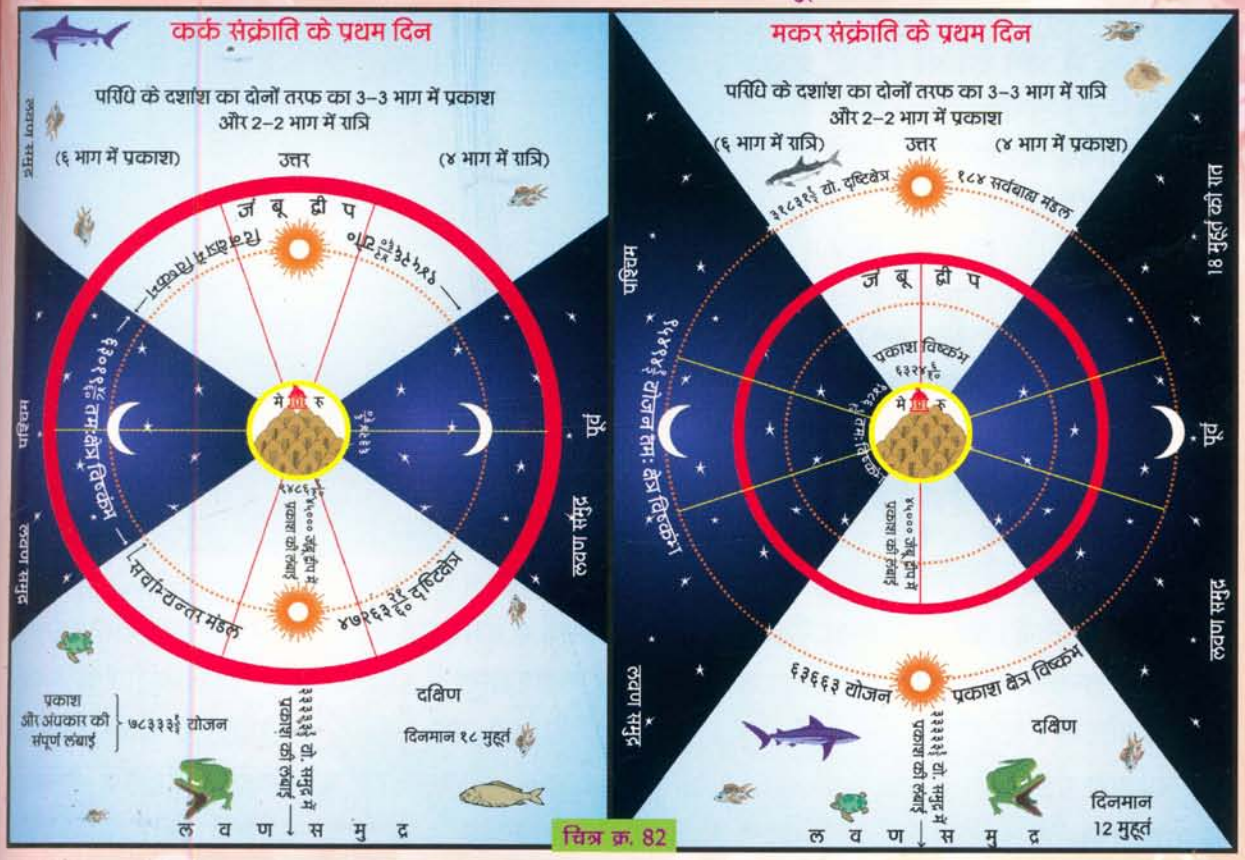

सूर्य मंडलों के मध्य अंतर

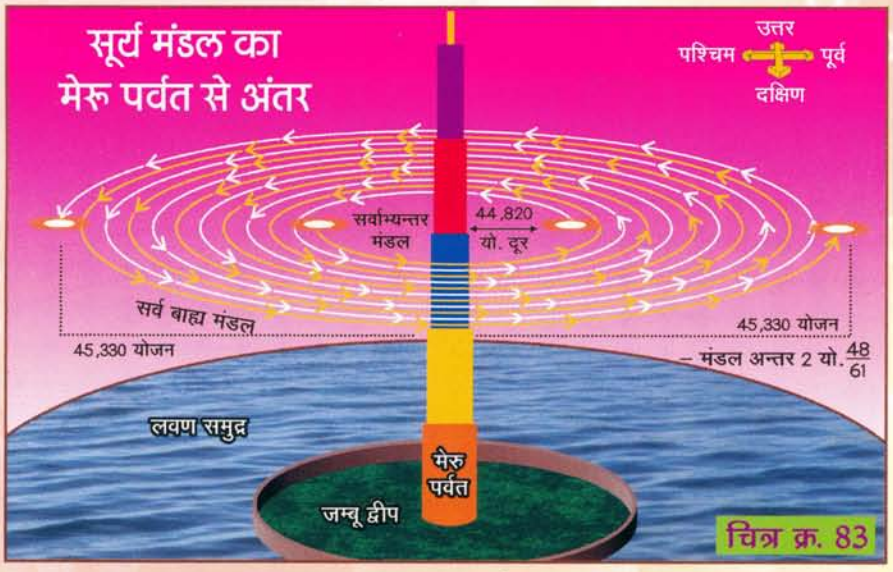

सूर्य के एक मंडल से दूसरे मंडल का अंतर दो योजन है। वह इस प्रकार है–प्रथम और अंतिम मंडल के बीच 510 योजन का अंतर है। सूर्य विमान की लम्बाई-चौड़ाई $^{48}/_{61}$ योजन है। अत: सूर्य का चार क्षेत्र $510^{48}/_{61}$ योजन हुआ। सूर्य मंडल $^{48}/_{61}$ योजनांश प्रमाण वाला है। ऐसे 184 मंडल हैं, अत: $184 \times {}^{48}/_{61}$ योजनांश = $144^{48}/_{61}$ योजन प्रमाण मंडलों का क्षेत्र होता है। सूर्य मंडल के $510^{48}/_{61}$ योजन के भ्रमण क्षेत्र में से $144^{48}/_{61}$ योजन कम करने पर

$(510\frac{48}{61} - 144\frac{48}{61}) = 366$ योजन शेष रहते हैं। उनको सूर्य के आंतरे 183 से भाग देने पर (366 ÷ 183 = 2) दो योजन प्राप्त होता है। यही प्रत्येक मंडल के मध्य का अंतर हुआ। **(चित्र क्रमांक 84)**

सूर्य मण्डल के मध्य अंतर

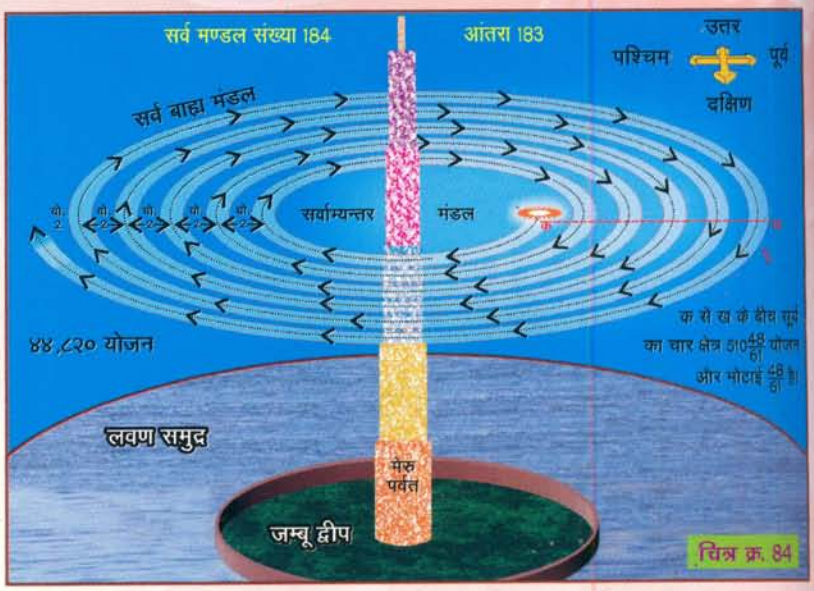

दो सूर्यों के मध्य अंतर

पूर्व-पश्चिम या उत्तर-दक्षिण, दोनों ओर जम्बूद्वीप की सीमा से सर्वाभ्यन्तर मंडल 180-180 योजन अंदर है। दोनों ओर की जोड़ (180 + 180 =) 360 योजन है। जम्बूद्वीप के 1 लाख योजन व्यास में से 360 निकाल देने पर (1,00,000 − 360 =) 99,640 योजन प्राप्त होता है। यह सर्वाभ्यन्तर मंडल में रहे हुए एक सूर्य से दूसरे सूर्य की दूरी है अथवा सर्वाभ्यन्तर प्रथम मंडल की लम्बाई-चौड़ाई है। इसी प्रकार सर्वबाह्य मंडल लवण समुद्र में 330 योजन दूर है। जम्बूद्वीप के व्यास में दोनों ओर के (330 + 330 =) 660 योजन जोड़ देने पर (1,00,000 + 660 =) 1,00,660 योजन होते हैं। यह सर्वबाह्य मंडल में रहे हुए दो सूर्यों के मध्य की दूरी है अथवा सर्वबाह्य मंडल की लम्बाई-चौड़ाई है। **(चित्र क्रमांक 85)**

उदय-अस्त के समय सूर्य का लाल वर्ण

सूर्य अपने मण्डलाकार क्षेत्र में पूर्व से दक्षिण, दक्षिण से पश्चिम, पश्चिम से उत्तर और उत्तर से पूर्व की ओर मेरू की प्रदक्षिणा करता है। सूर्य उदय और अस्त के समय विदिशा में होता है। अत: भरत क्षेत्र में जब सूर्य का उदय होता है, तब वह पूर्व और दक्षिण के मध्य आग्नेय कोण में होता है। उस समय पूर्व महाविदेह में वह सूर्य अस्त हुआ कहा जाता है और भरत क्षेत्र में उदय हुआ कहा जाता है। उदय के समय सूर्य लाल वर्ण का दिखाई देता है, इसी प्रकार अस्त के समय भी वह लाल वर्ण का ही दिखाई देता है। इसका यह अर्थ नहीं कि सूर्य का वर्ण लाल है। यदि सूर्य का वर्ण लाल होता तो दिन में भी वह उसी वर्ण का दिखाई दे। वस्तुत: सूर्य का प्रकाश श्वेत है। किन्तु विदिशा में स्थित सूर्य उदय और अस्त के समय निषध पर्वत के समीप होता है, निषध पर्वत पूर्व से पश्चिम तक लम्बा और लाल वर्ण का है, उसकी प्रतिच्छाया सूर्य प्रकाश पर पड़ने के कारण उदय और अस्त के समय सूर्य लाल दिखाई देता है। यह कथन भरत क्षेत्र की अपेक्षा है। ऐरावत क्षेत्र में सूर्य नीलवन्त पर्वत के पास उदित होता है। नीलवन्त पर्वत का वर्ण नीला है, उसकी प्रतिच्छाया सूर्य पर पड़ने से ऐरावत क्षेत्र में उदय और अस्त के समय वह नीला दृष्टिगत होता है। **(चित्र क्रमांक 86)**

उदय-अस्त के समय सूर्य का लालवर्ण

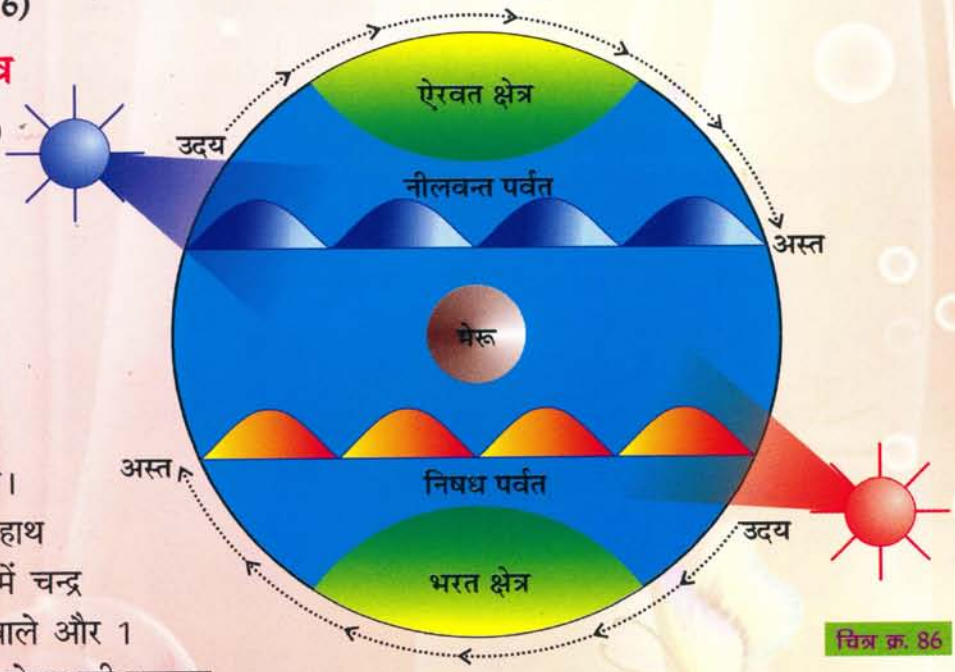

चित्र क्र. 86

चन्द्र ज्योतिष्क देव

सूर्य विमान से 80 योजन एवं समभूतला पृथ्वी से 880 योजन ऊपर चन्द्र के विमान हैं। ये एक योजन के 61 भाग में से 56 भाग लम्बे-चौड़े और 28 भाग ऊँचे स्फटिक रत्नमय हैं। चन्द्र विमानवासी देव 7 हाथ की काया वाले मुकुट में चन्द्र चिह्न को धारण करने वाले और 1 लाख वर्ष अधिक 1 पल्योपम की उत्कृष्ट आयु वाले होते हैं। इनके देवियों की आयु जघन्य पाव पल्योपम की उत्कृष्ट 50 हजार वर्ष अधिक आधा पल्योपम है। चन्द्र विमान को भी 16,000 देव उठाते हैं।

चन्द्र विमान की पीठिका के नीचे स्फटिकमय मृग का चिह्न निर्मित है। अत: पूर्णमासी के चाँद में '**मृग**' का चिह्न दिखाई देता है। चन्द्र विमान के पृथ्वीकायिक जीव उद्योत नामकर्म के प्रभाव से शीतल किरणों वाले हैं। **(चित्र क्रमांक 87)**

चन्द्र मंडल एवं उनकी संख्या

चन्द्रमा के मंडल 15 हैं, उसमें 5 चन्द्र मंडल जंबूद्वीप के 180 योजन क्षेत्र में तथा 10 चन्द्र मंडल लवण समुद्र के 330 योजन क्षेत्र में हैं। समपृथ्वी से 880 योजन ऊँचे रहकर चन्द्र मेरु की प्रदक्षिणा करते हैं। चन्द्र की परिभ्रमण गति सूर्य की अपेक्षा मंद है, अत: उसके मंडल दूर-दूर हैं। चन्द्र का सर्वाभ्यन्तर मंडल जम्बूद्वीप में मेरूपर्वत से 44,820 योजन दूर है और सर्वबाह्य मंडल मेरुपर्वत से 45,330 योजन दूर है। वह इस प्रकार है—

जम्बूद्वीप की सीमा से मेरु का 45,000 योजन का अंतर है और चन्द्र का सर्वाभ्यन्तर मंडल जम्बूद्वीप की सीमा से 180 योजन अंदर है। अत: (45,000—180 =) 44,820 योजन दूर चन्द्र का पहला मंडल है और चन्द्र का सर्वबाह्य मंडल लवण समुद्र में 330 योजन दूर है। अत: मेरु से जम्बूद्वीप की सीमा में चन्द्र का लवण समुद्रगत चार क्षेत्र जोड़ने पर (45,000 + 330 =) 45,330 योजन का अंतर मेरु और चन्द्र के मध्य का होता है।

चन्द्र मंडल की लम्बाई-चौड़ाई व अंतर

प्रत्येक मंडल पर दोनों चन्द्र एक-दूसरे के आमने-सामने होते हैं। अत: चन्द्र मंडल की लम्बाई-चौड़ाई जितनी होगी उतना ही अंतर दोनों चन्द्र के बीच रहेगा।

सर्वाभ्यन्तर मंडल जम्बूद्वीप की सीमा से चारों दिशाओं में 180-180 योजन है, दोनों मिलकर 360 योजन अंदर है। जम्बूद्वीप के 1 लाख योजन व्यास में से 360 निकाल देने पर (1,00,000—360 =)99,640 योजन प्राप्त होता है। यह प्रथम मंडल की लम्बाई-चौड़ाई और दोनों चन्द्र के मध्य का अंतर है।

एक मंडल से दूसरे मंडल में गति करते हुए प्रत्येक मंडल में $36^{25}/_{61}$ योजन का अंतर दोनों ओर से बढ़ता है। अत: ($36^{25}/_{61}$, $^{4}/_{7} \times 2$) $72^{51}/_{61}$, $^{1}/_{7}$ योजन की वृद्धि प्रत्येक मंडल के व्यास में होती है। जब सर्वबाह्य मंडल में जाता है तब अंतिम मंडल की लम्बाई-चौड़ाई $1,00,659^{45}/_{61}$ योजन प्रमाण होती है।

चन्द्र की मुहूर्त्त गति

प्रत्येक चन्द्र एक अर्धमण्डल को 1 अहोरात्र अधिक 1 मुहूर्त्त (31 मुहूर्त्त 11½/221 मुहूर्तांश) में पूर्ण करते हैं। दोनों चन्द्र मिलकर एक मंडल को 2 अहोरात्र और $2^{23}/_{221}$ मुहूर्तांश अर्थात् $62^{23}/_{221}$ मुहूर्त्त में पूर्ण करते हैं। सर्वाभ्यन्तर मंडल की परिधि 3,15,089 योजन है, उसे $62^{23}/_{221}$ मुहूर्त्त से भाग देने पर $5,073^{7744}/_{13725}$ योजन आते हैं। अत: चन्द्र की प्रथम मंडल में इतना ही क्षेत्र एक मुहूर्त्त में पार करता है। प्रथम मंडल पर परिभ्रमण करते हुए चन्द्र को भरत क्षेत्र के मनुष्य $47,263^{21}/_{60}$ योजन दूर से देखते हैं।

जब चन्द्र सर्वबाह्य मंडल पर परिभ्रमण करता है, तब वह प्रत्येक मुहूर्त्त में साधिक 5,125 योजन क्षेत्र पार करता है और भरत क्षेत्र के मनुष्यों को 31,831 योजन दूर से दिखता है।

चंद्र मंडल की हानि-वृद्धि एवं तिथियों की व्यवस्था—जैसे सम्पूर्ण जम्बूद्वीप में दिन और रात्रि का विभाग करने वाले दो सूर्य हैं, वैसे ही तिथियों की व्यवस्था करने वाले दो चन्द्र है। इनमें सूर्य के बिम्ब की हानि-वृद्धि प्रतिदिन नहीं होती किन्तु चन्द्रबिम्ब की हानि-वृद्धि हर रोज होती है। जैसे कि दूज के दिन चन्द्रमा का बिम्ब केवल धनुष के आकार की एक पतली लकीर जैसा होता है। उसके बाद क्रमशः वृद्धि को प्राप्त होता हुआ शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा के दिन सम्पूर्ण चन्द्र मंडल दिखाई देता है। **यद्यपि मूल स्वरूप में तो चन्द्रमा सदा पूर्ण मंडल का ही होता है। उसमें कोई घट-बढ़ नही होती। किंतु आवरण के कारण वह सदा घटता-बढ़ता दिखाई देता है।** (चित्र क्रमांक 88)

चन्द्र मंडल की शुक्ल पक्ष में अनुक्रम से वृद्धि होना और कृष्ण पक्ष में हानि होने का कारण '**राहू**' के विमान का आवरण और अनावरण मात्र है। राहू दो प्रकार के हैं—**(1) नित्य राहू और (2) पर्व राहू।** नित्य राहू तिथि, पक्ष, मास आदि का कारण है और पर्व राहू चंद्रग्रहण-सूर्यग्रहण का।

(1) नित्य राहू—राहू का विमान कृष्णवर्ण का है। यह विमान स्वाभाविक रूप से ही चन्द्रमा के साथ निरंतर होता है। चन्द्र के विमान के नीचे चार अंगुल दूर चलता हुआ चन्द्रमा की एक-एक कला को ढँकता जाता है। अंतिम दिन की 16 कला में जो एक कला शेष रह जाती है उसी का नाम '**अमावस्या**' है। यही '**कृष्ण पक्ष**'

पृथ्वी पर चन्द्रदर्शन एवं तिथियाँ

चित्र क्र. 88

है। फिर वही राहू प्रतिपदा के दिन से चन्द्रमा के प्रत्येक मार्ग में एक-एक कला छोड़ते हुए पूर्णिमा को 15 कलाएँ छोड़ देता है तब चन्द्रमा पूर्ण दिखाई देता है। उस दिन 'पूर्णिमा' हो जाती है तब इस पूरे पक्ष को '**शुक्ल पक्ष**' कहा जाता है। **(चित्र क्रमांक 89)**

इसी प्रकार तिथियों की व्यवस्था बनती है। चन्द्रविमान के 16 भाग करने पर उसमें प्रतिदिन जब राहू एक-एक भाग को आवृत्त करता है, वह एक भाग तिथि कहलाती है। अथवा जितने काल में चन्द्रमा का 16वाँ भाग आवृत्त या अनावृत्त हो, उस काल प्रमाण को एक तिथि समझनी चाहिये। ऐसे 15 तिथि का एक '**पक्ष**' और 30 तिथि का एक '**चन्द्रमास**' होता है।

(2) पर्व राहू—यह राहू किसी-किसी समय ही अपने विमान के द्वारा चन्द्र या सूर्य के विमान को ढँकता है। उस समय संसार में '**ग्रहण लगा**'—ऐसा कहा जाता है। यह पर्व राहू जघन्य 6 मास में चन्द्र और सूर्य को ढँकता है। अर्थात् अपने विमान की छाया से चंद्र और सूर्य के विमान को आच्छादित करता है। उत्कृष्ट से चन्द्र को 42 मास में और सूर्य की 48 वर्ष में आच्छादित करता है। **(चित्र क्रमांक 90)**

चित्र क्र. 89

यद्यपि यह राहू का विमान आधे योजन का है और चन्द्र विमान 56/61 योजन प्रमाण अर्थात् लगभग दुगुना है, तो वह पूर्ण रूप से चन्द्रमा को कैसे आच्छादित कर सकता है? इसका समाधान यह है कि जैसे धुएँ से पूरा आकाश मंडल व्याप्त हो जाता है उसी प्रकार राहू की अत्यन्त श्याम कांति के कारण चन्द्र धरती के लोगों को संपूर्ण आच्छादित हुआ दिखाई देता है।

चन्द्रग्रहण पूर्णिमा के दिन होता है और सूर्यग्रहण अमावस्या के दिन होता है। जब यह ग्रहण अमुक प्रमाण में अमुक रीति से होता है, तब उसे '**खग्रास**' (खण्डग्रास) कहा जाता है।

जब भरत क्षेत्र में चन्द्र या सूर्यग्रहण होता है तब संपूर्ण अढ़ाई द्वीप में रहे 132 चन्द्र और 132 सूर्यों को भी ग्रहण एक साथ में ही होता है। क्योंकि मनुष्य क्षेत्र में अमुक नक्षत्र का योग हो तब ग्रहण होता है। इससे संपूर्ण चन्द्र-सूर्य का एक ही नक्षत्र के साथ योग सभी स्थानों पर समश्रेणी में व्यवस्थित होने से सभी का ग्रहण भी एक साथ होता है। यह ग्रहण किसी भी क्षेत्र में हो सकता है। ग्रहण की शुभाशुभता से लोगों में भी सुख-दु:ख आदि का प्रभाव कैसा होगा, इस संबंध में भविष्य का विचार ज्योतिष शास्त्रों के द्वारा किया जाता है।

चित्र क्र. 90

युगलिक क्षेत्रों में भी चन्द्रादि की गति होने से वहाँ भी ग्रहण तो संभव है, किन्तु उनके महा पुण्य एवं क्षेत्र प्रभाव तथा ज्योतिरांग कल्पवृक्षों के कारण ग्रहण दर्शन के अभाव से उनको कोई उपद्रव नहीं होता। इसकी विशेष जानकारी जीवाभिगम सूत्र से जाननी चाहिए।

सूर्य ग्रहण और चन्द्र ग्रहण जानने की सरल रीति—सूर्य के नक्षत्र में ही अमावस होती है और उसी दिन शाम को एकम/प्रतिपदा तिथि आ जाय तो उस दिन अवश्य सूर्य ग्रहण होता है। इसी प्रकार कृष्णपक्ष की तृतीया को जो नक्षत्र होता है, उसी नक्षत्र में पूर्णमासी आ जाय तो चन्द्र ग्रहण अवश्य होता है। दोहे में कहा भी है—

जे नक्षत्रे रवि तपे, अमावस्या होय। पड़वा सांझे जो मिले, सूर्यग्रहण तब होय॥1॥ मास कृष्ण की तीज अंधारी, होय ज्योतिषी लेय विचारी। ते नक्षत्रे जे होय पूनम ग्रहण होय न रखीस वहेम॥2॥

जैन ज्योतिष में सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहण कब-कब होगा, इसे बताने वाले हजारों वर्षों के केलेण्डर तैयार हुए हैं।

चन्द्र मण्डल और सूर्य मण्डल में अन्तर

(1) चन्द्र के 15 मण्डल हैं। जबकि सूर्य के 184 मण्डल है।

(2) चन्द्र के 15 मण्डलों में से 5 मण्डल जम्बूद्वीप में और 10 मण्डल लवण समुद्र में है। जबकि सूर्य के 184 मण्डलों में से 65 मण्डल जम्बूद्वीप में है और 119 मण्डल लवण समुद्र में पड़ते हैं।

(3) चन्द्र विमान की अपेक्षा सूर्य विमान की गति शीघ्र है। इस कारण चन्द्र मण्डल की अपेक्षा सूर्य मण्डल नजदीक-नजदीक हैं।

(4) चन्द्र और सूर्य दोनों के मण्डल क्षेत्र (विचरण क्षेत्र) 510 योजन 48/61 भाग प्रमाण हैं। उसमें 180 योजन प्रमाण संचार क्षेत्र जम्बू द्वीप में हैं और 330-48/61 योजन क्षेत्र लवण समुद्र में हैं।

(5) सूर्य मण्डलों में दक्षिणायन और उत्तरायण ये दो मुख्य विभाग हैं। चन्द्र मण्डलों में भी ये दो विभाग हैं, किन्तु सूर्य के समान नही, क्योंकि व्यवहार में भी नहीं आते।

(6) चन्द्र मण्डल 15 होने से उसके बीच अन्तर 14 होते है और सूर्य-मण्डलों की संख्या 184 होने से उसके अन्तर 183 हैं।

(7) चन्द्र मण्डल के एक अन्तर का प्रमाण $35^{30/61}$ योजन है। जबकि सूर्य मण्डल के 1 अन्तर का प्रमाण दो योजन है।

(8) चन्द्र का मण्डल 56/61 योजन प्रमाण विष्कम्भ वाला है। जबकि सूर्य मण्डल 48/61 योजन प्रमाण है।

नक्षत्र ज्योतिष्क व उनके देव

चन्द्र विमान से 4 योजन ऊपर नक्षत्रमाला है। जो समभूतला पृथ्वी से 884 योजन (28,28,800 मील) ऊपर है। इनके विमान पाँचों वर्णों के रत्नमय एक-एक कोस के लम्बे-चौड़े और आधे कोस ऊँचे हैं। इनमें रहने वाले देवों की देह सात हाथ की आयु जघन्य पाव पल्योपम उत्कृष्ट आधे पल्योपम है। देवियों की आयु जघन्य पाव पल्योपम की उत्कृष्ट पाव पल्योपम से कुछ अधिक है।

नक्षत्र मंडल की नियत व्यवस्था—नक्षत्रों के आठ मंडल हैं। जम्बूद्वीप के 180 योजन क्षेत्र में 2 और लवण समुद्र के 330 योजन क्षेत्र में 6—इस प्रकार कुल नक्षत्र मंडल आठ हैं। इनके मंडल का आकार वर्तुल गोल है। ये सभी नक्षत्र अपने-अपने नियत मंडल पर ही परिभ्रमण करते हैं। एक मंडल स्थान छोड़कर अन्य

मंडल पर गमन नहीं करते। अर्थात् प्रत्येक नक्षत्र के आठ-आठ मंडल नहीं है, परन्तु अमुक नक्षत्र का अमुक मंडल है, वह इस प्रकार है—

मंडल	स्थान	नक्षत्र
प्रथम मंडल	जम्बूद्वीप	अभिजित, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषक, पू. भा., उ. भा., रेवती, अश्विनी, भरणी, पू. फ., उ. फा., स्वाति = 12 नक्षत्र
दूसरा मंडल	जम्बूद्वीप	पुनर्वसु और मघा = 2 नक्षत्र
तीसरा मंडल	लवण समुद्र	कृतिका
चौथा मंडल	लवण समुद्र	चित्रा, रोहिणी = 2 नक्षत्र
पाँचवाँ मंडल	लवण समुद्र	विशाखा
छठवाँ मंडल	लवण समुद्र	अनुराधा
सातवाँ मंडल	लवण समुद्र	ज्येष्ठा
आठवाँ मंडल	लवण समुद्र	आर्द्रा, मृगशिरा, पुष्य, आश्लेषा, मूल, हस्त, पूर्वाषाढ़ा और उत्तराषाढ़ा = 8 नक्षत्र

नक्षत्र मंडल और मेरु के मध्य अंतर—जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत से सर्वाभ्यन्तर नक्षत्र मंडल 44,820 योजन तथा सर्वबाह्य मंडल 45,330 योजन दूर है। नक्षत्र मंडल, चन्द्र से 4 योजन ऊपर होने के कारण चन्द्र मंडल के समान ही नक्षत्र मंडल का मेरु से उक्त अंतर है। नक्षत्र मंडल की लम्बाई, चौड़ाई, परिधि आदि भी इसी प्रकार चन्द्र मंडल के समान ही (99,640 यो. प्रथम मंडल तथा 1,00,660 योजन सर्वबाह्य मंडल) समझना चाहिए।

नक्षत्रों का परिभ्रमण क्षेत्र—आभ्यन्तर मंडल में 12 नक्षत्र हैं। उनमें अभिजित नक्षत्र का विमान मेरु के सबसे निकट है। मूल नक्षत्र सर्वबाह्य मंडल के 8 नक्षत्रों की अपेक्षा लवण समुद्र की तरफ अधिक बाहर है। स्वाति नक्षत्र ऊँचाई में सबसे ऊपर और भरणी नक्षत्र का भ्रमण क्षेत्र सर्व नक्षत्रों की अपेक्षा कुछ नीचे है।

कुल, उपकुल और कुलोपकुल नक्षत्र

जिन नक्षत्रों द्वारा महीनों की परिसमाप्ति होती है, वे माससदृश नाम वाले नक्षत्र '**कुल**' कहे जाते हैं। जो कुलों के अधस्तन होते हैं, कुलों के समीप होते हैं, वे '**उपकुल**' कहे जाते हैं। वे भी **मास समापक** होते हैं। जो कुलों तथा उपकुलों के अधस्तन होते हैं, वे '**कुलोपकुल**' कहे जाते हैं। जैसे श्रावणी पूर्णिमा के दिन धनिष्ठा कुल, श्रवण उपकुल और अभिजित कुलोपकुल नक्षत्र हैं। भादवा की पूर्णिमा को उत्तरभाद्रपद कुल, पूर्व भाद्रपद उपकुल और शतभिषा कुलोपकुल नक्षत्र है। आगे भी इसी प्रकार जानना।

पूर्णिमा और अमावस्या के नक्षत्रों का संयोग

पूर्णिमा क्रम	पूर्णिमा	अमावस क्रम	अमावस्या	कुल	उपकुल	कुलोपकुल
1	श्रावण	7	माघ	3. घनिष्ठा	2. श्रवण	1. अभिजित
2	भाद्रपद	8	फाल्गुन	6. उ. भा.	5. पू. भा.	4. शतभिषक
3	आसोज	9	चैत्र	8. अश्विनी	7. रेवती	—
4	कार्तिक	10	वैशाख	10. कृतिका	9. भरणी	—
5	मृगशीर्ष	11	ज्येष्ठ	12. मृगशीर्ष	11. रोहिणी	—
6	पौष	12	आषाढ़	15 पुष्य	14. पुनर्वसु	13. आर्द्रा
7	माघ	1	श्रावण	17 मघा	16 अश्लेषा	—
8	फाल्गुन	2	भाद्रपद	19. उ. फा.	18. पू. फा.	—
9	चैत्र	3	आसोज	21. चित्रा	20. हस्त	—
10	वैशाख	4	कार्तिक	23. विशाखा	22. स्वाति	—
11	ज्येष्ठ	5	मृगशीर्ष	26. मूल	25. ज्येष्ठा	24. अनुराधा
12	आषाढ़	6	पौष	28. उत्तराषाढ़ा	27. पूर्वाषाढ़ा	—

प्रस्तुत कोष्ठक से यह सिद्ध होता है कि जिस मास की पूर्णिमा को जिस नक्षत्र का योग होता है, उस मास की अमावस को उस मास से सातवें मास की पूर्णिमा के नक्षत्र का योग होता है। जैसे—श्रावण मास से सातवाँ माघ मास है, तो माघ की पूर्णिमा को मघा और अश्लेषा नक्षत्र का योग होता है। इन दोनों नक्षत्रों का श्रावणी अमावस को योग होता है। इसी प्रकार जब उपकुल संज्ञक नक्षत्र पूर्णिमा को समाप्त करता है, तब उपकुल से पूर्व के श्रवणादि नक्षत्र अनुक्रम से अमावस को समाप्त करते हैं। जब कुलोपकुल संज्ञक नक्षत्र पूर्णिमा को समाप्त करते हैं, तब उपकुल संज्ञक नक्षत्रों से पूर्व के अभिजित आदि नक्षत्र अमावस्या को समाप्त करते हैं।

चन्द्र के मार्ग में नक्षत्रों का संचार—चन्द्र की 15 गलियाँ हैं। उनमें से 8 गलियों में 28 नक्षत्र संचार करते हैं। यथा—1. **चन्द्र की प्रथम वीथी** में अभिजित्, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वा भाद्रपद, उत्तरा भाद्रपद, रेवती, अश्विनी, भरणी, स्वाति, पूर्वाफाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनी। 2. **तृतीय वीथी**में पुनर्वसु और मघ, 3. **छठी वीथी** में कृतिका, 4. **सातवीं वीथी** में रोहिणी और चित्रा, 5. **आठवीं** में विशाखा, 6. **दसवीं** में अनुराधा, 7. **ग्यारहवीं** में ज्येष्ठा, तथा 8. **पन्द्रहवीं (अन्तिम) वीथी** में हस्त, मूल, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा, मृगशीर्षा, आर्द्रा, पुष्य और आश्लेषा में आठ नक्षत्र संचार करते हैं। **(चित्र क्रमांक 91)**

मनुष्य क्षेत्र में सभी नक्षत्र क्रम-क्रम से चन्द्र के साथ संयोग करते हैं, किन्तु मनुष्य क्षेत्र के बाहर जो नक्षत्र जहाँ हैं, वहीं रहता है, अतः वहाँ चन्द्र का अभिजित् नक्षत्र के साथ और सूर्य का पुष्य नक्षत्र के साथ सदा योग रहता है।

चंद्र के मार्ग में नक्षत्रों का संचार

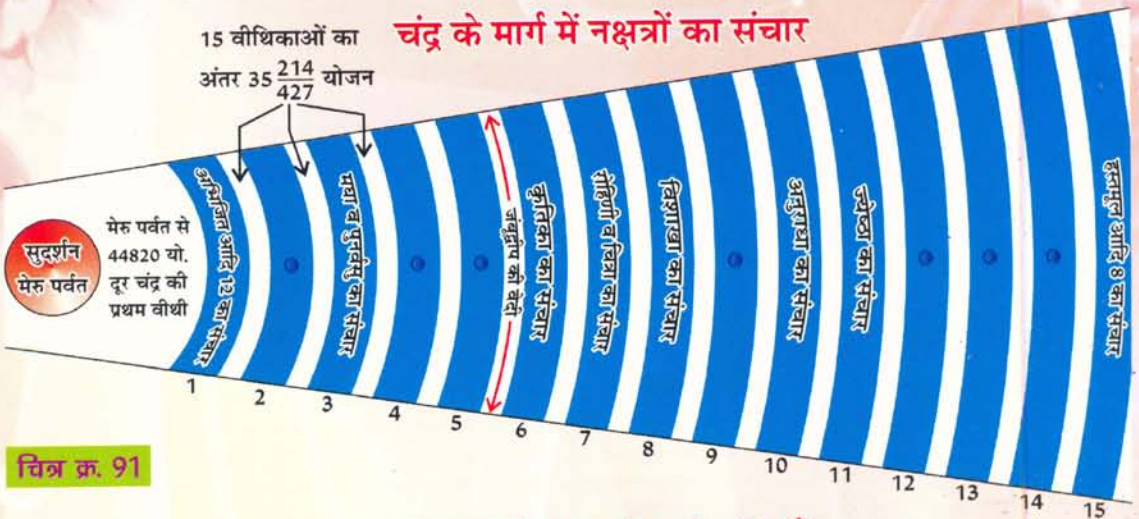

चित्र क्र. 91

मास नक्षत्र और उनकी अहोरात्रियाँ

	मास नाम	मास की नक्षत्र संख्या	अहोरात्र	
1.	श्रावण (अभिनंदन)	उत्तराषाढ़ा	14 अहोरात्र	
		अभिजित	7 अहोरात्र ←	ये सात नक्षत्र पूर्व दिशा के द्वार वाले नक्षत्र कहे गये हैं। इन नक्षत्रों में पूर्व दिशा में जाना शुभ माना गया है।
		श्रवण	8 अहोरात्र	
		धनिष्ठा	1 अहोरात्र	
2.	भाद्रपद (सुप्रतिष्ठ)	धनिष्ठा	14 अहोरात्र	
		शतभिषा	7 अहोरात्र	
		पूर्वा भाद्रपद	8 अहोरात्र	
		उत्तरा भाद्रपद	1 अहोरात्र	
3.	आसोज (विजय)	उत्तरा भाद्रपद	14 अहोरात्र	
		रेवती	15 अहोरात्र ←	
		अश्विनी	1 अहोरात्र ←	
4.	कार्तिक (प्रीतिवर्धन)	अश्विनी	14 अहोरात्र	ये सात नक्षत्र दक्षिण दिशा द्वार वाले हैं। दक्षिण दिशा में ये शुभफलदायी हैं।
		भरणी	15 अहोरात्र	
		कृतिका	1 अहोरात्र	
5.	मृगशिर (श्रेयांस)	कृतिका	14 अहोरात्र	
		रोहिणी	15 अहोरात्र	
		मृगशीर्ष	1 अहोरात्र	
6.	पौष (शिव)	मृगशीर्ष	17 अहोरात्र	
		आर्द्रा	8 अहोरात्र	
		पुनर्वसु	7 अहोरात्र ←	
		पुष्य	1 अहोरात्र ←	

7.	माघ (शिशिर)	पुष्य	14 अहोरात्र	
		अश्लेषा	15 अहोरात्र	
		मघा	1 अहोरात्र	
8.	फाल्गुन (हेमन्त)	मघा	14 अहोरात्र	ये सात नक्षत्र पश्चिम दिशा द्वार वाले हैं। पश्चिम दशा में ये शुभफलदायी हैं।
		पूर्वा फाल्गुनी	15 अहोरात्र	
		उत्तरा फाल्गुनी	1 अहोरात्र	
9.	चैत्र (वसंत)	उत्तरा फाल्गुनी	14 अहोरात्र	
		हस्त	15 अहोरात्र	
		चित्रा	1 अहोरात्र, ←	
10.	वैशाख (कुसुम संभव)	चित्रा	14 अहोरात्र	
		स्वाति	15 अहोरात्र ←	
		विशाखा	1 अहोरात्र	
11.	ज्येष्ठ (निदाघ)	विशाखा	14 अहोरात्र	ये सात नक्षत्र उत्तर द्वार वाले हैं। उत्तर दिशा में ये शुभफलदायी है।
		अनुराधा	8 अहोरात्र	
		ज्येष्ठा	7 अहोरात्र	
		मूल	1 अहोरात्र	
12.	आषाढ़ ((वनविरोह)	मूल	14 अहोरात्र	
		पूर्वाषाढ़ा	15 अहोरात्र	
		उत्तराषाढ़ा	1 अहोरात्र ←	

सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, ऋतु और अभिवर्धित—इस प्रकार व्यवहार योग्य ये पाँस मास कहे गये हैं। इनमें एक युग (पाँच वर्ष) में कितने मास, मुहूर्त्त, दिन और अहोरात्र होते हैं, उसे इस चार्ट से समझें—

एक युग में	मास	एक मास के मुहूर्त्त	एक वर्ष में दिन	एक मास में अहोरात्र	एक युग के दिन
नक्षत्र	67	$819\frac{27}{67}$	$327\frac{51}{67}$	$27\frac{21}{67}$	1,830
चन्द्र	62	$885\frac{30}{62}$	$354\frac{12}{67}$	$29\frac{32}{62}$	1,830
सूर्य	60	915	366	$30\frac{1}{2}$	1,830
ऋतु	61	900	360	30	1,830
अभिवर्धित	57 मास 7 दिवस $11\frac{23}{62}$ मुहूर्त्त	$953\frac{17}{62}$	383 $21\frac{18}{62}$	31 $29\frac{17}{62}$	$1,918\frac{34}{62}$

नक्षत्रों की आकृति व उनके तारों की संख्या

जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति (सूत्र 188-192) के अनुसार नक्षत्रों के देवता व गोत्र							
क्रम	नक्षत्र	देवता	गोत्र	क्रम	नक्षत्र	देवता	गोत्र
1.	अभिजित्	ब्रह्मा	मोद्गलायन	15.	पुष्य	वृहस्पति	अवमज्जायन
2.	श्रवण	विष्णु	सांख्यायन	16.	अश्लेषा	सर्प	माण्डव्यायन
3.	धनिष्ठा	वसु	अग्रभाव	17.	मघा	पितृ	पिंगायन
4.	शतभिषक्	वरुण	कण्णिलायन	18.	पूर्वाफाल्गुनी	भग	गोवल्लायन
5.	पूर्वभाद्रपदा	अज	जातुकर्ण्ण	19.	उत्तराफाल्गुनी	अर्यमा	काश्यप
6.	उत्तरभाद्रपदा	अभिवृद्धि	धनंजय	20.	हस्त	सविता	कौशिक
7.	रेवती	पूषा	पुष्यायन	21.	चित्रा	त्वष्टा	दार्भायन
8.	अश्विनी	अश्व	अश्वायन	22.	स्वाति	वायु	चामरच्छायन
9.	भरणी	यम	भार्गवेश	23.	विशाखा	इन्द्राग्नि	शुंगायन
10.	कृत्तिका	अग्नि	अग्निवेश्य	24.	अनुराधा	मित्र	गोलव्यायन
11.	रोहिणी	प्रजापति	गौतम	25.	ज्येष्ठा	इन्द्र	चिकित्सायन
12.	मृगशिर	सोम	भारद्वाज	26.	मूल	नैर्ऋत	कात्यायन
13.	आर्द्रा	रुद्र	लोहित्यायन	27.	पूर्वाषाढा	आप	वाभ्रव्यायन
14.	पुनर्वसु	अदिति	वासिष्ठ	28.	उत्तराषाढा	विश्वदेव	व्याघ्रापत्य

ग्रह ज्योतिष्क व उनके देव

नक्षत्र माला से 4 योजन ऊपर अर्थात् समभूतला पृथ्वी से 888 योजन (888 × 3,200 = 28,41,600 मील) ऊपर ग्रह के विमान हैं। ये विमान दो कोस लम्बे-चौड़े, एक कोस ऊँचे पंचवर्णीय हैं। इसमें उत्पन्न होने वाले देवों के शरीर की ऊँचाई सात हाथ की तथा आयुष्य जघन्य पाव पल्योपम उत्कृष्ट एक पल्योपम का है। इनकी देवियों की जघन्य पाव पल्योपम उत्कृष्ट आधे पल्योपम की आयु है। चन्द्र-सूर्य के मण्डल के समान ग्रहों के मंडल नहीं होते। ग्रह 88 हैं। ये मेरु पर्वत के चारों ओर अनियमित रीति से गति करते हैं। कभी ये दूर चले जाते हैं, कभी निकट आ जाते हैं, कभी थोड़े पीछे की ओर गति कर पुनः आगे गति करने लगते हैं। अतः शास्त्रों में इनकी नियमित गति नहीं मिलती, तथापि, राहु, केतु, मंगल आदि ग्रह थोड़ी नियमित गति वाले होने से उनका गणित मिलता है।

समभूतला पृथ्वी से 888 योजन ऊपर सर्वप्रथम हरितरत्नमय बुध ग्रह है। बुध से 3 योजन की ऊँचाई ऊपर स्फटिक रत्नमय शुक्र ग्रह है। शुक्र से 3 योजन ऊपर पीतरत्नमय गुरु ग्रह हैं गुरु से 3 योजन ऊपर रक्तमय मंगल ग्रह है। मंगल से 3 योजन ऊपर जाम्बूनदमय शनि ग्रह है।

इनके अतिरिक्त शेष सभी ग्रह भी उक्त 888 से 900 कुल 12 योजन की दूरी में समाविष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार समभूतला पृथ्वीसे 790 योजन की दूरी से प्रारम्भ होकर 900 योजन तक अर्थात् 110 योजन के भीतर ये सभी ज्योतिषी विमान आ जाते हैं। 900 योजन ऊपर मध्यलोक की सीमा है। उस सीमा रेखा की समाप्ति शनि

के विमान से होती है। अर्थात् शनि ग्रह मध्यलोक में सबसे ऊपर स्थित है। उसके बाद ऊर्ध्वलोक का क्षेत्र आरम्भ हो जाता है।

वाहन जाति के ज्योतिषी देव—मनुष्यलोकवर्ती ज्योतिष्क-विमान यद्यपि स्वयं गमन-स्वभावी है, तथापि आभियोग्य जाति के देव; सूर्य चन्द्रादि विमानों को गतिशील बनाये रखने में निमित्त-स्वरूप हैं। ये देव सिंह, गज, बैल और अश्व का आकार धारण कर और क्रमशः पूर्वादि चारों दिशाओं में संलग्न रहकर सूर्यादि को गतिशील बनाए रखते हैं। इस कार्य को करने में वे अपना गौरव समझते हैं कि सम्पूर्ण लोक में प्रसिद्ध चन्द्र-सूर्य जैसे इन्द्रों के हम सेवक हैं। अतः स्वजाति या अन्य को समृद्धि दिखाने के लिए वे सिंहादि का रूप धारण कर प्रसन्न भाव से वाहन का कार्य करते हैं। इनमें चन्द्र व सूर्य विमान के चारों दिशाओं के वाहक देव 16-16 हजार हैं, ग्रह के 8 हजार, नक्षत्र के 4 हजार और तारा के 2 हजार हैं। ये वाहक देव पूर्व में सिंह का रूप धारण करके चलते हैं, दक्षिण में हस्ति, पश्चिम में वृषभ और उत्तर दिशा में अश्व रूप को धारण करके चलते हैं।

ज्योतिषियों का आयाम-विष्कम्भ, परिधि एवं बाहल्य (ऊँचाई)

नाम	आयाम विष्कम्भ	परिधि	ऊँचाई
चन्द्र	56/61 योजन	56/61 × 3 योजन	28/61 योजन
सूर्य	48/61 योजन	48/61 × 3 योजन	24/61 योजन
ग्रह	2 कोस	1/2 × 3 योजन	1 कोस
नक्षत्र	1 कोस	1 × 3 योजन	1/2 कोस
तारा	1/2 कोस	1/2 × 3 योजन	500 धनुष

ये विमान ऊँचाई में अपने-अपने आयाम-विष्कंभ से अर्द्धप्रमाण वाले हैं। अर्थात् चन्द्र का विमान एक योजन के 61 भाग में 28 भाग प्रमाण, सूर्य का 24 भाग, ग्रह के 1 कोस, नक्षत्र के आधे कोस और तारा के 500 धनुष ऊँचे हैं।

चर-अचर ज्योतिष्क—अढ़ाई द्वीप के सभी चन्द्र और सूर्य पाँचों मेरु पर्वतों के चारों ओर सदा भ्रमण करते रहते हैं, अतः उन्हें **चर ज्योतिष्क** कहते हैं। अढ़ाई द्वीप के बाहर असंख्यात द्वीप-समुद्रों के ज्योतिष्क विमान, सदैव स्थिर रहते हैं, अतः उन्हें **अचर ज्योतिष्क** कहते हैं। अचर ज्योतिष्क विमानों की लम्बाई-चौड़ाई तथा ऊँचाई चर ज्योतिष्क विमानों से आधी है, उनका तेज भी मंद है, जैसा अढ़ाई द्वीप के सूर्य व चन्द्र का उदित होने के समय तेज होता है, वैसा हल्का तेज वहाँ के सूर्य-चन्द्र का सदैव रहता है। अढ़ाई द्वीप के भीतर के विमानों का आकार अर्द्ध फल-कवीठ, अमरूद आदि के समान नीचे से गोल और ऊपर से सम है। अढ़ाई द्वीप के बाहर के ज्योतिष्क विमान ईंट के आकार के हैं। लम्बाई में अधिक और चौड़ाई में कम हैं। इन विमानों में कभी भी राहु का योग नहीं होता, अतः ग्रहण आदि भी नहीं लगता।

अढ़ाई द्वीप में कुल ज्योतिष्क संख्या—एक सूर्य-चन्द्र के परिवार में 88 ग्रह, 28 नक्षत्र और 66,975 कोटाकोटी तारे हैं। जम्बूद्वीप में दो सूर्य-चन्द्र के परिवार की संख्या को क्रमशः गिनने पर (88 × 2 =) 176

ग्रह, (28 × 2 =) 56 नक्षत्र और (66,975 × 2 =) 1,33,950 कोटाकोटी तारों का परिवार बनता है। इसी प्रकार लवण समुद्र में 4 चन्द्र, धातकीखंड में 12, कालोदधि में 42 और पुष्करार्द्ध द्वीप में 72 सूर्य-चन्द्र का परिवार कितना होगा, यह निम्न तालिका से जाना जा सकता है।

अढ़ाई द्वीप के ज्योतिष्क देवों की संख्या

क्षेत्र	सूर्य	चन्द्र	ग्रह	नक्षत्र	तारा
जम्बूद्वीप	2	2	176	56	1,33,950 कोटा कोटी
लवण समुद्र	4	4	352	112	2,67,900 कोटा कोटी
धातकीखंड	12	12	1056	336	8,03,700 कोटा कोटी
कालोद समुद्र	42	42	3696	1176	28,12,950 कोटा कोटी
पुष्करार्ध द्वीप	72	72	6336	2016	48,22,200 कोटा कोटी
कुल संख्या	132	132	11616	3696	88,40,700 कोटा कोटी

यहाँ एक प्रश्न हो सकता है कि 45 लाख योजन प्रमाण अढ़ाई द्वीप में 88,40,700, कोटाकोटी (88,40,70,00,00,00,00,00,00,000) इतने तारे कैसे समाविष्ट हो सकते हैं? समाधान यह है कि तारों के विमान का नाप उत्सेधांगुल से है और जम्बूद्वीपादि का माप प्रमाणांगुल से। प्रमाणांगुल उत्सेधांगुल से हजार गुणा बड़ा है। जम्बूद्वीप का क्षेत्रफल प्रमाणांगुल से 7,90,56,94,150 योजन का है। इतने बड़े आकाश क्षेत्र में ऐसे कोटाकोटी की संख्या वाले तारे जो कि उत्सेधांगुल से आधा कोस प्रमाण लम्बे-चौड़े हैं, वे आसानी से समा सकते हैं।

द्वीप-समुद्रों में चन्द्र-सूर्य की संख्या निकालने की विधि—कालोदधि से स्वयंम्भूरमण समुद्र पर्यन्त सूर्य और चन्द्र की संख्या निकालने की विधि इस प्रकार है—जिस द्वीप या समुद्र की चन्द्र संख्या या सूर्य संख्या निकालनी हो, उसको तिगुनी करके पिछले द्वीप-समुद्र की चन्द्र-संख्या के साथ जोड़ देने से किसी भी द्वीप और समुद्र के चन्द्रों या सूर्यों की संख्या मालूम हो जाती है। जैसे कालोदधि समुद्र के सूर्य-चन्द्र की संख्या ज्ञात करनी है तो धातकीखण्ड द्वीप में 12 चन्द्र और 12 सूर्य कहे हैं। इन्हें तिगुना करने से 12 × 3 = 36 हुए। इनमें जम्बूद्वीप के 2, लवण समुद्र के 4 मिला देने से 42 हुए तो कालोदधि में 42 चन्द्र और 42 सूर्य हैं। इसी प्रकार कालोदधि के 42 को तिगुना करने में 42 × 3 = 126 हुए। इनमें जम्बूद्वीप के 2, लवण समुद्र के 4 और धातकीखण्ड के 12 यों 18 मिलाने से 144 हुए। अतएव पुष्कर द्वीप में 144 चन्द्र और 144 सूर्य हैं। इसी प्रकार आगे भी समझना चाहिए। अर्द्धपुष्कर द्वीप में 144 के आधे 72 सूर्य और 72 चन्द्र हैं।

चन्द्र-सूर्य की दो-दो पंक्तियाँ—मनुष्य क्षेत्र में समश्रेणी गत 132 सूर्य और 132 चन्द्र की संख्या है। उसमें दक्षिण दिशा में एक सूर्य पंक्ति और उत्तर दिशा की एक सूर्य पंक्ति कुल दो सूर्य पंक्तियाँ हैं। इसी तरह मेरू के पश्चिम में एक चन्द्र पंक्ति और मेरू के पूर्व में एक चन्द्र पंक्ति। इस तरह प्रत्येक पंक्ति में 66-66 सूर्य और 66-66 चन्द्र होते हैं। अर्थात् जब जम्बू द्वीप का एक सूर्य मेरु के दक्षिण भाग में होता है तब इसी सूर्य की

अढ़ाई द्वीप में 132 सूर्य व चंद्र की पंक्तियाँ

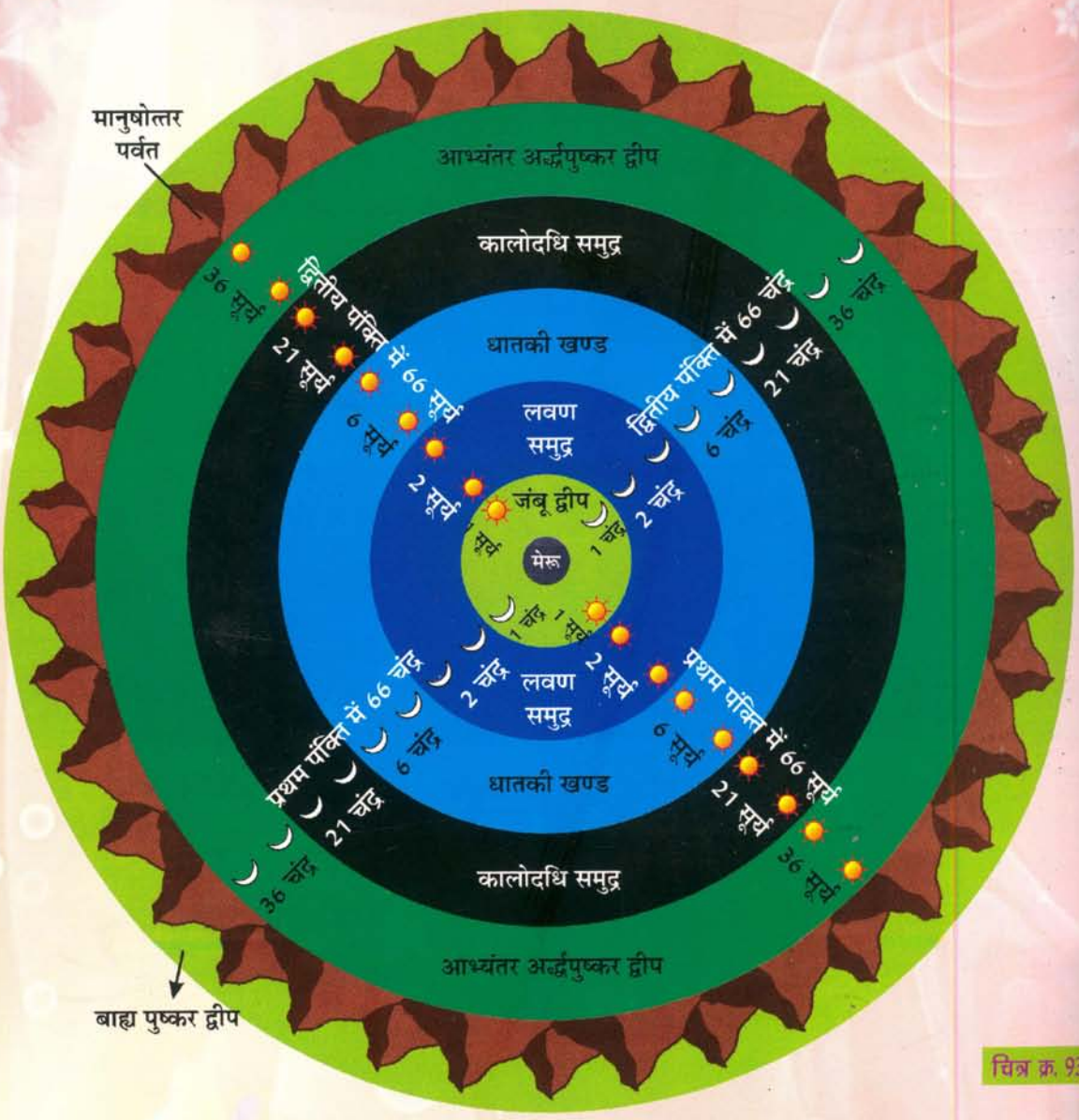

चित्र क्र. 93

समश्रेणी में दक्षिण दिशा में लवण समुद्र के दो, धातकीखण्ड के 6 कालोदधि के 21 और पुष्करार्ध के 36, इस प्रकार 66 सूर्य दक्षिण दिशा में होते हैं।

जब जम्बूद्वीप की दक्षिण दिशा में 1 सूर्य होता है, तब एक सूर्य उत्तर दिशा में भी होता है। और वैसे ही उस सूर्य की समश्रेणी में भी लवण समुद्र के 2 धातकी खण्ड के 6, कालोदधि के 21 और पुष्करार्ध के 36 सूर्य = 66 सूर्य उत्तर दिशा की समश्रेणी में आते हैं। इसी प्रकार पूर्व-पश्चिम दिशा में 66-66 चन्द्र पंक्ति की व्यवस्था भी समझ लेनी चाहिए।

इसका यह अर्थ नहीं कि सूर्य पंक्ति सदा दक्षिणोत्तर दिशा में और चन्द्र पंक्ति सदा पश्चिम दिशा में प्रकाश करती है। किन्तु अढ़ाई द्वीप के चन्द्र-सूर्य आदि ज्योतिषी विमान चर होने के कारण जब पंक्तिगत 66 सूर्य

दक्षिणोत्तर दिशा में होते हैं, तब पंक्तिगत 66 चन्द्र पूर्व-पश्चिम दिशा में होते हैं। सूर्य जब घूमते-घूमते पूर्व-पश्चिम दिशा में आते हैं, तब चन्द्र घूमते-घूमते दक्षिण दिशा में आ जाता है। इस प्रकार 132 चन्द्र और 132 सूर्य रात्रि और दिवस के विभाग पूर्वक मनुष्य क्षेत्र में सतत परिभ्रमण करते रहते हैं। किन्तु स्व-पंक्ति में से कोई भी चन्द्र या सूर्य आगे-पीछे नहीं होता। **(चित्र क्रमांक 93)**

66-66 सूर्य-चन्द्र की ये दो पंक्तियाँ ही मनुष्य क्षेत्र में मेरू की प्रदक्षिणा करती हों, ऐसी बात नहीं, वरन् एक सूर्य-चन्द्र का पूरा परिवार—28 नक्षत्र, 88 ग्रह, 66975 कोटा कोटी (संख्या के आगे 14 बिन्दु) तारा भी अपने-अपने चन्द्र के साथ परिभ्रमण करते हैं।

इस प्रकार 132 चन्द्र के 3696 नक्षत्र विमान 11616 ग्रह परिवार और 88,40,700 कोटाकोटी तारा का परिवार मनुष्य क्षेत्र में सदा काल मेरु के चारों ओर परिभ्रमण करता है। इसमें इतना विशेष है, कि चन्द्र-सूर्य और ग्रह पृथक्-पृथक् मण्डल में परिभ्रमण करने वाले होने से अनवस्थित योग में परिभ्रमण करते हैं। जबकि नक्षत्र और तारा अपने-अपने मंडल में ही परिभ्रमण करने वाले होते हैं।

साथ ही जंबूद्वीप के चन्द्र के साथ जिस नक्षत्र का योग है, समश्रेणी में रहने वाली सभी चन्द्र पंक्तियों के साथ उसी नक्षत्र का योग होता है। जैसे अभिजित नक्षत्र से प्रारम्भ होने वाली पंक्ति में अढ़ाई द्वीप तक 66 ही नक्षत्र अभिजित वाले होंगे। इसी प्रकार सभी पंक्तियों के विषय में समझ लेना चाहिए। इन चारों विभागों में वर्षादि ऋतुएँ, दक्षिणायन, उत्तरायण दिवस-रात्रियाँ आदि भी समान होती हैं। किन्तु इनका प्रारम्भ दक्षिण-उत्तर विभाग में पूर्व-पश्चिम विभाग की अपेक्षा एक समय पहले होता है। अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी काल का परिवर्तन तो दक्षिण-उत्तर विभाग में भरत-ऐरावत क्षेत्र में ही होता है, अन्यत्र नहीं। इस प्रकार 66-66 की दो पंक्तियाँ अढ़ाई द्वीप के पूर्वीय, दक्षिणी, पश्चिमी और उत्तरीय सभी विभागों में क्रमशः गतिमान रहती हैं।

मनुष्य क्षेत्र के बाहर चन्द्र-सूर्य का अंतर—मनुष्य क्षेत्र के बाहर एक चन्द्र से दूसरे चन्द्र का परस्पर अंतर एक लाख योजन साधिक एक योजन का 48/61 भाग जितना है, क्योंकि वहाँ एक चन्द्र से दूसरे चन्द्र के मध्य सूर्य विमान आता है। सूची श्रेणी द्वारा चन्द्र से सूर्य का विमान 50,000 योजन और उसके 50,000 योजन बाद पुनः चन्द्र का विमान आता है। इसी प्रकार एक सूर्य और दूसरे सूर्य के मध्य चन्द्र का विमान इतनी ही दूरी पर आता है। वहाँ सभी सूर्य और सभी चन्द्रों की आपस की दूरी एक लाख योजन की हो जाती है, उसमें चन्द्र का विस्तार (56/61) और सूर्य का विस्तार (48/61) भी जोड़ लेना चाहिए। किन्तु चन्द्र से सूर्य का और सूर्य से चन्द्र का अंतर सदा 50,000 योजन का ही रहेगा।

अढ़ाई द्वीप के बाहर चन्द्र-सूर्य दोनों का प्रकाश क्षेत्र पकी हुई ईंट के समान लंबचौरस (आयत) आकार का है। उनके ताप क्षेत्र की लम्बाई अनेक लाख योजन की और चौड़ाई एक लाख योजन है। चन्द्र-सूर्य के मध्य 50 हजार योजन का अंतर होने से चन्द्रप्रभा, सूर्यप्रभा से मिश्रित हैं और सूर्यप्रभा चन्द्रप्रभा से मिश्रित है। अतः मनुष्य लोक की तरह अत्यन्त गरम या अत्यन्त शीतल नहीं, वरन् सुख रूप है। इन ज्योतिष्क विमानों का आकार पकी हुई ईंट के समान लम्ब चौरस होने के कारण इनके प्रकाश क्षेत्र की लम्बाई अनेक लाख योजन की और चौड़ाई एक लाख योजन की है। **(चित्र क्रमांक 94)**

अढ़ाई द्वीप के बाहर सूर्य-चन्द्र व उनकी संख्या

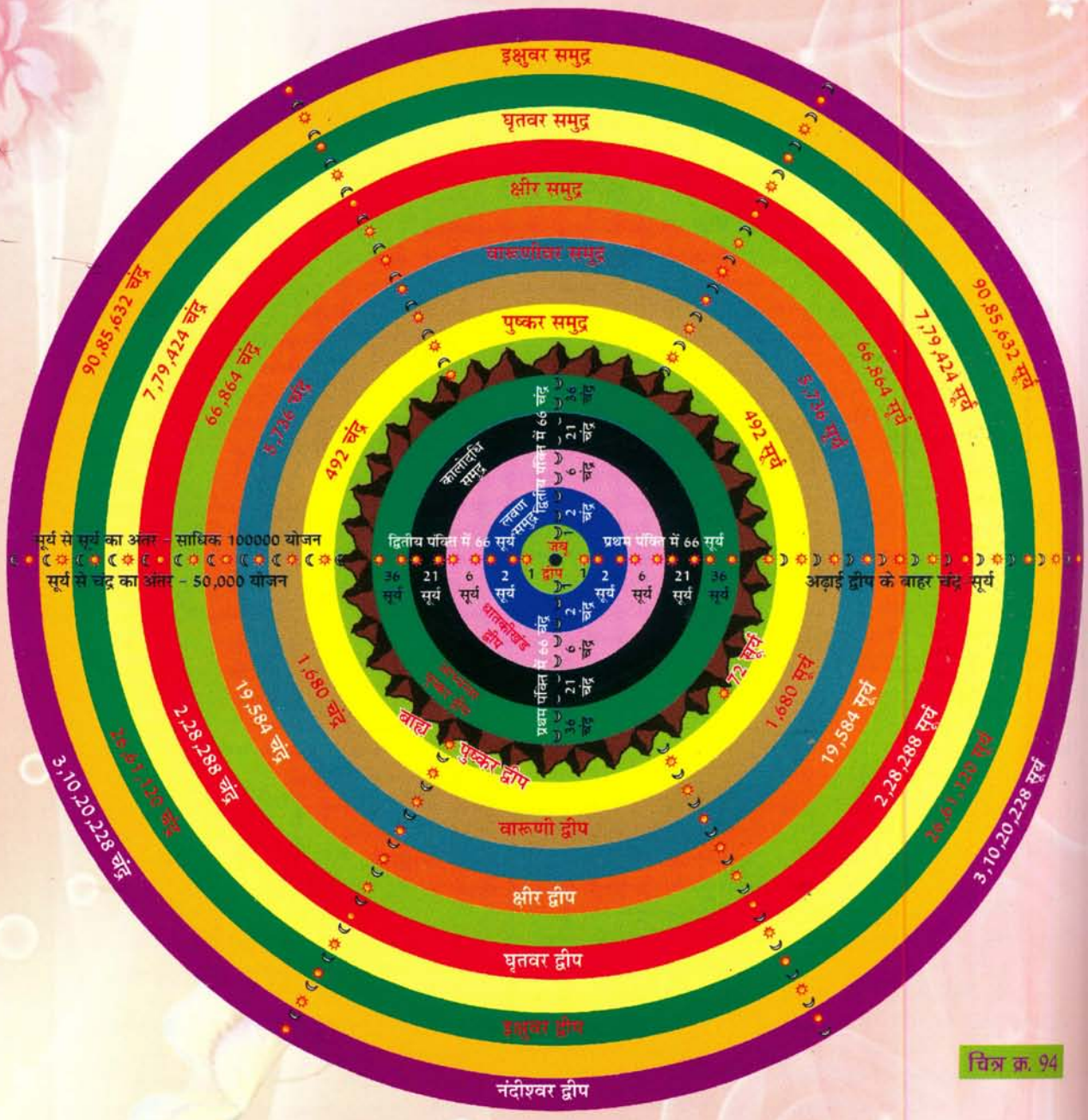

चित्र क्र. 94

इसी प्रकार आगे भी जिस द्वीप या समुद्र के चन्द्र-सूर्य की संख्या निकालनी हो तो उसके पीछे की संख्या को तिगुना करके उसमें शेष पीछे के सभी द्वीप-समुद्रों के सूर्य-चन्द्र की संख्या मिलाना। जैसे—नंदीश्वर समुद्र के सूर्य-चन्द्र कितने हैं, यह जानना है तो नंदीश्वर द्वीप के चन्द्र-सूर्य 3,10,20,288 हैं, उसे तिगुना करने पर 9,30,60,864 की संख्या आती है। इस संख्या में पूर्वोक्त 14 द्वीप-समुद्रों की संख्या (1,28,49,024) मिलाने पर 10,59,09,888 संख्या आयेगी, जो नंदीश्वर समुद्र के चन्द्र-सूर्यों की संख्या है।

ज्योतिष्क देवों की गति—सभी ज्योतिषी देवों में चन्द्रमा का विमान सबसे बड़ा है। अत: वह अत्यन्त मंद गति वाला है। सूर्य विमान उसकी अपेक्षा छोटा होने से तीव्रगामी, उससे शीघ्रतर ग्रह, इनसे शीघ्रतर नक्षत्र एवं नक्षत्रों से भी शीघ्रतर गति वाले तारगण हैं। ग्रहों में बुध से शुक्र उससे मंगल, उससे वृहस्पति और उससे शनि क्रमश: शीघ्र गति वाले हैं।

महर्द्धिक का क्रम—महर्द्धिक का क्रम इससे विपरीत है। अर्थात् जिसकी गति जैसे-जैसे मंद होती है, वैसे-वैसे महर्द्धिकपने में बढ़कर है। पश्चानुपूर्वी से तारों की ऋद्धि अल्प है, नक्षत्र उससे अधिक ऋद्धि सम्पन्न, उनसे ग्रह विशेष, ग्रहों से सूर्य और सूर्य से भी अतिशय ऋद्धि सम्पन्न चन्द्र है।

ज्योतिष्क देवों में प्रथम क्रम—संवत्सरों में प्रथम **चन्द्र-संवत्सर** है। अयनों में प्रथम **दक्षिणायन** है। ऋतुओं में प्रथम **प्रावृट्**—आषाढ़—श्रावणरूप पावस ऋतु है। महीनों में प्रथम **श्रावण** है। पक्षों में प्रथम **कृष्ण पक्ष** है। अहोरात्र में प्रथम **दिवस** है। मुहूर्त्तों में प्रथम **रुद्र** मुहूर्त्त है। करणों में प्रथम **बालवकरण** है। नक्षत्रों में प्रथम **अभिजित्** नक्षत्र है।

ज्योतिष्क का अल्प बहुत्व—चन्द्र और सूर्य की संख्या सम है। सबसे अल्प नक्षत्र हैं। ग्रह संख्येय गुण है, तारा उससे संख्येय गुण है।

❑ सूर्य विषयक ज्ञातव्य बिंदु

1. सूर्य, चन्द्र और नक्षत्र के सर्वमण्डल क्षेत्र 510-48/61 योजन है।
2. जंबूद्वीप में सूर्यमण्डल और चन्द्रमण्डल क्षेत्र का चक्रवाल विष्कंभ 180 योजन है।
3. प्रत्येक मण्डल का चक्रवाल विष्कंभ और सूर्य विमान विष्कंभ 48/61 योजन है।
4. एक सूर्यमण्डल से दूसरे सूर्यमण्डल की दूरी 2 योजन की है।
5. पहले आभ्यन्तर मण्डल का विष्कंभ तथा उसी मण्डल में रहे हुए सूर्य-सूर्य के बीच तथा चन्द्र-चन्द्र के बीच अन्तर 99,640 योजन का है।
6. सर्व बाह्यमण्डल का विष्कंभ तथा उसी मण्डल में रहे हुए सूर्य-सूर्य तथा चन्द्र-चन्द्र के बीच अन्तर 1,00,660 योजन का है।
7. सर्वप्रथम मण्डल की परिधि 3,15,089 योजन तथा सर्वबाह्यमण्डल मण्डल की परिधि 3,18,315 योजन है।
8. जम्बूद्वीप में सूर्य के 65 मण्डल तथा लवण समुद्र में 119 मण्डल हैं। इस प्रकार कुल 184 मण्डल हैं।
9. 184 मण्डलों में प्रत्येक मण्डल के बीच की अन्तरवृद्धि 2-48/61 योजन है।
10. प्रथम मण्डल से लेकर सभी बाह्य मण्डलों तक प्रत्येक मण्डल में सूर्य-सूर्य के बीच की अन्तरवृद्धि 5-35/61 योजन है।
11. सूर्य-चन्द्र का प्रथम आभ्यन्तर मण्डल मेरु पर्वत से 44,820 योजन तथा सर्वबाह्य मण्डल 45,330 योजन है।

12. सर्वआभ्यनतर मण्डल में सूर्य हो (कर्क संक्रान्ति के प्रथम दिवस), वह दिन 18 मुहूर्त्त का और रात्रि 12 मुहूर्त्त की होती है।

13. सर्वबाह्य मण्डल में सूर्य हो (मकर संक्रान्ति के प्रथम दिवस), वह दिन 12 मुहूर्त्त का और रात्रि 18 मुहूर्त्त की होती है।

14. सर्वआभ्यन्तर मण्डल से सूर्य सर्वबाह्य में जाए तब प्रत्येक मण्डल में 2/61 भाग दिनमान कम होता है। इसी प्रकार सर्वबाह्य से सूर्य सर्व आभ्यन्तर में आए तब 2/61 भाग दिनमान बढ़ता जाता है।

15. प्रथम मण्डल में सूर्य हो तब अर्थात् कर्क संक्रान्ति के प्रथम दिन मेरु को स्पर्श कर रहे ताप क्षेत्र का गोलाकार माप विस्तार 9,486-9/10 योजन तथा अंधकार का विष्कंभ 6,324-6/10 योजन होता है।

16. प्रथम मण्डल में गति करते सूर्य का प्रथम मण्डल में ही ताप विष्कंभ 94,256-42/60 तथा तम: विष्कंभ 63,017-48/60 योजन होता है।

17. प्रथम मण्डल में सूर्य हो तब जम्बूद्वीप के किनारे पर ताप विष्कंभ 94,868-4/10 तथा तम: विस्तार 63,245-6/10 योजन होता है।

18. बाह्य मण्डल पर ताप विष्कंभ 95,494-1/2 योजन तथा तम: विष्कंभ 63,663 योजन है।

19. सर्व बाह्य मण्डल में सूर्य हो तब प्रथम मण्डल में ताप विष्कंभ 63,017-48/60 योजन, मेरु को स्पर्श करके 6324-6/10 योजन और जम्बूद्वीप के किनारे पर 63,245-6/10 ताप विस्तार होता है।

20. किसी भी मण्डल में सूर्य गति करता हो, तब प्रकाश क्षेत्र की लम्बाई जम्बूद्वीप में 45,000 योजन, लवण समुद्र में 33,333-1/3 योजन, इस प्रकार 78,333-1/2 योजन है।

21. सर्व आभ्यन्तर मण्डल में सूर्य की किरणों का उत्तर विस्तार 44,820 योजन और दक्षिण विस्तार 33,513 योजन है।

22. सर्वबाह्य मण्डल पर सूर्य की किरणों का विस्तार 31,881-1/2 योजन है।

23. आभ्यन्तर मण्डल के प्रथम मण्डल की परिधि का दशांश भाग 31,508-9/10 एवं बाह्य मण्डल में 31,831-5/10 योजन है।

24. सूर्य के विमानों के किरणों की ऊपर के भाग में लम्बाई 100 योजन तथा नीचे के भाग में 1,800 योजन है।

25. प्रथम मण्डल के प्रारम्भ के स्थान पर सूर्य की मुहूर्त्त गति 5251-29/60 योजन है तथा अन्तिम मण्डल में 5305-15/60 योजन है।

26. प्रत्येक मण्डल में दक्षिणायन के समय प्रतिमण्डल में 18/60 योजन मुहूर्त्त गति की वृद्धि एवं उत्तरायण के समय 17-38/60 मुहूर्त्त गति की हानि होती है।

27. प्रथम मण्डल में सूर्य के उदय-अस्त के मध्य का अन्तर 94256-42/60 योजन तथा बाह्य मण्डल में 31831-1/2 योजन है।

28. प्रथम मण्डल में सूर्य 47,263-21/60 योजन दूर से दिखाई देता है जबकि सर्वबाह्य मण्डल में दृष्टिपथ क्रमांक 31,831-1/2 योजन है।

29. प्रतिमण्डल में सूर्य विमान 144-48/61 योजन क्षेत्र को रोकता है।
30. जम्बूद्वीप में सूर्य के 184 मण्डल के आंतरे 183 हैं व इनका क्षेत्र 366 योजन है।
31. सूर्य को एक मण्डल पूर्ण करने में 30 मुहूर्त्त लगते हैं।
32. एक युग 5 संवत्सर का होता है। एक युग में 60 सूर्य मास होते हैं।
33. एक सूर्य मास 30 अहोरात्रि का होता है एवं एक युग की 1830 अहोरात्रि होती है।
34. एक युग में सूर्य पक्ष 120 व सूर्य अयन 10 होते हैं।
35. सूर्य के उत्तरायण या दक्षिणायन की अहोरात्रियाँ 183 होती हैं एवं एक ऋतुमास या कर्कमास की 30 अहोरात्रि होती है।
36. एक युग में सूर्य 5 बार सर्वनक्षत्रों का भोग करता है। 28 नक्षत्रों में सर्वप्रथम सूर्य नक्षत्र पुष्य है।
37. नक्षत्र क्षेत्रांश को सूर्य एक दिन-रात में 150 योजन स्पर्श करता है। एक मुहूत्त में सूर्य 5 नक्षत्र क्षेत्रांश का अतिक्रमण करता है।
38. एक सूर्यमुहूर्त्त में चन्द्र मुहूर्त्त का प्रमाण 13-2/5 होता है।

❑ चन्द्र विषयक ज्ञातव्य बिन्दु

1. चन्द्र का सर्वमण्डल क्षेत्र चक्रवाल विष्कंभ में 510-48/61 योजन है। वह जंबूद्वीप के अन्दर 180 योजन और लवण समुद्र में 330-48/61 योजन है।
2. चन्द्र का प्रथम आभ्यन्तर मण्डल मेरु पर्वत से 44,820 योजन दूर तथा अंतिम मण्डल 45,330 योजन दूर है।
3. प्रत्येक चन्द्रमंडल के विमान का क्षेत्र 56/61 योजन हैं।
4. सबसे पहले चन्द्रमण्डल की परिधि (गोल घेरा) 3,15,089 योजन तथा विष्कंभ 99,640 योजन है। सर्वबाह्य मण्डल की परिधि 3,18,315 योजन है।
5. पहले चन्द्रमण्डल में एक चन्द्र से दूसरे चन्द्र का अन्तर 99,640 योजन बाह्य मण्डल में 1,00,660 योजन है।
6. प्रत्येक चन्द्र का मण्डल पूर्व के चन्द्रमण्डल से 35-30/61, 4/7 योजन है।
7. चन्द्र-चन्द्र की अन्तरवृद्धि 72 योजन (51-1/7/61) है।
8. कर्क संक्रांति से प्रथम दिन मेरु के पास चन्द्र प्रकाश का विष्कंभ 63,245-6/10 योजन है तथा मकर संक्रांति के प्रथम दिवस 94,868-2/10 योजन है।
9. मकर संक्रांति के प्रथम दिवस प्रथम मण्डल में प्रकाश विष्कंभ 94,256-42/60 योजन है एवं सर्वबाह्य मंडल में प्रकाश 95,494-1/2 योजन है।
10. चन्द्रप्रकाश की सम्पूर्ण लम्बाई 78,333-1/3 योजन है, जो जम्बूद्वीप में 45,000 योजन व लवण समुद्र में 33,333-1/3 योजन है।
11. चन्द्र के जम्बूद्वीप में 5 एवं लवण समुद्र में 10 इस प्रकार कुल 15 मण्डल व 14 आंतरे हैं।

12. चन्द्र की सर्वाभ्यन्तर मण्डल में एक मुहूर्त्त में गति 5073-7744/13,725 योजन है।
13. सर्व बाह्य मंडल में चन्द्र की मुहूर्त्त गति साधिक 5125 योजन है।
14. चन्द्र को एक मण्डल पूर्ण करने में 2-31/442 दिन लगते हैं।
15. नक्षत्र और चन्द्र दोनों की 1, 3, 6, 7, 8, 10, 11, 15 मण्डलों में एक साथ गति होती है। 2, 4, 5, 9, 12, 13, 14 मण्डलों में अकेले चन्द्र की ही गति होती है। 1, 3, 11, 15 मण्डलों में चन्द्र व नक्षत्र के साथ सूर्य की भी गति होती है।
16. चन्द्र के सभी नक्षत्रों में भोगकाल के मुहूर्त्त 919-27/67 होते हैं व दिन 27-21/67 होते हैं।
17. चन्द्र भोग्य 28 नक्षत्रों में पहला नक्षत्र अभिजित है।
18. एक अभिवर्द्धित वर्ष के चन्द्रमास 13 होते हैं एवं एक चन्द्र मास 29-32/62 अहोरात्रि का होता है।
19. एक चन्द्र वर्ष 354-12/62 दिन का होता है और एक तिथि 29 मुहूर्त्त की होती है।
20. एक युग में 134 चन्द्रायण होते हैं और एक चन्द्र अयन की कुल अहोरात्रि 13-44/67 होती है।
21. एक युग में चन्द्र अपने 884 मण्डलों को पूर्ण करता है।
22. एक युग में 30 ऋतुएँ और 54,900 मुहूर्त्त होते हैं।
23. एक ऋतु के 67 दिवस होते हैं और एक ऋतु संवत्सर 367 दिन का होता है।
24. एक ग्रह विमान का विष्कंभ 2 कोस और नक्षत्र विमान का व्यास एक कोस है।
25. एक मुहूर्त्त में चन्द्र नक्षत्र के 67 क्षेत्रांश का अतिक्रमण करता है।[1]

ज्योतिष देवों की तालिका

देव	निवास	भेद	इन्द्र	लेश्या	शरीर की ऊँचाई	उत्कृष्ट आयु	जघन्य आयु	प्रवीचार
ज्योतिष्क देव	मध्यलोक में पृथ्वी तल से 790 योजन से 900 योजन तक अर्थात् 110 योजन प्रमाण ज्योतिष मण्डल है।	5	2	कृष्ण-नील-कापोत जघन्य पीत लेश्या	7 धनुष	कुछ अधिक एक पल्य	1/8 पल्य	काया प्रवीचार
सूर्य		1	1		"	1 हजार वर्ष अधिक 1 पल्य	1/4 पल्य	"
चन्द्र		1	1		"	1 लाख वर्ष अधिक 1 पल्य	1/8 पल्य	"
नक्षत्र		1	—		"	आधा पल्य	1/8 पल्य	"
ग्रह		1	—		"	1 पल्य	1/8 पल्य	"
तारागण		1	—		"	1/4 पल्य	1/8 पल्य	"

1. संग्रहणी रत्नम् – अनुवादक – पूज्य मुनि श्री यशोविजय जी म. सा.

अध्याय 4 : ऊर्ध्वलोक

ज्योतिष्क लोक में शनैश्चर विमान की ध्वजा के बाद वहीं पर मध्यलोक का अन्त एवं ऊर्ध्वलोक का प्रारम्भ माना गया है, जो लोकान्त तक जाकर समाप्त होता है। ऊर्ध्व लोक की ऊँचाई 1,800 योजन न्यून 7 राजू प्रमाण है। दूसरे ईशान देवलोक तक डेढ़ राजू, चौथे माहेन्द्र देवलोक तक ढाई राजू, आठवें सहस्रार देवलोक तक चार राजू, बारहवें अच्युत देवलोक तक पाँच राजू तथा लोकान्त तक सात राजू हो जाता है। सात राजू प्रमाण क्षेत्र में मुख्यत: 12 कल्पवासी देव, 9 ग्रेवेयक, 5 अनुत्तर विमान और सिद्धशिला पृथ्वी आती है। देवताओं की निवास भूमि होने के कारण ऊर्ध्वलोक को 'अमरलोक' या 'देवलोक' भी कहा जा सकता है। यह ऊर्ध्वलोक मृदंग के आकार का है। मध्यलोक की सीमा समाप्ति पर यह एक राजू है, उसके बाद साढ़े तीन राजू परिमाण ऊँचे क्षेत्र तक लोक के विस्तार में वृद्धि होती गई है, फिर साढ़े तीन राजू तक क्रमश: घटते-घटते लोकान्त पर एक राजू प्रमाण चौड़ाई रह जाती है। **(चित्र क्रमांक 95)**

❑ बारह कल्पोपपन्न देवलोक

1-2 सौधर्म और ईशान देवलोक—शनि के विमान की ध्वजा से डेढ़ राजू ऊपर और 19-1/2 राजू घनाकार विस्तार में घनोदधि के आधार पर जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत से दक्षिण दिशा मेंप्रथम सौधर्म और उत्तर दिशा में दूसरा ईशान देवलोक है। ये पूर्व-पश्चिम लम्बे और उत्तर-दक्षिण में चौड़े हैं। दोनों देवलोक अर्द्ध चन्द्राकार में स्थित हैं। दोनों देवलोकों का भूमिभाग एक होने से दोनों मिलकर पूर्णचन्द्र के आकार वाले हैं। दोनों देवलोकों में 13-13 प्रतर एक के ऊपर एक (जैसे मकान में मंजिल) हैं। इन प्रतरों में 500-500 योजन ऊँचे और 2,700 योजन भूमि में गहरे विमान (आवास) हैं। प्रथम देवलोक में 32 लाख व दूसरे देवलोक में 28 लाख विमान हैं। प्रथम देवलोक के इन्द्र का नाम 'शक्रेन्द्र' और दूसरे देवलोक के इन्द्र का नाम 'ईशानेन्द्र' है। इन दोनों इन्द्रों की 8-8 अग्रमहिषियाँ (इन्द्राणियाँ) हैं। प्रत्येक इन्द्राणी का 16-16 हजार देवियों का परिवार है। पहले देवलोक के देवों की आयु जघन्य एक पल्योपम व उत्कृष्ट दो सागरोपम की है। इनकी परिगृहीता देवी की आयु जघन्य एक पल्योपम की और उत्कृष्ट सात पल्योपम की है। दूसरे देवलोक के देवों की आयु जघन्य एक पल्योपम से कुछ अधिक और उत्कृष्ट नौ पल्योपम से कुछ अधिक है। दोनों देवलोकों में 2,000 वर्ष के बाद भोजन की इच्छा होती है और इच्छा मात्र से ही इन्हें डकार आ जाती है एवं पेट भर जाता है। दोनों देवलोकों में देवों की देह सात हाथ की होती है। दूसरे देवलोक तक देव तथा देवी दोनों उत्पन्न होते हैं और मनुष्य की ही तरह मैथुन का सेवन करते हैं। प्रथम देवों के मस्तक मुकुट में **मृग** का चिह्न होता है, दूसरे देवलोक के देवों के मुकुट में **महिष** का चिह्न होता है।

3-4 सनत्कुमार व माहेन्द्र देवलोक—पहले दूसरे देवलोकों की सीमा के 1 राजू ऊपर अर्थात् समभूमि से अढ़ाई राजू ऊँचे साढ़े सोलह रज्जू घनाकार विस्तार में घनवात (जमी हुई हवा) के आधार पर दक्षिण दिशा में

ऊर्ध्वलोक

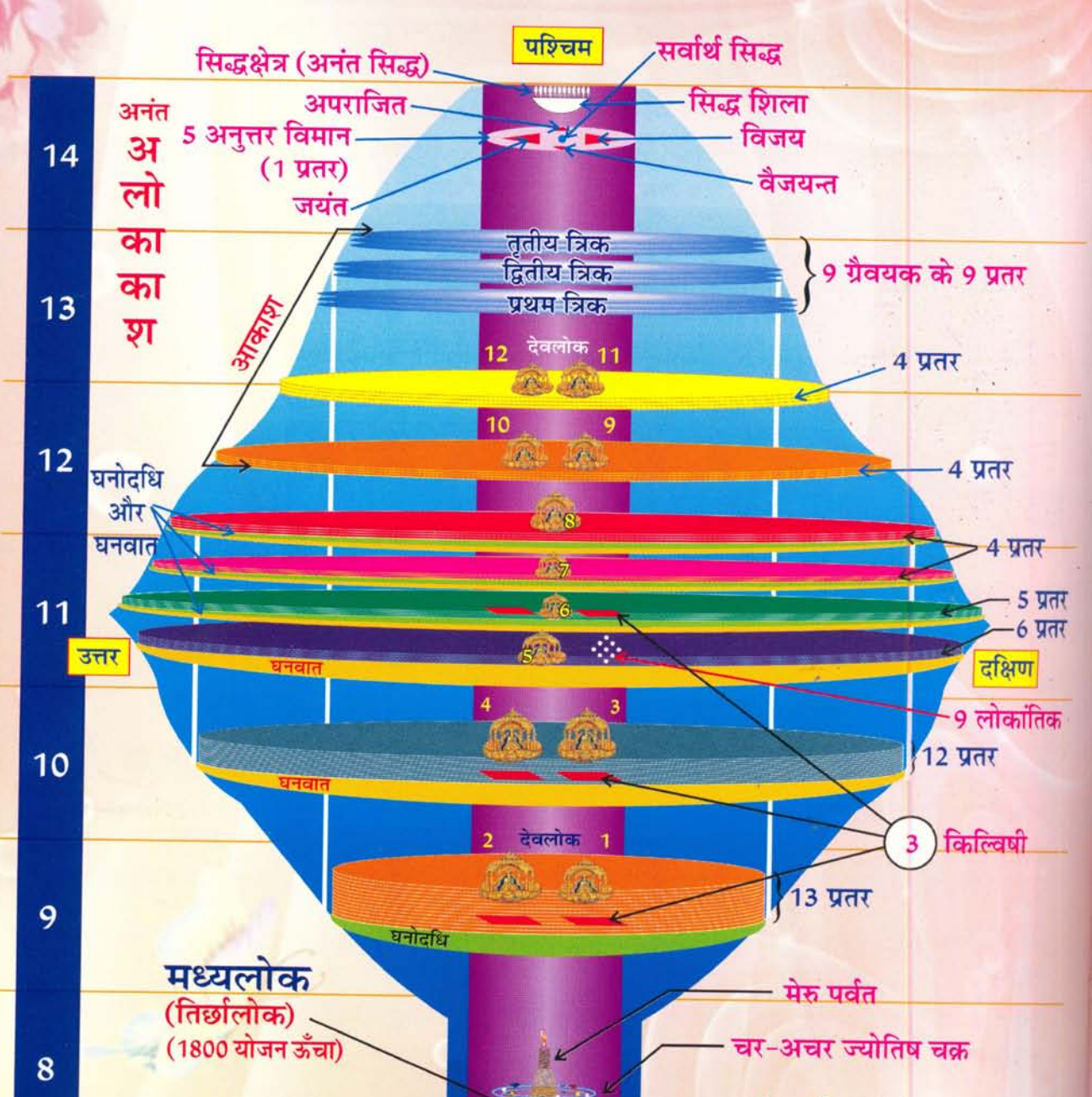

चित्र क्र. 95

तीसरा सनत्कुमार देवलोक और उत्तर दिशा में चौथा माहेन्द्र देवलोक पूर्वोक्त प्रथम द्वितीय देवलोक के समान ही पूर्ण चन्द्राकार में स्थित है। दोनों में 12-12 प्रतर हैं। इन प्रतरों में 600-600 योजन ऊँचे और 2,600-2,600 योजन नींव वाले विमान हैं। तीसरे देवलोक में 12 लाख और चौथे देवलोक में 8 लाख विमान हैं। तीसरे देवलोक के देवों की जघन्य दो सागरोपम उत्कृष्ट सात सागरोपम तथा चौथे देवलोक में उत्पन्न देवों को सात-सात हजार वर्ष में भूख लगती है। इनका देहमान छह हाथ का है। इन्हें देवियों के स्पर्श मात्र से ही कामसुख की प्राप्ति हो जाती है। इनके मस्तक, मुकुट पर क्रमशः **सुअर** तथा **सिंह** के चिह्न होते हैं।

5. ब्रह्म देवलोक—उक्त दोनों देवलोकों की सीमा से पोन राजू अर्थात् समभूमि से सवा 3 राजू ऊपर 18-3/4 राजू घनाकार विस्तार में मेरु पर्वत के ठीक ऊपर मध्य में घनवात के आधार पर पूर्णचन्द्राकार पाँचवाँ ब्रह्मदेवलोक है। इसमें छह प्रतर हैं, जिसमें 700 योजन ऊँचे और 2,500 योजन नींव वाले 4 लाख विमान हैं। इनमें उत्पन्न देवों की काया 5 हाथ की, आयुष्य उत्कृष्ट 10 सागरोपम की है। इन्हें 10 हजार वर्ष के पश्चात् आहार की इच्छा होती है। ये देवियों का रूप देखकर ही संतुष्ट हो जाते हैं। ये मस्तक मुकुट पर **बकरे** के चिह्न से पहचाने जाते हैं।

आठ कृष्णराजियाँ—ब्रह्मदेवलोक में कृष्ण वर्ण की आठ महाशिलाएँ हैं, जिन्हें कृष्णराजियाँ कहते हैं। तमस्काय और कृष्णराजियाँ दोनों काले वर्ण के पुद्गलों का परिणाम है। तथापि दोनों एक नहीं हैं। तमस्काय को अप्काय माना गया है और कृष्णराजियों को पृथ्वी रूप। तमस्काय का वर्णन पीछे असंख्यात द्वीप-समुद्रों के साथ दिया गया है, अब कृष्णराजियों का वर्णन किया जाता है।

कृष्णराजियाँ कुल आठ हैं। ये खुले मैदान (अखाड़ा) के आकार की पाँचवें देवलोक के तीसरे अरिष्ट नामक प्रतर के पास दक्षिण दिशा में त्रसनाड़ी के भीतर हैं। कृष्ण अर्थात् काला पाषाण, राजि अर्थात् लम्बी शिलाएँ। ये आठों महाशिलाएँ काले वर्ण की हैं। इनमें चन्द्र-सूर्य की कांति नहीं है। ये इतनी सघन कृष्णवर्णी हैं कि कोई भी प्रकाश इन्हें प्रकाशित नहीं कर पाता। जैसे कतिपय अंधकार प्रकाशक पदार्थों से नष्ट हो जाते हैं, किन्तु कुछ अंधकार ऐसे होते हैं जिन्हें प्रकाशक पदार्थ ठीक उसी रंग में दिखा तो देते हैं किन्तु नष्ट नहीं कर पाते। जैसे मशाल के ऊपर निकल रहे काले धुएँ को मशाल की ज्योति नष्ट नहीं कर पाती अपितु उसे दिखाती है, उसी प्रकार ये राजियाँ भी काले वर्ण की दीवार या वस्त्रों की तरह प्रतीत होती हैं। ये आठों ही राजियाँ असंख्यात हजार योजन लम्बी और संख्यात हजार योजन चौड़ी हैं। इनकी परिधि असंख्यात हजार योजन की है।

आठ कृष्णराजियों के नाम—1. कृष्णराजि, 2. मेघराजि, 3. मेघा, 4. माघवती, 5. वातपरिघा (आँधी के समान सघन), 6. वातपरिक्षोभ, 7. देवपरिघा (देवों के लिये भी दुर्लंध्य), 8. देव परिक्षोभ (देवों को भी भय पैदा कराने वाली)। ये दो पूर्व में, दो पश्चिम में, दो उत्तर में और दो दक्षिण में—इस प्रकार चारों दिशाओं में कुल आठ हैं। पूर्व-पश्चिम की बाहर वाली दो कृष्णराजियाँ षट्कोण हैं तथा इन्हीं दो दिशाओं के अंदर वाली दो राजियाँ चतुष्कोण हैं। इसी प्रकार उत्तर-दक्षिण के बाहर की दो राजियाँ त्रिकोणाकार एवं इन्हीं दोनों दिशाओं की आभ्यंतर दो राजियाँ चतुष्कोण हैं। ये दो-दो कृष्णराजियाँ एक-दूसरे को एक किनारे से स्पर्श करती हैं।

कृष्णराजियाँ पृथ्वीरूप परिणाम होने पर भी इनमें ग्राम, नगर, मकान, विमान आदि नहीं हैं। पानी, अग्नि और वनस्पति (बादर) का यहाँ सर्वथा अभाव है तथापि देवों द्वारा मेघ, वर्षा व बिजली आदि संभव है। **(चित्र क्र. 96)**

नौ लोकान्तिक देव—ब्रह्मदेवलोक में आठ कृष्णराजियों के आठ अंतरों में आठ विमान और आठों के मध्य में भी एक विमान हैं। इस प्रकार कुल नौ विमानों में लोकान्तिक जाति के देव रहते हैं। वैसे तो ये सभी पाँचवें ब्रह्मेन्द्र के साम्राज्य में ही आते हैं, किन्तु इनकी कुछ विशेषताओं के कारण ये नव लोकान्तिक के नाम से स्वतंत्र पहचाने जाते हैं। इनके स्वामी देव एकाभवावतारी होते हैं अर्थात् शीघ्र ही लोक का अंत करने वाले होने से इन्हें **लोकान्तिक** कहते हैं अथवा लोक (त्रसनाड़ी) के किनारे पर रहने के कारण भी ये '**लोकान्तिक**' कहे जाते हैं।

आठ कृष्णराजियाँ और नौ लोकान्तिक विमान

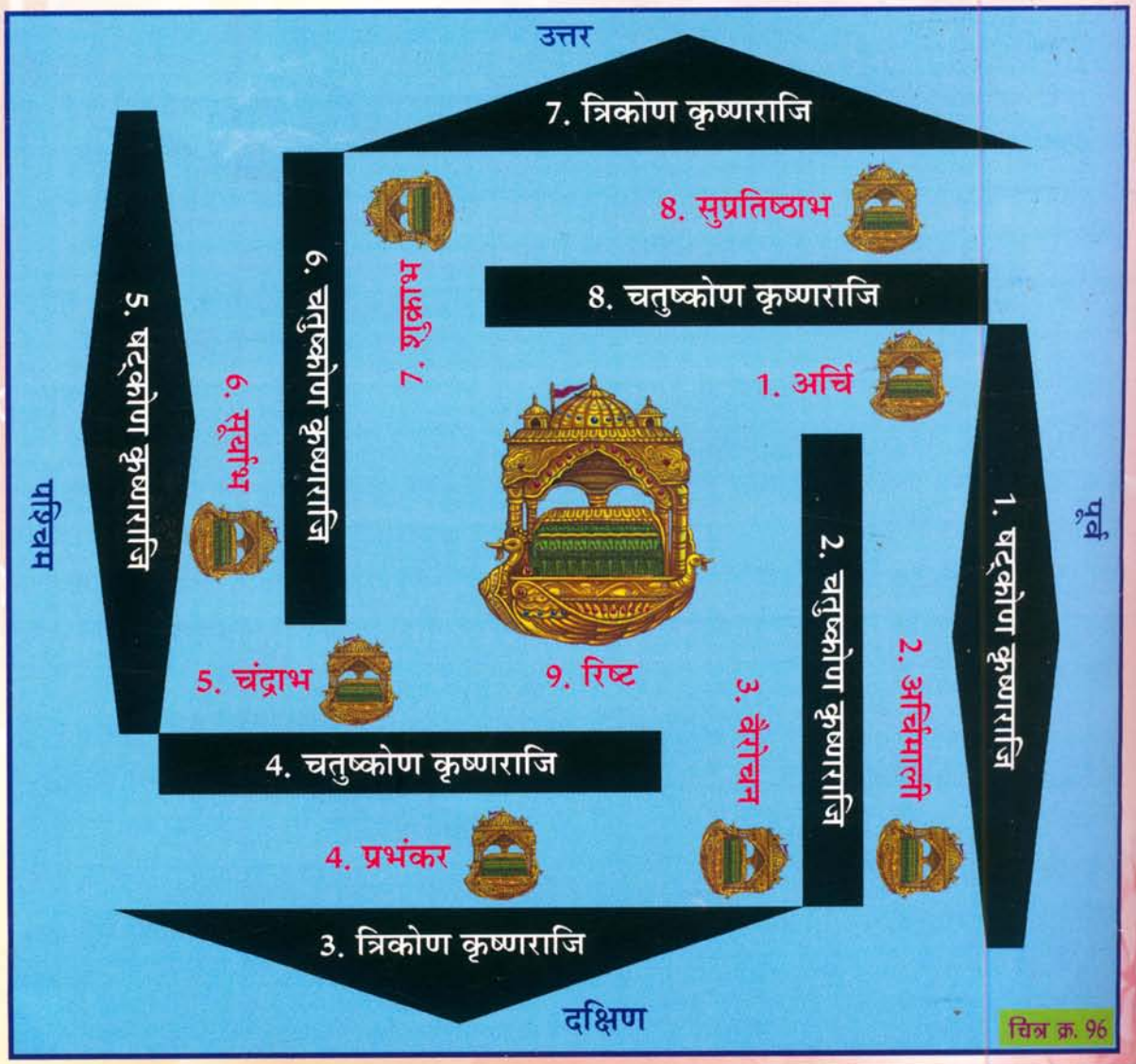

चित्र क्र. 96

इनमें 1. पूर्व उत्तर कोण के अर्चिविमान (ईशान) में **सारस्वत** नामक जाति के देव, 2. पूर्व दिशा के अर्चिमाली विमान में **आदित्य** जाति के देव, 3. आग्नेय दिशा के वैरोचन विमान में **वह्नि** देव, 4. दक्षिण दिशा के प्रभंकर विमान में **वरुण** देव, 5. नैऋत्य भाग के सूर्याभ विमान में **गर्दतोय** देव, 6. पश्चिम दिशा के सूर्याभ विमान में **तुषित** देव, 7. वायव्य दिशा के शुक्राभ विमान में **अव्याबाध,** 8. उत्तर दिशा के सुप्रतिष्ठाभ विमान में **अग्नि** देव और 9. इन सबके मध्य रिष्ट विमान में **अरिष्ट** देवों के विमान हैं। इन विमानों से लोकान्त असंख्यात योजन दूर है। **सारस्वत** और **आदित्य** का 700 देवों का परिवार है। **वह्नि** और **वरुण** का 14,000 देवों का, **गर्दतोय** और **तुषित** का 7,000 देवों का **अव्याबाध, अग्नि** और **अरिष्ट** देव का 6,000 देवों का परिवार है।

कृष्णराजियाँ एवं नौ लोकान्तिक विमान

क्रम	दिशा	स्थान	आकार (कृष्णराजि)	स्पर्श	देव विमान	देव	देवों का परिवार
1.	पूर्व	बाह्य	षट्कोण	8–1	अर्चिविमान	सारस्वत	700
2.	पूर्व	आभ्यंतर	चतुष्कोण	2–3	अर्चिमाली	आदित्य	700
3.	दक्षिण	बाह्य	त्रिकोण	2–3	वैरोचन	वह्नि	14,000
4.	दक्षिण	आभ्यंतर	चतुष्कोण	4–5	प्रभंकर	वरुण	14,000
5.	पश्चिम	बाह्य	षट्कोण	4–5	चंद्राभ	गर्दतोय	7,000
6.	पश्चिम	आभ्यंतर	चतुष्कोण	6–7	सूर्याभ	तुषित	7,000
7.	उत्तर	बाह्य	त्रिकोण	6–7	शुक्राभ	अव्याबाध	6,000
8.	उत्तर	आभ्यंतर	चतुष्कोण	8–1	सुप्रतिष्ठाभ	अग्नि	6,000
9.	—	मध्य	—	मध्य	रिष्टाभ	अरिष्ट	6,000

इन विमानों में रहने वाले सभी देव पाँच हाथ की काया वाले 8 सागरोपम की आयु वाले सम्यक्दृष्टि देव होते हैं। तीर्थंकरों की दीक्षा के अवसर पर वे **जय-जय नन्दा जय-जय भद्दा** स्वरूप मधुर भाषा में प्रभु से दीक्षा ग्रहण कर तीर्थ प्रवर्त्तन करने की विनती करते हैं। वैसे तो तीर्थंकर स्वयं ही ज्ञानी एवं बोध प्राप्त होते हैं, तथापि लोकान्तिक देवों का यह जीताचार है। ये सभी देव कुछ ही भवों में मोक्ष प्राप्त करने की योग्यता वाले होते हैं। सभी शुक्ल लेश्यी भद्रिक परिणामी होने से **देवर्षि** नाम से भी जाने जाते हैं।

6. लान्तक देवलोक—पाँचवे देवलोक की सीमा से पाव राजू और समभूमि से 3½ राजू ऊपर 18-3/4 राजू घनाकार विस्तार में, घनोदधि और घनवात के आधार पर छठा लान्तक देवलोक है। इसमें पाँच प्रतर है जिनमें 700 योजन ऊँचे और 2500 योजन की अंगनाई वाले, पूर्ण चन्द्रमा के आकार के 50,000 विमान हैं।

इनमें उत्पन्न देवों के मुकुट पर **मेंढक** का चिह्न रहता है। इनका देहमान 5 हाथ और उत्कृष्ट आयु 14 सागरोपम की होती है। 14,000 वर्ष बाद ही आहार की इच्छा होती है। ये सभी देव, देवियों का रूप मात्र देखकर ही काम सुख की तृप्ति कर लेते हैं।

7. महाशुक्र देवलोक—छठे देवलोक की सीमा से पाव राजू व समभूमि से पोने चार राजू ऊपर और सवा 7 राजू घनाकार विस्तार में घनवात और घनोदधि के आधार पर सातवाँ महाशुक्र देवलोक है। इसमें चार प्रतर है, जिनमें 800 योजन ऊँचे और 2,400 योजन की अंगनाई वाले 40,000 विमान है। इन विमानों में उत्पन्न होने वाले देवों की देह 4 हाथ की होती है, आयुष्य 17 सागरोपम का और 17,000 वर्ष के बाद ही आहार की इच्छा होती है। इनके मुकुट पर **अश्व** का चिह्न होता है।

8. सहस्रार देवलोक—सातवें देवलोक की सीमा से पाव राजू तथा समभूमि से 4 राजू ऊपर सवा 7 राजू घनाकार विस्तार में, घनवात और घनोदधि के आधार से ही आठवाँ सहस्रार देवलोक है। इसमें 4 प्रतर है, जिसमें 800 योजन ऊँचे और 2,400 योजन की अंगनाई वाले 6,000 विमान हैं। यहाँ देवों की काया 4 हाथ की है। आयुष्य उत्कृष्ट 18 सागरोपम और 18,000 वर्ष के बाद आहार की इच्छा वाले ये देव होते हैं। इनके मुकुट में **हस्ति** का चिह्न होता है। सातवें-आठवें देवलोक के देवों को देवियों के अंगोपांग देखने से ही तृप्ति हो जाती है। देवियों का आगमन भी यहीं तक सीमित है, यहाँ से ऊपर देवियाँ नहीं जा सकती हैं। यद्यपि देवियाँ दूसरे देवलोक तक ही होती हैं तथापि 8वें देवलोक तक के देव पहले-दूसरे देवलोक की अपरिगृहिता देवियों को अपने स्थान पर ले जा सकते हैं।

9-10. आनत-प्राणत देवलोक—आठवें देवलोक की सीमा से आधा राजू व समभूमि से 4½ राजू ऊपर 12½ राजू घनाकार विस्तार में मेरु पर्वत से दक्षिण दिशा में आकाश के आधार पर स्थित नौवाँ आनत देवलोक और उत्तर दिशा में दसवाँ प्राणत देवलोक है। दोनों में 4-4 प्रतर हैं। इन प्रतरों में 900 योजन ऊँचे और 2,300 योजन की अंगनाई वाले दोनों के मिलाकर 400 विमान हैं। इन देवलोकों के देवों की आयु नवमें की उत्कृष्ट 19 और दसवें की 20 सागरोपम की है। उतने ही हजार वर्ष में उन्हें आहार की भी इच्छा होती है। इनके मुकुट में क्रमशः **सर्प** और **गेंडे** का चिह्न होता है।

11-12. आरण और अच्युत देवलोक—नौवें और दसवें देवलोक की सीमा से आधा राजू तथा समभूमि से 5 राजू ऊपर और साढ़े दस राजू घनाकार विस्तार में मेरू पर्वत से दक्षिण दिशा में आकाश के आधार से ग्यारहवाँ **आरण** देवलोक है और उत्तर दिशा में बारहवाँ **अच्युत** देवलोक है। इन दोनों में भी 4-4 प्रतर हैं, जिनमें हजार योजन ऊँचे और 2,200 योजन की अंगनाई वाले दोनों देवलोकों के मिलाकर 300 अर्द्धचन्द्राकार विमान हैं। 9 से 12 देवलोक तक देह 3 हाथ की, उत्कृष्ट आयु ग्यारहवें की 21 सागरोपम तथा बारहवें की 22 सागरोपम की है, इतने ही हजार वर्षों में उन्हें आहार की इच्छा होती है। इनके मुकुट पर क्रमशः **बैल** और **मृग** का चिह्न होता है।

नवें, दसवें, ग्यारहवें और बारहवें देवलोक के देव अपने स्थान पर जब भोग की इच्छा करते हैं, तो उनके भोग में आने योग्य प्रथम या दूसरे देवलोक में रही हुई देवियों का मन उनकी ओर आकर्षित हो जाता है। वे देव

उनके विकार युक्त मन का **अवधिज्ञान** से अवलोकन करते ही तृप्त हो जाते हैं। बारहवें देवलोक के ऊपर देवों को भोग की इच्छा ही नहीं होती।

नवग्रैवेयक—ग्यारहवें-बारहवें देवलोक की सीमा से 1 राजू व समभूमि से 6 राजू ऊपर साढ़े 8 राजू घनाकार विस्तार में एक-दूसरे के ऊपर आकाश के आधार से नवग्रैवयेक देवलोक हैं। वस्तुत: पुरुषाकार 14 राजू लोक की ग्रीवा—गर्दन के स्थान पर होने से इन्हें 'ग्रैवेयक' कहा गया है। इनके तीन त्रिक में 9 प्रतर हैं। पहले त्रिक (तीन देवलोक का समूह) में **1. भद्र, 2. सुभद्र** और **3. सुजात** नामक तीन ग्रैवेयक हैं। इन तीनों में 111 विमान पूर्णचन्द्र के आकार के हैं। दूसरी त्रिक में **4. सुमानस, 5. सुदर्शन** और **6. प्रियदर्शन** नामक तीन ग्रैवेयक हैं। इन तीनों में 107 विमान हैं। तीसरे त्रिक में **7. अमोह, 8. सुप्रतिभद्र** और **9. यशोधर** नामक तीन ग्रैवेयक हैं, इनमें 100 विमान हैं।

ये कुल 318 ही विमान 1,000 योजन ऊँचे और 2,200 योजन की अंगनाई वाले हैं। इनका शरीर दो हाथ की अवगाहना वाला है और आयुष्य क्रमश: 23 सागरोपम से एक-एक की वृद्धि करते हुए अंतिम ग्रैवेयक देव की 31 सागरोपम है। इतने ही हजार वर्षों में उन्हें आहार की इच्छा होती है।

इन देवलोकों तक अभव्य जीव भी उत्पन्न हो सकते हैं। ऐसे अभव्य जीव देवगति से च्यवकर तो मनुष्य गति में ही आते हैं, किन्तु बाद में स्वकर्मानुसार चारों गतियों में भ्रमण करते रहते हैं।

पाँच अनुत्तर विमान—ग्रैवेयक की सीमा से 1 राजू तथा समभूमि से 7 राजू ऊपर और 6-1/2 राजू घनाकार विस्तार में चारों दिशाओं में 4 अनुत्तर विमान आकाश के ही आधार पर स्थित हैं। ये 1,100 योजन ऊँचे और 2,100 योजन की अंगनाई वाले तथा असंख्यात योजन लम्बे-चौड़े त्रिकोणाकार हैं। इन चारों विमानों के मध्य में 1,00,000 योजन विस्तार वाला पूर्ण चन्द्राकार **सर्वार्थसिद्ध** विमान है। इन पाँचों विमानों के नाम इस प्रकार हैं—1. पूर्व दिशा में '**विजय**' विमान, 3. दक्षिण में '**वैजयंत**', 3. पश्चिम में '**जयंत**', 4. उत्तर में '**अपराजित**', 5. मध्य में '**सर्वार्थसिद्ध**' विमान है।

ये पाँचों विमान सब विमानों में उत्कृष्ट है। इनके '**उत्तर**' में अर्थात् बाद में, '**अन्**' अर्थात् कोई विमान नहीं है। अत: सबसे उत्कृष्ट व सबसे ऊपर होने के कारण ये '**अनुत्तर विमान**' कहलाते हैं। इन पाँचों विमानों में रहने वाले देवों का शरीर 1 हाथ प्रमाण है। चार विमानों के देवों की जघन्य आयु 31 सागरोपम और उत्कृष्ट 33 सागरोपम की है। सर्वार्थसिद्ध विमानवासी देवों की आयु 33 सागरोपम है, इसमें जघन्य उत्कृष्ट का भेद नहीं है, सब देवों की आयु बराबर है।

नवग्रैवेयक और पाँच अनुत्तर विमान में '**कल्पातीत देव**' होते हैं, ये सभी देव स्वामी सेवक के व्यवहार से रहित स्वयं इन्द्र के समान है। अत: इन्हें **अहमिन्द्र** कहा गया है। ये अपने विमान से कभी बाहर नहीं निकलते, अत: न तो तीर्थंकरों के कल्याणक महोत्सव में जाते हैं और न ही भगवान के समवशरण में। वे सदैव आत्मानंद में मग्न रहते हैं। इन्हें जब किसी प्रकार का संशय उत्पन्न होता है तब वे शय्या से नीचे उतरकर तीर्थंकर भगवान को नमस्कार करके अपनी मनोवर्गणा से भगवान को प्रश्न पूछते हैं। भगवान उस प्रश्न के उत्तर को मनोमय पुद्गलों में परिणत करते हैं, देव अपने विशिष्ट अवधिज्ञान से उन पुद्गलों को ग्रहण करके समाधान प्राप्त कर लेते हैं।

पाँचों विमानों में शुद्ध संयम का पालन करने वाले चौदह पूर्वधारी साधु ही उत्पन्न होते हैं। पाँचों अनुत्तर विमानवासी देव एकान्त सम्यक दृष्टि हैं। चार अनुत्तर विमानों के देव एक या दो भव करके मोक्ष प्राप्त करते हैं, और सर्वार्थ सिद्ध विमान के देव एक ही मनुष्य का भव करके मोक्ष प्राप्त करते हैं। यहाँ के देव सर्वाधिक सुख को भोगते हैं। इनकी उपपात शय्या के चंदरवे पर 32 मन के विविध जाति के मोती लटके हुए हैं, उनके परस्पर टकराने से जो मधुर ध्वनि निकलती है, उस ध्वनि के आनन्द में ही इनके साढ़े सोलह सागरोपम व्यतीत हो जाते हैं।

देवों के विमान—समपृथ्वी से असंख्यात क्रोड़ाक्रोड़ी योजन ऊपर प्रथम सौधर्म और दूसरा ईशान देवलोक है। वहाँ से असंख्यात क्रोड़ाक्रोड़ी योजन ऊपर तीसरा सनत्कुमार और चौथा माहेन्द्र देवलोक है। ये चारों विमान अर्ध चन्द्राकार हैं। उसके बाद पाँचवाँ, छठा, सातवाँ और आठवाँ—ये चार देवलोक पूर्ण चन्द्राकार हैं। उसके बाद तीन त्रिक में नवग्रैवेयक विमान हैं, उसके पश्चात् चार अनुत्तर विमान चार दिशा में त्रिकोणाकार और मध्य में एक लाख योजन विस्तृत गोलाकार सर्वार्थसिद्ध विमान हैं।

विमानों का आकार—देवलोकों में विमान दो प्रकार के होते हैं—(1) संख्यात योजन विस्तार वाले, (2) असंख्यात योजन विस्तार वाले। संख्यात योजन विस्तार वाले विमान जम्बूद्वीप के तुल्य हैं। असंख्यात योजन विस्तार वाले विमान उतनी ही विस्तृत परिधि में हैं।

विमानों में दो प्रकार होते हैं—(1) आवलिका प्रविष्ट—पंक्तिबद्ध, (2) पुष्पावकीर्ण—पुष्प के समान बिखरे हुए।

(1) आवलिका प्रविष्ट—प्रत्येक देवलोक के प्रतरों के बीच मध्य में एक मुख्य विमान होता है, उसे 'इन्द्रक' कहते हैं, वह गोल होता है। इन्द्र विमान 45 लाख योजन का है वह अढ़ाईद्वीप के ठीक ऊपर है। उसकी चारों दिशाओं में चार विमान त्रिकोण, उसके पश्चात् के विमान चौरस, पश्चात् क्रमशः गोल, त्रिकोण और चौरस विमान चारों दिशाओं की प्रत्येक पंक्ति में है। आवलिकागत विमानों का परस्पर अन्तर असंख्याता योजन का है।

(2) पुष्पावकीर्ण—आवलिकाबद्ध विमानों के बीच-बीच में सर्वत्र बिखरे हुए पुष्पों के समान जो विमान होते हैं, वे प्रकीर्णक विमान पुष्पावकीर्ण कहे जाते हैं। इन विमानों का परस्पर अन्तर संख्यात योजन का भी होता है और असंख्यात योजन का भी। ये विविध आकार के होते हैं। जैसे—स्वस्तिक, नंद्यावर्त आदि। पाँच अनुत्तर विमान में मध्यवर्ती सर्वार्थसिद्ध विमान गोलाकार हैं और उसकी चारों दिशाओं में चार अनुत्तर विमान त्रिकोण आकार के हैं। वहाँ चतुष्कोण विमान नहीं है। **(चित्र क्रमांक 97)**

विमानों का स्वरूप—बारह देवलोक, नौ ग्रैवेयक और पाँच अनुत्तर विमान इन छब्बीस देवलोकों में कुल मिलाकर 62 प्रतर और 84,97,023 विमान हैं। सभी विमान रत्नमय, अनेक स्तम्भों से परिमंडित विविध चित्रावली से चित्रित, अनेक खूंटियों और लीलायुक्त पुतलियों से सुशोभित, सूर्य के समान जगमगाते हुए और सुगंध से मघमघायमान है। प्रत्येक विमान के चारों ओर उपवन रत्नमय बावड़ियाँ निर्मल जल और सहस्रदल वाले कमलों से परिपूर्ण होती है। मणि-रत्नों के सुंदर वृक्ष, लताएँ, गुच्छे और पत्र-पुष्प वायु से हिलते हुए जब

आपस में टकराते हैं तो उनमें से छह राग और छत्तीस रागनियों की मधुर ध्वनि निकलती है। वहाँ सोने और चाँदी की रेत बिछी है। अति सुंदर और सदैव नवयौवन से ललित, दिव्य तेज वाले, समचतुरस्र संस्थान के धारक, अति उत्तम मणिरत्नों की वस्तु के धारक, दिव्य अलंकारों से सुशोभित देव ओर देवियाँ इच्छित क्रीड़ा करते हुए और मनोरम भोग भोगते हुए विचरण करते हैं। देव-देवियों का परस्पर दिव्य प्रेम रहता है। पाँचों इन्द्रियों के 23 विषय उन्हें पूर्व पुण्य से प्राप्त होते हैं। ये देवता नाटक, वन विहार, जलक्रीड़ा आदि में अपना समय व्यतीत करते हैं। देवताओं को कहीं भी जाना हो तो वे उत्तरवैक्रिय रूप बनाकर जाते हैं। मूल देह से वे विमान में ही रहते हैं। **(चित्र क्रमांक 98)**

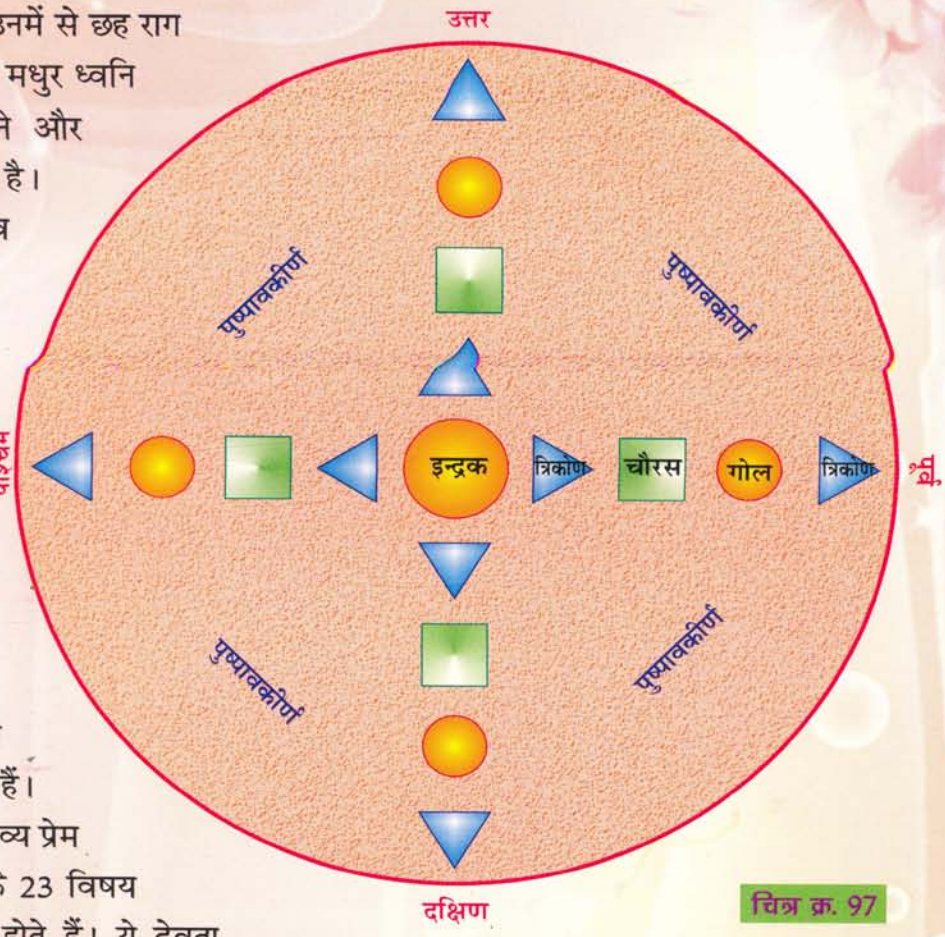

चित्र क्र. 97

देवों का उत्पाद—देव मनुष्य की तरह नौ महीने गर्भ में रहकर जन्म नहीं लेते। इनका जन्म उत्पादशय्या पर होता है। ऐसी उत्पाद शय्याएँ संख्यात योजन वाले देव स्थानों में संख्यात हैं और असंख्यात योजन वाले देव स्थानों में असंख्यात हैं। उन शय्याओं पर देवदुष्य वस्त्र ढँका रहता है। धर्मात्मा और पुण्यात्मा जीव जब इसमें उत्पन्न होते हैं तो वह अंगारों पर डाली हुई रोटी के समान फूल जाती है। पास में रहे हुए देव जन्मोत्सव की खुशी में घंटनाद करते हैं तो उसके अधीनस्थ सभी विमानों में घंटे का नाद हो जाता है, उसे सुनकर सभी देव-देवियाँ उत्पाद शय्या के पास एकत्रित हो जाते हैं और जय-जयकार की ध्वनि से सारा विमान गूँज उठता है। अन्तर्मुहूर्त (48 मिनट) के बाद उत्पन्न हुआ देव पाँचों पर्याप्तियों से पूर्ण होकर 18 वर्ष के तरुणवय वाले के समान शरीर धारण कर मानो निद्रा से उठा हो; इस प्रकार उठकर बैठ जाता है। तब उसके समीप में खड़े हुए देव उससे प्रश्न करते हैं कि **"आपने क्या करनी की थी, जिससे हमारे नाथ बने?"**

वैमानिक के प्रतरों का दूरवर्ती दर्शन

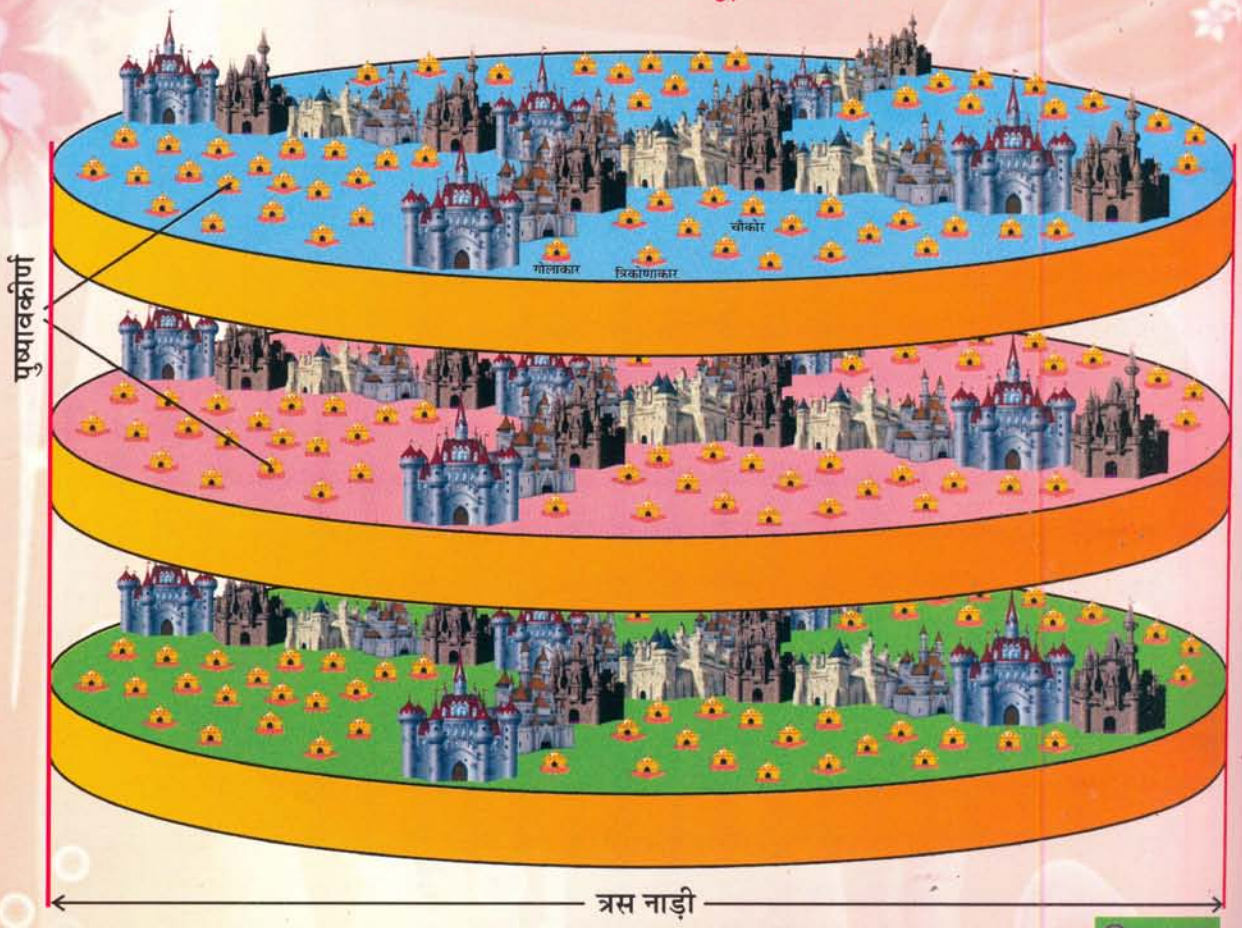

चित्र क्र. 98

नवोत्पन्न देव यह सुनकर भव प्रत्यय (देव योनि के स्वभाव से प्राप्त हुए) अवधिज्ञान से अपने पूर्व जन्म को देखता है और अपने स्वजन मित्रों की याद करता है, साथ ही पृथ्वी पर आने को तैयार होता है, किन्तु देव कहते हैं—**"आप वहाँ जाकर क्या कहोगे? पहले मुहूर्त्त भर यहाँ के दिव्य सुख—नाटक आदि तो देख लो।"** उसी समय **नृत्यकार—अनीक** जाति के देव अपनी दाहिनी भुजा से 108 कुमार और बाँयी भुजा से 108 कुमारियाँ निकालकर 32 प्रकार के नाटक करते हैं। **गंधर्व—अनीक** जाति के देव 49 प्रकार के वाद्यों के साथ 6 राग और 30 रागनियों को मधुर स्वर से अलापते हैं। इस प्रकार अलौकिक आश्चर्यजनक अद्‌भुत दृश्य देखते-देखते यहाँ के 2,000 वर्ष व्यतीत हो जाते हैं। तब तक वह देव वहाँ के दिव्य सुखों में ऐसा लुब्ध हो जाता है कि मनुष्य लोक में आना ही पसंद नहीं करता। मनुष्यलोक की दुर्गन्ध देवों को 400-500 योजन ऊपर तक आती है। इसे वे सहन नहीं कर पाते तथापि कभी-कभी तीर्थंकरों के पंचकल्याणक या साधु-संतों के तप केवलज्ञान महोत्सव या कभी स्नेह और कभी वैर का बदला लेने के लिए भी आ जाते हैं।

देवों के दिव्य स्वरूप—देवों के शरीर की कांति अत्यन्त मनोरम व दिव्य होती है। इनके समचतुरस्र संस्थान युक्त सुन्दर वैक्रिय शरीर होता है। उसमें खून, मांस, केश, रोम, नाखून, हड्डियाँ, चरबी, चमड़ी,

मल-मूत्र, विष्ठा आदि अशुचिकारक पदार्थ नहीं होते हैं बल्कि इनकी देह पुष्प की तरह कोमल और निर्मल सुगंधित श्वासोच्छ्वास से युक्त होती है। इनके शरीर में रज, मैल, पसीना आदि भी नहीं होता। वृद्धावस्था और रोग से रहित काया वाले इन देवों का शरीर सदा ही तेजस्वी व कांतिमान रहता है।

देवता सदा अनिमेष नयन वाले, मन से कार्य साधने वाले, पुष्पशय्या में उत्पन्न होने वाले, भूमि से चार अंगुल ऊपर चलने वाले एवं अर्द्धमागधी भाषा बोलने वाले होते हैं। दीर्घ-प्रदीर्घ आयु वाले होते हैं। कम से कम इनकी आयु 10,000 वर्ष की ओर अधिक से अधिक 33 सागरोपम की होती है। ये रोग से, वृद्धावस्था में या अकस्मात् नहीं मरते वरन् आयुष्य पूर्ण होने पर ही मरते हैं। तब इनका वैक्रिय शरीर कपूर की तरह आकाश मण्डल में तिरोहित हो जाता है। मृत्यु से छह माह पूर्व इनके कण्ठ में रही पुष्पमाला के मुरझाने से इन्हें पता चल जाता है कि मृत्यु निकट है। देवता देवलोक से च्यवकर स्वकर्मानुसार मनुष्य या तिर्यंच गति में पैदा होते हैं, वे नरक में नहीं जाते।

देवों के प्रकार—देव दो प्रकार के हैं—1. **कल्पोपपन्न** और 2. **कल्पातीत**। कल्प अर्थात् आचार-मर्यादा, व्यवस्था। जिन देवलोकों में नियम, मर्यादा व्यवस्था होती है, **वे कल्पोपपन्न देव** कहे जाते हैं और जहाँ नियम—मर्यादा की आवश्यकता नहीं, उन्हें **कल्पातीत देव** कहते हैं।

भवनपति वाणव्यंतर, ज्योतिष ओर वैमानिक के 12 देवलोक प्रशासनिक व्यवस्था के अधीन चलने वाले होते हैं। वहाँ स्वामी सेवक के अनुसार व्यवहार का पालन करना पड़ता है, अतः वे **कल्पोपपन्न** या **कल्पवासी देव** कहलाते हैं। इसके पश्चात् नौ ग्रैवेयक और पाँच अनुत्तर विमान 9 + 5 = 14 देवलोकों में स्वामी-सेवक का व्यवहार नहीं है, वहाँ न कोई छोटा है न बड़ा, वे सभी **अहमिन्द्र** अर्थात् **कल्पातीत देव** कहे जाते हैं।

कल्पोपपन्न देवों के दस प्रकार—मनुष्य लोक में जैसे राजा और प्रजा की सारी सुरक्षा व्यवस्था और व्यवहार सुचारू रूप से चलाने के लिए राजा, जागीरदार, पुरोहित, महामात्य, अंगरक्षक, द्वारपाल, सभासद और चांडाल आदि भिन्न-भिन्न प्रकार की श्रेणी के लोग होते हैं। उसी प्रकार देवलोकों में भी दस प्रकार की श्रेणी के देव होते हैं। उनसे देवलोक का शासन सुव्यवस्थित रूप से चलता है। वे दस प्रकार निम्नलिखित हैं—

1. **इन्द्र**—ये अणिमा आदि ऋद्धि एवं ऐश्वर्य सम्पन्न सभी देवों के स्वामी होते हैं। राजा की तरह इनकी आज्ञा का पालन सभी देव करते हैं।

2. **सामानिक**—आज्ञा और ऐश्वर्य के अतिरिक्त कांति, वैभव आदि में ये इन्द्र के समान ही ऋद्धिशाली होते हैं।

3. **त्रायस्त्रिंशक**—राज पुरोहित के समान इन्द्रों के 33 त्रायस्त्रिंशक देव होते हैं। ये देवलोक के विमानों व देवों का ध्यान रखने वाले, पुरोहित की तरह शांतिक—पौष्टिक कर्म करने वाले होते हैं। संख्या में 33 ही होने के कारण त्रायस्त्रिंशक कहलाते हैं।

4. **पारिषद**—इन्द्र के मित्र के समान देव पारिषद कहलाते हैं। परिषदा अर्थात् सभा तीन प्रकार की होती है—**(क) आभ्यंतर परिषद के देव**—सलाहकार मंत्री के समान जो इन्द्र के बुलाने पर ही आते हैं।

(ख) मध्यम परिषद के देव—कामदारों के समान श्रेष्ठ काम करने वाले, जो बुलाने से भी आते हैं और बिना बुलाए भी आते हैं। **(ग) बाह्य परिषद के देव**—कर्मचारी के समान सभी काम करने वाले ये बिना बुलाए आते हैं और अपने-अपने काम में तत्पर रहते हैं।

5. **आत्मरक्षक**—इन्द्र की रक्षा में हर समय तत्पर। राजा के अंगरक्षक के समान कवच धारण कर अस्त्र-शस्त्र सहित इन्द्र के पास हर समय खड़े रहते हैं।

6. **लोकपाल**—इन्द्र के आदेशानुसार उस-उस विभाग की रक्षा करने वाले, अपराधियों को यथायोग्य दंड देने वाले लोकपाल कहे जाते हैं।

7. **अनीक**—ये सात प्रकार की सेना के रूप में इन्द्र के काम आते हैं। हाथी, घोड़े, रथ, महिष, पैदल, गंधर्व और नाट्य आदि रूप में वैक्रिय शक्ति द्वारा रूप बनाकर इन्द्र के सिपाही के रूप में कार्य करते हैं। '**गंधर्व अनीक देव**' मधुर गान-तान करते हैं और '**नाटक अनीक देव**' 32 प्रकार के मनोरम नाट्य आदि करते हैं।

8. **प्रकीर्णक**—ये नगरवासियों या प्रांतवासियों के समान होते हैं।

9. **आभियोगिक**—ये दास के समान होते हैं। विमानों को खींचने और वाहन आदि रूप में कार्यरत रहते हैं।

10. **किल्विषिक**—ये चंडाल के समान अशुभ कर्म करने वाले नीच जाति के देव होते हैं। देव अवस्था को प्राप्त करके भी ये अज्ञानी, पापशील, द्वेषी और दुराचारी होते हैं, अत: देवलोक में रहकर भी ये उत्तम देवों के स्थान से नीचे दूर अधोभाग में रहते हैं। ये तीन प्रकार के हैं—**(क) तीन पल्य वाले**—ये किल्विषी भवनपति के देवलोकों से लेकर पहले-दूसरे वैमानिक देवलोक तक होते हैं, इनकी आयु तीन पल्योपम की होती है एवं देह सात हाथ की होती है। **(ख) तीन सागरोपम वाले**—ये देव तीसरे-चौथे देवलोक के नीचे रहकर चौथे देवलोक तक के देवों के काम आते हैं। **(ग) तेरह सागरोपम वाले**—पाँचवे देवलोक के ऊपर और छठवें देवलोक के नीचे इनका स्थान है। 13 सागरोपम की स्थिति वाले ये देव छठे लातंक कल्प तक के देवों का दास योग्य कर्म करते हैं।

देव, गुरु, धर्म की निन्दा करने वाले, पूज्य व्यक्तियों का अनादर-अपमान करने वाले और तप-संयम की चोरी करने वाले मरकर किल्विषी देवों में जन्म लेते हैं। परिणामस्वरूप वहाँ ये सब देवों की घृणा के पात्र बनते हैं। ये कुरूप और अशुभ विक्रिया करनेवाले होते हैं। इन्द्र सभा में इनको प्रवेश नहीं मिलता।

व्यंतर और ज्योतिष्क देवों में त्रायस्त्रिंश और लोकपाल के सिवा शेष आठ भेद होते हैं। ज्योतिष देवों के महिष सिवाय छह प्रकार का सैन्य है।

वस्तुत: कल्पोपपन्न देवलोकों में देवलोक का सम्पूर्ण साम्राज्य इन्द्र के अधीन है। किन्तु जब इन्द्र की आयुष्य पूर्ण हो जाती है और कम से कम एक समय व अधिक से अधिक 6 मास देवलोक इन्द्र से रहित होता है, तब चार-पाँच सामानिक देव मिलकर इन्द्र स्थान का संचालन करते हैं। प्रत्येक इन्द्र का निवास अपने-अपने देवलोक के अंतिम प्रतर के कल्पावतंसक विमान में होता है, उसके चारों ओर लोकपाल देवों के निवास होते हैं। कहा गया है कि एक इन्द्र के भव में दो क्रोड़ाक्रोड़ 85 लाख क्रोड़, 71 हजार क्रोड़, 428 क्रोड़, 57 लाख 14

वैमानिक देवलोक की तालिका

देवलोकों के नाम	विमान का आधार	विमान के आकार	विमानों की ऊँचाई	इन्द्र के नाम	सामानिक देव	आत्म-रक्षक देव	आभ्यन्तर परिषद के देव	मध्यम परिषद के देव	बाह्य परिषद के देव	देवों की देह का प्रमाण	देवों का देहवर्ण	मुकुट चिन्ह	देवों की आयु	देवों का आहार	ऊपर तक अवधि ज्ञान	नीचे तक अवधि ज्ञान
1. सौधर्म	घनोदधि	अर्धचंद्र	500 यो.	शक्रेन्द्र	84,000	3,36,000	12,000	14,000	16,000	7 हाथ	रक्त स्वर्ण	मृग	2 सागर	2 हजार वर्ष में	विमान की ध्वजा तक	रत्नप्रभा
2. ईशान	घनोदधि	अर्धचंद्र	500 यो.	ईशानेन्द्र	80,000	3,20,000	10,000	12,000	14,000	7 हाथ	रक्त स्वर्ण	महिष	2 सागर अधिक	2 हजार वर्ष में	विमान की ध्वजा तक	रत्नप्रभा
3. सनतकुमार	घनवात	अर्धचंद्र	600 यो.	सनत्कुमारेन्द्र	75,000	3,00,000	8,000	10,000	12,000	6 हाथ	कमल केशर	शूकर	7 सागर	7 हजार	विमान की ध्वजा तक	शर्कराप्रभा
4. महेन्द्र	घनवात	अर्धचंद्र	600 यो.	माहेन्द्र	70,000	2,80,000	6,000	8,000	10,000	6 हाथ	कमल केशर	सिंह	7 सागर अधिक	7 हजार	विमान की ध्वजा तक	शर्कराप्रभा
5. ब्रह्मलोक	घनवात	पूर्णचंद्र	700 यो.	ब्रह्म लोकेन्द्र	60,000	2,40,000	4,000	6,000	8,000	5 हाथ	कमल केशर	बकरा	10 सागर	10 हजार	विमान की ध्वजा तक	बालुकाप्रभा
6. लांतक	घनोदधि घनवात	पूर्णचंद्र	700 यो.	लांतकेन्द्र	50,000	2,00,000	2,000	4,000	6,000	5 हाथ	श्वेत	मेंढक	14 सागर	14 हजार	विमान की ध्वजा तक	बालुकाप्रभा
7. महाशुक्र	घनोदधि घनवात	पूर्णचंद्र	800 यो.	महाशुक्रेन्द्र	40,000	1,60,000	1,000	2,000	3,000	4 हाथ	श्वेत	घोड़ा	17 सागर	17 हजार	विमान की ध्वजा तक	पंकप्रभा
8. सहस्रार	घनोदधि घनवात	पूर्णचंद्र	800 यो.	सहस्रारेन्द्र	30,000	1,20,000	500	1,000	2,000	4 हाथ	श्वेत	हाथी	18 सागर	18 हजार	विमान की ध्वजा तक	पंकप्रभा
9. आनत	आकाश	अर्धचंद्र	900 यो.	दोनों के एक प्राणतेन्द्र	20,000	80,000	250	500	1,000	3 हाथ	श्वेत	सर्प	19 सागर	19 हजार	विमान की ध्वजा तक	धूमप्रभा
10. प्राणत	आकाश	अर्धचंद्र	900 यो.							3 हाथ	श्वेत	गेंडा	20 सागर	20 हजार	विमान की ध्वजा तक	धूमप्रभा
11. आरण	आकाश	अर्धचंद्र	900 यो.	दोनों के एक अच्युतेन्द्र	10,000	40,000	125	250	500	3 हाथ	श्वेत	बैल	21 सागर	21 हजार	विमान की ध्वजा तक	धूमप्रभा
12. अच्युत	आकाश	अर्धचंद्र	900 यो.							3 हाथ	श्वेत	मृग	22 सागर	22 हजार	विमान की ध्वजा तक	धूमप्रभा
9. नौग्रैवेयक	आकाश	पूर्णचंद्र	1000 यो.	इन्द्र नहीं होते	—	—	—	—	—	2 हाथ	श्वेत	मृग	23 से 31 सागरोपम	23 से 31 हजार	विमान की ध्वजा तक	तमःप्रभा
पाँच अनुत्तर	आकाश	पूर्णचंद्र	1100 यो.	इन्द्र नहीं होते	—	—	—	—	—	1 हाथ	श्वेत	मृग	31 से 33 सागरोपम	31 से 33 हजार वर्ष	सिद्धशिला तक	त्रसनाड़ी कुछ कम

इन एकेक इन्द्रों के 7 प्रकार की अणिका (सेना) है, यथा—1. गन्धर्व, 2. नाटक, 3. हस्ती, 4. घोड़े, 5. रथ, 6. पैदल, 7. वृषभ।

हजार 285 देवियाँ उत्पन्न होकर च्यवित हो जाती हैं। एक इन्द्र इतने समय तक पूरे देवलोक पर आधिपत्य करता हुआ विचरता है।

सम्पूर्ण देवलोकों में चारों निकायों के कुल मिलाकर 64 इन्द्र हैं—**उत्तरेन्द्र भवनपति 10, दक्षिणेन्द्र भवनपति 10, उत्तरेन्द्र वाणव्यंतर 16, दक्षिणेन्द्र वाणव्यंतर 16, चन्द्र ज्योतिष्केन्द्र 1, सूर्य ज्योतिष्केन्द्र 1, 1 से 8 वैमानिक देवलोक में 8, 9 व 10वें देवलोक का 1 (प्राणतेन्द्र), 11 व 12वें देवलोक का 1 (अच्युतेन्द्र) = 64 इन्द्रों का स्वामी अच्युतेन्द्र होता है।**

देवियों की उत्पत्ति, स्थिति व प्रकार—देवियों की उत्पत्ति, भवनपति, वाणव्यंतर, ज्योतिषी और वैमानिक के दो देवलोकों तक होती है। अत: ये सभी देव-देवियों के साथ सप्रविचारी (सविषयी) होते हैं। किन्तु दो देवलोकों के ऊपर देवियों की उत्पत्ति नहीं होने के कारण वे सभी देव अपनी स्वदेवियों से रहित होते हैं, तथापि आठवें सहस्रारकल्प तक देवियों का आवागमन होता रहता है उसके बाद दसवें से बारहवें अच्युत देवलोक तक के देव भी सप्रविचारी ही होते हैं अर्थात् मन से विषय भोग की कामना करने वाले होते हैं। वे सौधर्म और ईशान दो देवलोक की अपरिगृहीता देवियों के साथ विषय भोग करते हैं। परिगृहीता देवियाँ अपने देवों में ही अनुरक्त होती हैं, अत: वे ऊपर के देवलोकों में नहीं जातीं। केवल **अपरिगृहीता देवियाँ** ही जाती हैं।

इस प्रकार उत्पत्ति की अपेक्षा से पहले दूसरे देवलोक में दो प्रकार की देवियाँ हैं—**1. परिगृहीता, 2. अपरिगृहीता।** परिगृहिता अर्थात् सद्आचरण वाली, कुलीन, मर्यादित जीवन जीने वाली देवियाँ और अपरिगृहीता अर्थात् वेश्या के समान स्वेच्छाचारिणी देवियाँ।

सौधर्म देवलोक में अपरिगृहीता देवियों के उत्पत्ति स्थानभूत 6 लाख विमान हैं तथा ईशान देवलोक में 4 लाख विमान हैं। इन विमानों में जिन देवियों की परिपूर्ण एक पल्योपम की स्थिति है, वे सौधर्म देवों के ही भोग में आती है। इससे अधिक दस पल्योपम तक की स्थिति वाली देवियाँ सनत्कुमार देवों के भोग में आती है। दस पल्योपम से अधिक आयुष्य वाली देवियाँ तीसरे देवलोक से आगे माहेन्द्र देवलोक के देवों के पास जाना पसंद करती है। इस प्रकार किस आयु वाली देवियाँ कौन-से देवलोक तक भोग्य है, इसे चार्ट से समझें—

कितनी आयु की देवी	कौन-से देव के भोग्य	कितनी आयु की देवी	कौन-से देव के भोग्य
1 पल्योपम	1. सौधर्म देव भोग्य	30 पल्योपम	7. महाशुक्र देव भोग्य
साधिक 1 पल्योपम	2. ईशान देव भोग्य	35 पल्योपम	8. सहस्रार देव भोग्य
10 पल्योपम	3. सनत्कुमार देव भोग्य	40 पल्योपम	9. आनत देव सेव्य
15 पल्योपम	4. माहेन्द्र देव भोग्य	45 पल्योपम	10. प्राणत देव सेव्य
20 पल्योपम	5. ब्रह्मकल्प देव भोग्य	50 पल्योपम	11. आरण देव सेव्य
25 पल्योपम	6. लांतक देवभोग्य	55 पल्योपम	12. अच्युत देवसेव्य

❑ सिद्धशिला

सर्वार्थसिद्ध विमान से 12 योजन ऊपर 11 रज्जू वलयाकार विस्तार में 45 लाख योजन की लम्बी-चौड़ी उत्तान छत्र के आकार वाली सिद्धशिला है। इसके आठ नाम हैं—

(1) ईषत्—रत्नप्रभा आदि सात पृथ्वियों की अपेक्षा यह पृथ्वी छोटी है, **(2) ईषत्प्राग्भार**—अन्य पृथ्वियों की अपेक्षा इसकी ऊँचाई कम है, **(3) तन्वी**—शेष पृथ्वियों से पतली है, **(4) तनुतन्वी**—मक्षिका के पंख से भी इसका चरम भाग अधिक पतला है, **(5) सिद्धि**—यह सिद्धक्षेत्र के समीप है अथवा यहाँ पहुँच कर जीव कृतकृत्य हो जाता है, **(6) सिद्धालय**—यह सिद्धों का स्थान है, **(7) मुक्ति**—यहाँ कर्मों से मुक्त जीव है, **(8) मुक्तालय**—यह मुक्त जीवों का स्थान है। इसके अतिरिक्त **लोकाग्र**, **लोकाग्रस्तूपिका** (शिखर) **लोकाग्र बुध्यमान** और **सर्व प्राण-भूत-जीव-सत्त्व सुखावहा**—ये चार नाम और भी हैं।

मनुष्य क्षेत्र की तरह ही सिद्धशिला की लम्बाई-चौड़ाई भी 45 लाख योजन है। इसकी परिधि 1 करोड़ 42 लाख 30 हजार 249 योजन से कुछ अधिक है। इसका मध्य भाग 8 योजन मोटा है। उसके आगे चारों ओर इस पृथ्वी की मोटाई क्रमशः प्रति योजन अंगुल पृथक्त्व कम होती-होती चरम भाग में मक्खी के पंख से भी अधिक पतली हो गई है। इसका वर्ण शंख, चन्द्रमा, गोक्षीर और कुंदपुष्प से भी कई गुना श्वेत है, यह सम्पूर्ण स्फटिक रत्नमयी है। इस पृथ्वी के एक योजन ऊपर एक कोस के छठे भाग में[1] जो 333 धनुष और 32 अंगुल परिमाण है वहाँ अनंत सिद्ध भगवान विराजमान हैं। यहीं लोक का अंत हो जाता है। लोक के चारों ओर अनन्त और असीम अलोकाकाश है। अलोकाकाश में आकाश द्रव्य के अतिरिक्त और कोई द्रव्य नहीं होता। एकमात्र आकाश ही आकाश है। **(चित्र क्रमांक 99)**

सिद्धक्षेत्र में सिद्धों की अवस्थिति—सिद्धशिला के ऊपर और लोकांत के नीचे जो एक योजन का मध्यभाग है उसमें भी ऊपर के एक कोस का छठवाँ भाग ही सिद्धक्षेत्र है। सभी मुक्तात्माओं के आत्मप्रदेश इसी सिद्धक्षेत्र में अवस्थित है। मात्र विशेषता यह है कि जिनके अंतिम शरीर की जो भी अवगाहना होती हे, उसके दो-तिहाई भाग में उनके आत्मप्रदेश घनीभूत होकर रहते हैं। सिद्ध होने से पूर्व जघन्य दो हाथ, मध्यम 7 हाथ और उत्कृष्ट 500 धनुष की अवगाहना वाले जीवों की सिद्धक्षेत्र में 2/3 भाग अवगाहना होती है, अतः सिद्धों की अवगाहना जघन्य 1 हाथ 8 अंगुल, मध्यम 4 हाथ 16 अंगुल, उत्कृष्ट 333 धनुष 32 अंगुल की रहती है।

सिद्धात्माओं के शिरोभाग की अंतिम ऊँचाई के जो आत्मप्रदेश हैं, वे नियम से लोकान्त का स्पर्श करके रहे हुए हैं। क्योंकि लोकान्त के बाहर धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय की सत्ता नहीं हैं, अतः सिद्धजीव लोकान्त तक जाकर वहीं स्थिर हो गये हैं। जैसे गैसयुक्त विभिन्न कद के गुब्बारे किसी हॉल में छोड़े जाएँ तो उन सबका उपरिम भाग हॉल की छत का स्पर्श करके ही रहता है, उसी प्रकार सभी सिद्धों के आत्मप्रदेश भी लोकान्त का ही स्पर्श करके रहे हुए हैं। अंतिम समय की जो भी मुद्रा बैठी हुई, खड़ी हुई अवस्था हो वह सिद्ध होने के पश्चात् भी

---

1. एक कोस 2,000 धनुष का होता है, अतः 2,000 धनुष का छठा भाग यानि 2,000 ÷ 6 = 333 धनुष 32 अंगुल।

सिद्धशिला और सिद्धात्माएँ

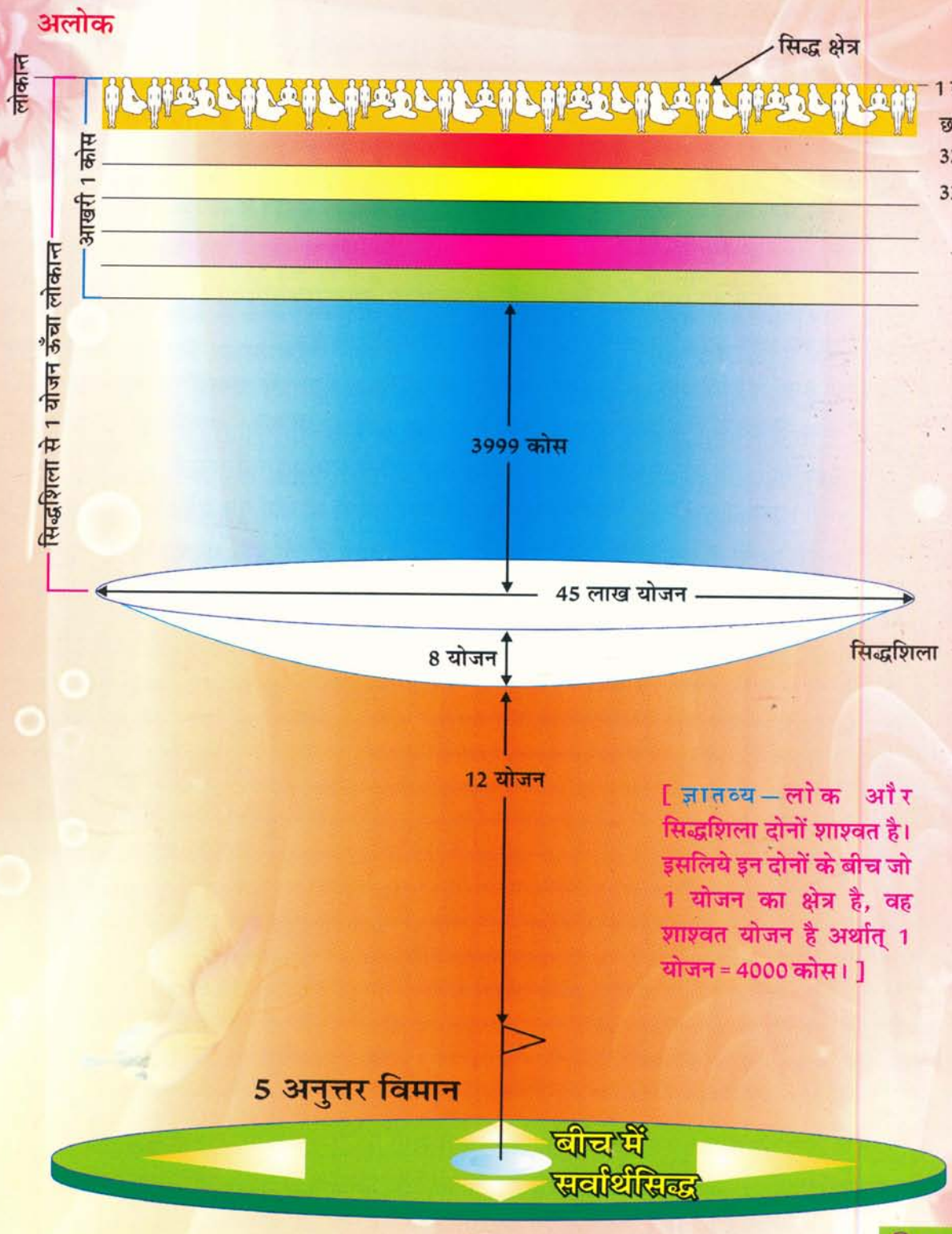

चित्र क्र. 99

यथावत् रहती है। सिद्धजीवों की यह गतिक्रिया अंतिम है, लोकान्त में अवस्थित हो जाने के बाद वे आत्म-प्रदेश वहीं स्थिर व अकम्प हो जाते हैं। सिद्ध जीवों की विशेष जानकारी के लिए 9 द्वार कहे गये हैं—

(1) सत्पद प्ररूपणा—मोक्ष सदा से था और सदा रहेगा।

(2) द्रव्य द्वार—सिद्ध अनन्त हैं वे अभवी जीवों से भी अनन्त गुणे अधिक हैं।

(3) क्षेत्र—सिद्ध जीव सिद्धशिला के ऊपर 1 योजन के अंतिम कोस के छट्ठे भाग में 333 धनुष 32 अंगुल प्रमाण क्षेत्र में रहते हैं।

(4) स्पर्शन—क्षेत्र से कुछ अधिक भाग का वे स्पर्श करते हैं।

(5) काल—एक सिद्ध की अपेक्षा आदि है अन्त नही। सभी सिद्धों की अपेक्षा सिद्ध अनादि अनन्त है।

(6) भाग—वे लोक के असंख्यातवें भाग पर रहते हैं।

(7) भाव—सिद्धों में क्षायिक भाव, जीवत्व भाव और परिणामिक भाव है।

(8) अन्तर—सिद्ध जीव पुन: लौटकर नहीं आते, अत: उनका अन्तर नहीं पड़ता।

(9) अल्पबहुत्व—सबसे कम नपुंसक सिद्ध होते हैं, उससे स्त्री पर्याय से सिद्ध होने वाले संख्यात हैं और पुरूष उससे संख्यात गुणा अधिक सिद्ध होते हैं। एक समय में नपुंसक 10 स्त्री 20 और पुरूष 108 सिद्ध हो सकते हैं।

मोक्ष के योग्य अधिकारी—(1) भव्यसिद्धिक, (2) बादरजीव, (3) त्रसजीव, (4) संज्ञी, (5) पर्याप्त, (6) वज्र ऋषभ नाराच संघयण वाला, (7) मनुष्य गति, (8) अप्रमादी, (9) क्षायिक सम्यक्त्वी, (10) अवेदी, (11) अकषायी, (12) यथाख्यातचारित्री, (13) स्नातक निर्ग्रंथ, (14) परम शुक्ललेश्यी, (15) पंडितवीर्य, (16) शुक्लध्यानी, (17) केवलज्ञानी, (18) केवलदर्शनी और (19) चरम शरीरी—ये 19 प्रकार के जीव मोक्ष के अधिकारी हैं।

सभी मुक्त आत्माएँ शरीर रहित हैं, अत: शरीर सम्बन्धी किसी भी प्रकार की उपाधि वहाँ पर नहीं है। वहाँ जन्म, जरा, मरण, भय, रोग, शोक, दु:ख, दरिद्रता, कर्म, काया, मोह, माया नहीं है। वहाँ स्वामी-सेवक व्यवहार भी नहीं है। वहाँ न भूख है न प्यास, न रूप है न रस-गंध-स्पर्श। वहाँ न स्त्री है, न पुरूष है न नपुंसक। मात्र संपूर्ण ज्ञाता-परिज्ञाता और शुद्ध निर्मल आत्मा है। सिद्धों के मुख्य आठ गुण हैं। जो अष्टकर्मों का क्षय करने पर प्रगट हुए—**(1) अनन्तज्ञान, (2) अनन्तदर्शन, (3) अनन्त सुख, (4) अनन्तचारित्र, (5) अटल अवगाहना, (6) अमूर्तिक, (7) अगुरूलघु, (8) अनन्तवीर्य।**

वे ज्योति में ज्योति की तरह एक दूसरे में समाये हुए है। जहाँ एक सिद्ध है वहाँ अनन्त सिद्ध है और जहाँ अनन्त सिद्ध है वहाँ एक सिद्ध है। वे अपने केवलज्ञान के द्वारा संसार के समस्त द्रव्य-पर्यायों को एक साथ देखते हैं। वे पौद्गलिक सुख-दु:खों से रहित होकर अनन्त आत्मिक सुखों में सदा ही लीन परम आत्म ज्योति स्वरूप है। उस चरम व परम सच्चिदानंद अवस्था को प्राप्त करना ही हमारा लक्ष्य है।

❑❑

अध्याय 5 : क्षेत्र व कालमान

जैन गणितानुयोग का मुख्य उद्देश्य जैन खगोल और भूगोल अर्थात् लोक के स्वरूप को समझाना है, लोक क्षेत्र और काल सापेक्ष होता है, अत: इसके अन्तर्गत क्षेत्र और काल की चर्चा भी समाहित है। क्षेत्र से तात्पर्य है—लम्बाई-चौड़ाई और ऊँचाई। यह माप '**प्रदेश**' से प्रारम्भ होता है और '**रज्जु**' तक जाकर समाप्त होता है। अर्थात् क्षेत्र माप की सबसे छोटी इकाई '**प्रदेश**' है और सबसे बड़ी इकाई रज्जु है।

'**प्रदेश**' अर्थात् गतिशील एक परमाणु एक समय में सामान्यत: जितनी दूरी पार करता है, उतने आकाश के क्षेत्र को '**प्रदेश**' कहते हैं। दूसरे शब्दों में 'प्रदेश' '**वास्तविक भौमितिक बिन्दु**' (True Geometrical Point) है।

अति सूक्ष्मता के कारण परमाणु अंसव्यवहार्य हो जाता है। अर्थात् वह व्यवहार में उपयोगी नहीं है। इसलिए '**व्यवहारिक परमाणु**' नाम से दूसरा '**मान**' स्थापित किया गया है। यह अनंत परमाणुओं का बना हुआ 'स्कन्ध' है। अनन्त व्यवहारिक परमाणुओं का एक प्रसिद्ध '**स्कन्ध**' '**उत्श्लक्षण श्लक्ष्णिका**' बनता है। यह माप क्षेत्र की व्यवहार्य इकाई के रूप में है। प्रदेश के द्वारा व्यवहारिक माप का कोष्ठक निम्न प्रकार है—

अनंतानंत सूक्ष्म परमाणु	=	1 उत्श्लक्ष्णश्लक्ष्णिका – व्यवहारिक परमाणु।
8 उत्श्लक्ष्ण श्लक्ष्णिका	=	1 श्लक्ष्णश्लक्ष्णिका।
8 श्लक्षण श्लक्ष्णिका	=	1 ऊर्ध्व रेणु – वे कण जो सूर्य प्रकाश में खिड़की आदि में उड़ते दिखाई दें।
8 उर्ध्व रेणु	=	1 त्रस रेणु – पूर्व दिशा की वायु से प्रेरित होकर उड़ने वाले कण।
8 त्रसरेणु	=	1 रथरेणु – चलते रथ के चक्र के कारण उड़ने वाले धूलिकण।
8 रथरेणु	=	1 बालाग्र – देवकुरू, उत्तरकुरू के युगलिकों का।
8 बालाग्र	=	1 बालाग्र – हरिवर्ष – रम्यक वर्ष के युगलिकों का।
8 बालाग्र	=	1 बालाग्र – हेमवत – हैरण्यवत के युगलिकों का।
8 बालाग्र	=	1 बालाग्र – महाविदेह के मनुष्यों का।
8 बालाग्र	=	1 बालाग्र – भरत-ऐरावत क्षेत्र के मनुष्य का।
8 बालाग्र	=	1 लीख
8 लीख	=	1 जूँ
8 जूँ	=	1 जव
8 जव	=	1 उत्सेधांगुल (दो उत्सेधांगुल से भगवान महावीर का एक आत्मांगुल बनता है।)

6 उत्सेधांगुल	=	1 पाँव का मध्यभाग
2 पाँव के मध्य भाग	=	1 बेंत (बालिश्त)
2 बेंत	=	1 हाथ
2 हाथ	=	1 कुक्षि
2 कुक्षि	=	1 धनुष
2 हजार धनुष	=	1 कोस
चार कोस	=	1 योजन (उत्सेधांगुल से 8 माइल)

(चित्र क्रमांक 100)

विभागनिष्पन्न क्षेत्र माप—इसकी आद्य इकाई '**अंगुल**' है। अंगुल तीन प्रकार का है—(1) उत्सेधांगुल, (2) आत्मांगुल, (3) प्रमाणांगुल।

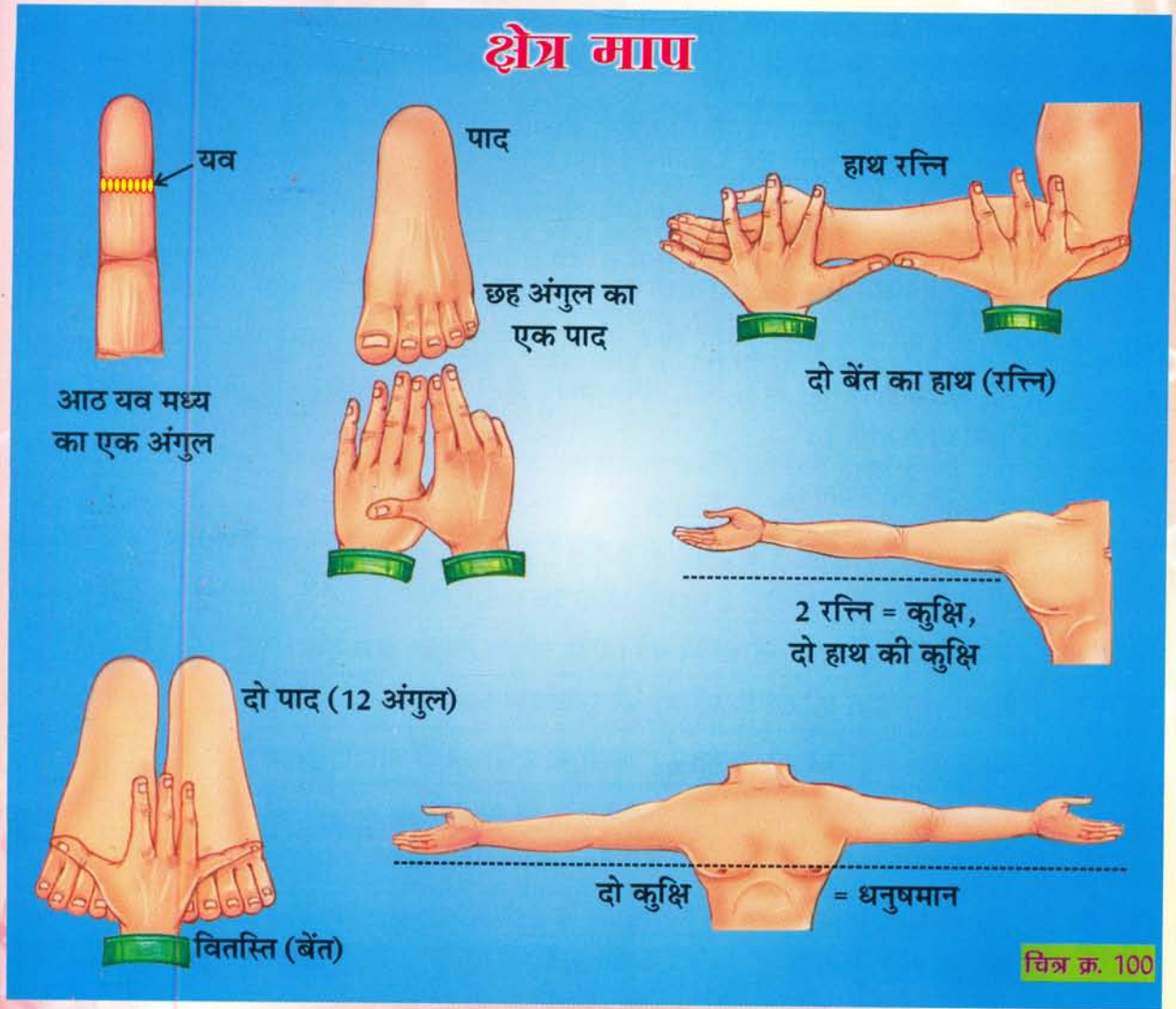

(1) उत्सेधांगुल—उत्सेध का अर्थ है—बढ़ना। उत्सेधांगुल माप की प्रथम इकाई है—परमाणु। इसके पश्चात् त्रसरेणु, रथरेणु, बालाग्र, लीख, जूँ, जौ (जव) ये सभी क्रमशः आठ गुना बढ़ते जाते हैं अथवा पाँचवाँ आरा 21 हजार वर्ष का होता है। साढ़े 10 हजार वर्ष व्यतीत होने पर जो मनुष्य होंगे उनकी उँगलियों के नाप को उत्सेधांगुल कहते हैं। उत्सेधांगुल से नारकी, तिर्यंच, मनुष्य व देवों के शरीर की अवगाहना का माप होता है।

(2) आत्मांगुल—आत्मांगुल अर्थात् स्वयं की अंगुली। जिस काल में जो मनुष्य होते हैं, उनके अपने अंगुल को आत्मांगुल कहते हैं। अपने अंगुल से 12 अंगुल का एक मुख और नौ मुख (108 अंगुल) की ऊँचाई का एक पुरूष, श्रेष्ठ गुण युक्त पुरूष 108 अंगुल ऊँचे होते हैं। 104 अंगुल प्रमाण के पुरूष मध्यम कोटि के होते हैं तथा अधम पुरूष 96 अंगुल की ऊँचाई वाले होते हैं। आत्मांगुल के प्रमाण से कुएँ, बावड़ी, नदी, तालाब, वन, उद्यान, देवस्थान, द्वार, मार्ग, रथ, यान, पात्र, उपकरण आदि मानवकृत सभी वस्तुओं की लम्बाई-चौड़ाई-ऊँचाई मापी जाती है।

(3) प्रमाणांगुल—अंगुल का यह सबसे बड़ा माप है। एक उत्सेधांगुल को 1,000 से गुणा करने पर एक प्रमाणांगुल बनता है। (यह भरत चक्रवर्ती के अंगुल का माप है।)[1] दिगम्बर मान्यता के अनुसार प्रमाणांगुल उत्सेधांगुल से 500 गुना है। अतः

श्वेताम्बर मान्यता अनुसार प्रमाणांगुल निष्पन्न योजन = 4,000 कोस का होता है।

दिगम्बर मान्यता अनुसार प्रमाणांगुल निष्पन्न योजन = 2,000 कोस का होता है।

प्रमाणांगुल से बने योजन को असंख्यात से गुणा करने पर सात राजू प्रमाण लम्बी आकाश प्रदेश की एक '**श्रेणी**' होती है। उसको असंख्यात से गुणा करने पर एक '**प्रतर**' होता है तथा एक प्रतर को असंख्यात से गुणा करने पर '**लोक**' का परिमाण बनता है और लोक को अनन्त से गुणा करने पर '**अलोक**' का परिमाण बनता है। लोक में रहे हुए द्वीप, समुद्र, क्षेत्र, नदी, पर्वत आदि सभी शाश्वत पदार्थों की लम्बाई-चौड़ाई आदि प्रमाणांगुल के द्वारा मापी जाती है।

इन तीनों के पुनः तीन-तीन भेद हैं—**(1) सूच्यंगुल, (2) प्रतरांगुल, तथा (3) घनांगुल।**

(1) सूच्यंगुल—सूच्यंगुल में असंख्य प्रदेश होते हैं लेकिन वे एक सीधी रेखा में होते हैं। उनमें चौड़ाई और मोटाई नहीं होती मात्र लम्बाई होती है। इसमें प्रदेश इस प्रकार स्थापित होते हैं कि इसका आकार सूई (सूचिका) के समान बने। **एक अंगुल लम्बी तथा एक प्रदेश चौड़ी आकाश प्रदेशों की श्रेणी (पंक्ति) को सूच्यंगुल कहते हैं।**

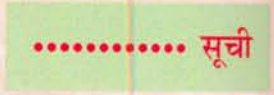

(2) प्रतरांगुल—वर्ग को प्रतर कहते हैं। किसी भी राशि को दो बार लिखकर गुणित करने पर जो संख्या बने वह '**वर्ग**' है। वर्गाकार या आयताकार अंगुल को प्रतरांगुल कहते हैं अर्थात् जो एक अंगुल लम्बा और एक अंगुल चौड़ा हो वह प्रतरांगुल

1. वर्तमान में एक उत्सेधांगुल अर्थात् लगभग 1½ इंच, उत्सेधांगुल से एक हाथ अर्थात् 17 से 18 इंच, एक गाऊ अर्थात् 2¼ मील, एक योजन अर्थात् 9 मील।

है। इसमें लम्बाई और चौड़ाई दोनों होती है। सूच्यंगुल (श्रेणी) को सूच्यंगुल से गुणा करने पर प्रतरांगुल निष्पन्न होता है। जैसे सूच्यंगुल 3 प्रदेश की हैं तो उसे 3 से गुणा करने पर (3 × 3 = 9) नौ आकाश प्रदेश को प्रतरांगुल कहेंगे।

(3) घनांगुल—प्रतारांगुल को सूच्यंगुल से गुणित करने पर घनांगुल बनता है। घनांगुल में मोटाई, लम्बाई तथा चौड़ाई तीनों होती है। वर्गाकार में उसी संख्या को उसी संख्या से दो बार गुणित किया जाता है, जबकि घनाकार में उसी संख्या को उसी संख्या से तीन बार गुणित किया जाता है। घनांगुल एक अंगुल लम्बा, एक अंगुल चौड़ा और एक अंगुल मोटा होता है। जैसे 3 प्रदेशात्मक सूच्यंगुल × 9 प्रदेशात्मक प्रतरांगुल = 27 प्रदेशात्मक घनांगुल जानना।

सूच्यंगुल से लम्बाई, प्रतरांगुल से वस्तु की लम्बाई-चौड़ाई और घनांगुल से वस्तु की लम्बाई-चौड़ाई और मोटाई मापी जाती है। सूच्यंगुल (श्रेण्यंगुल) सबसे छोटा है, उससे प्रतरांगुल असंख्यात गुणा है और प्रतरांगुल से घनांगुल असंख्यात गुणा है।

असंख्यात कोड़ाकोड़ी घनांगुल गुणित योजनों की पंक्ति को '**श्रेणी**' या '**जगच्छ्रेणी**' कहते हैं। जगच्छ्रेणी के वर्ग को '**जगत्प्रतर**' कहते हैं और जगच्छ्रेणी के घन को लोक या घन-लोक कहते हैं। इनमें से जगच्छ्रेणी के सातवें भाग-प्रमाण क्षेत्र को राजू कहते हैं। घन लोक 343 राजु प्रमाण है।

सिद्धान्त में जहाँ कही भी बिना किसी विशेषता के सामान्य रूप से 'श्रेणी' अथवा 'प्रतर' का उल्लेख हो, वहाँ सर्वत्र इस घनाकार लोक की सात राजू प्रमाण '**श्रेणी**' अथवा '**प्रतर**' समझना चाहिये।

इसी प्रकार जहाँ कहीं भी सामान्य रूप से 'लोक' शब्द आए, वहाँ घनरूप लोक का ग्रहण करना चाहिये। संख्यात राशि से गुणित लोक को 'संख्यातलोक', 'असंख्यात राशि से गुणित लोक को 'असंख्यातलोक' तथा अनन्त राशि से गुणित लोक को 'अनन्तलोक' कहते हैं।

यद्यपि अनन्तलोक के बराबर तो अलोक ही है, तथापि वह प्रमाण इसलिये है कि उसके द्वारा अलोक का स्वरूप जाना जाता है। अन्यथा अलोकविषयक बुद्धि ही उत्पन्न नहीं हो सकती है।

सर्वलोक के घनाकार 343 रज्जु का हिसाब	घनाकार रज्जु
अधोलोक के लोकान्त से सातवें नरक	46
सातवें नरक से छठे नरक	40
छठे नरक से पाँचवे नरक	34
पाँचवे नरक से चौथे नरक	28
चौथे नरक से तीसरे नरक	22
तीसरे नरक से दूसरे नरक	16
दूसरे नरक से प्रथम नरक	10

प्रथम-नरक से मध्यलोक	10
मध्यलोक से पहला-दूसरा देवलोक तक	19½
पहले-दूसरे से तीसरे-चौथे देवलोक तक	16½
तीसरे-चौथे से पाँचवे-छठे देवलोक तक	37½
पाँचवे-छठे से सातवें-आठवें देवलोक तक	14½
सातवें-आठवें से नौवें-दसवें देवलोक तक	12½
नौवें-दसवें से ग्यारहवें-बारहवें देवलोक तक	10½
ग्यारहवें-बारहवें से नौ ग्रैवेयक देवलोक तक	8½
नौ ग्रैवेयक से पाँच अनुत्तरविमान देवलोक तक	6½
पाँच अनुत्तरविमान से सिद्ध क्षेत्र	11
सर्व लोक घनाकार रज्जु	**343**

क्षेत्र का माप करने के लिये—रज्जू का माप अंतिम है, इसी से लोक का क्षेत्रफल जाना जाता है, इसके पश्चात् अलोक का माप करने के लिये लोक को आधार बनाया जाता है, अर्थात् अलोक कितना बड़ा है, इस प्रश्न का उत्तर यही है कि जिसमें अनंत लोक समा जाय इतना विशाल आकाश क्षेत्र अलोक का है। अलोक की कोई सीमा नहीं है, वह अनंतानंत है।

आठ प्रकार का माप—जंबूद्वीप एक लाख योजन का है, यह वृत्त विष्कम्भ अर्थात् गोल एवं थाली के समान चपटे आकार का है। ऐसे आकार को 'प्रतरवृत्त' कहा जाता है। इस प्रकार आठ माप कहे गये है—

(1) **परिधि Circumference**—गोल वस्तु का घेराव।

(2) **गणितपद या क्षेत्रफल Area of a Circle**—अमुक माप के समचौरस खंड अथवा वृत्त (गोलाकार) क्षेत्र के योजन जितने समचौरस भाग। जैसे कोई व्यक्ति जम्बूद्वीप के 1 योजन लम्बे और 1 योजन चौड़े टुकड़े करना चाहे तो वह जम्बूद्वीप के 7 अरब, 90 करोड़, 56 लाख, 94 हजार 150 टुकड़े कर सकता है।

(3) **जीवा Chord**—किसी भी क्षेत्र की पूर्व से पश्चिम तक की उत्कृष्ट लम्बाई अथवा धनुष की डोरी जैसी उत्कृष्ट लम्बाई।

(4) **ईषु Height of a Segment**—तीर चढ़े धनुष में तीर का स्थान मध्य में होता है वैसे ही मध्य की चौड़ाई अथवा धनुपृष्ठ के मध्य से जीवा के मध्य भाग तक का विष्कम्भ।

(5) **धनु:पृष्ठ Arc of a Circle**—अर्द्धचंद्राकार भरतादि क्षेत्र का पीछे का भाग अर्थात् धनुष के पीछे का भाग।

(6) **बाहा Arc(s) of the Zone of two parrelel Chords**—धनु:पृष्ठ के दोनों ओर के मध्य का मुड़ा हुआ अधिक भाग।

(7) **प्रतर Area of a Segment**—खंड का क्षेत्रफल अथवा चौकोर पदार्थ की लम्बाई-चौड़ाई का गुणाकार।

(8) **घन Cube**—लम्बाई-चौड़ाई और ऊँचाई का गुणाकार। **(चित्र क्रमांक 101)**

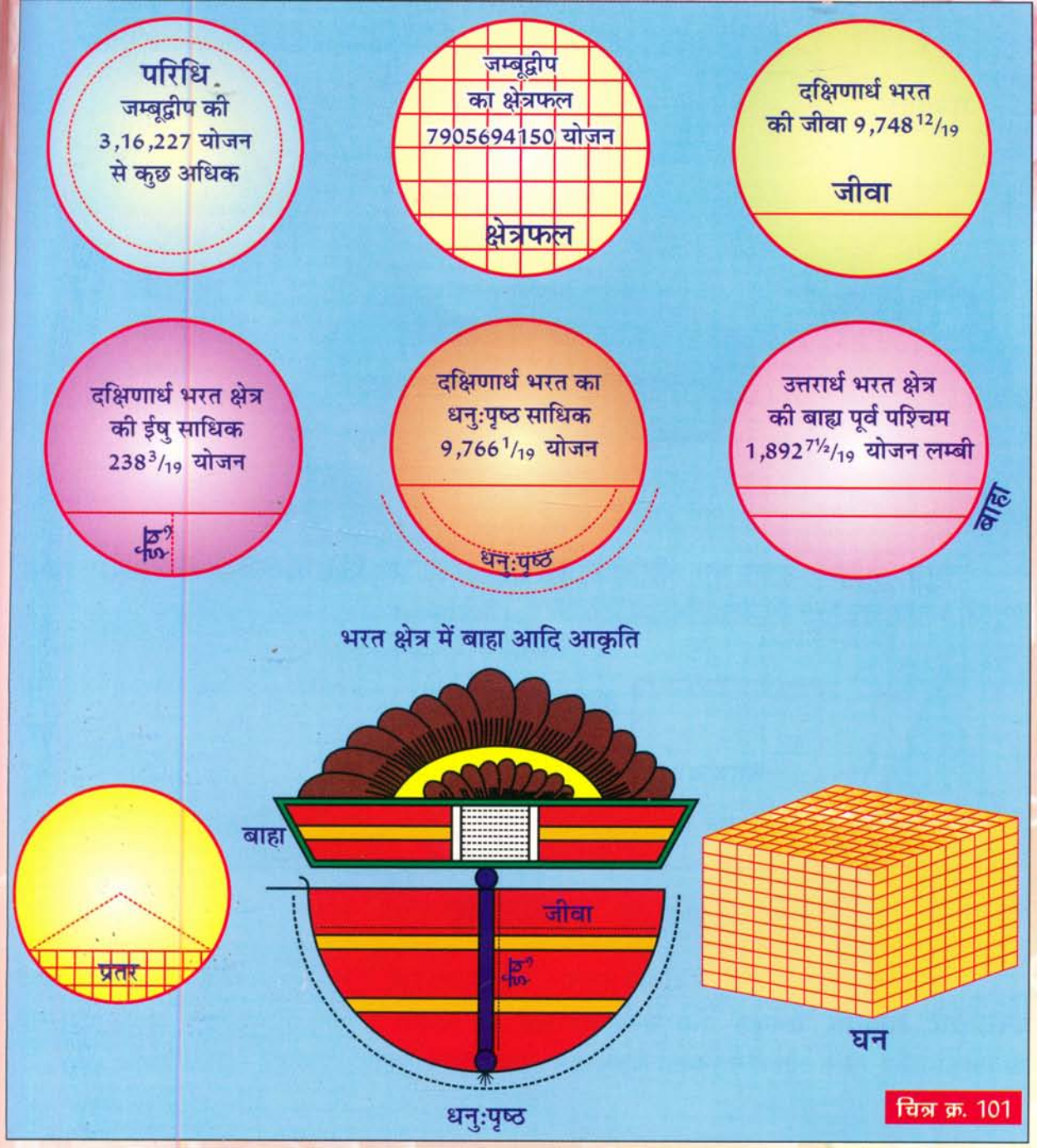

चित्र क्र. 101

ज्यामितिक आकृतियाँ—जैन आगमों में लोक स्वरूप का वर्णन करते हुए सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, द्वीप, समुद्र आदि के वर्णन में क्षेत्र-गणित की अलग-अलग ज्यामितीक आकृतियों की विशद चर्चा हुई है। 'सूर्यप्रज्ञप्ति' (300 ई.पू.) में आठ प्रकार के चतुर्भुजों का उल्लेख किया है जैसे—समचतुस्र, विषमचतुरस्त्र, समचतुष्कोण, विषमचतुष्कोण, समचक्रवाल, विषमचक्रवाल, चक्रार्धचक्रवाल, चक्राकार। **(चित्र क्रमांक 102)**

चित्र क्र. 102

त्रिभुज, चतुर्भुज, आयत, वृत्त, और दीर्घवृत्त (Ellipse) इन आकृतियों के लिये ग्रन्थों में क्रमशः त्रिस्त्र, चतुर्स्त्र, आयत, वृत्त तथा परिमण्डल ये नाम दिये गये हैं। **(चित्र क्रमांक 103)**

चित्र क्र. 103

इन क्षेत्रों के प्रतर और घन—ये दो भेद बताकर 'अनुयोगद्वारसूत्र' में बड़ी सूक्ष्म चर्चा की है। **घनत्रियस्त्र, घनचतुर्स्त्र, घनायत, घनवृत्त** तथा **घनपरिमण्डल** का आशय क्रमशः त्रिभुजाकार सूचीस्तम्भ, घन, आयताकार ठोस, गोला और दीर्घवृत्तकार बेलन से है। इनकी आकृतियाँ इस प्रकार हैं—**(चित्र क्रमांक 104)**

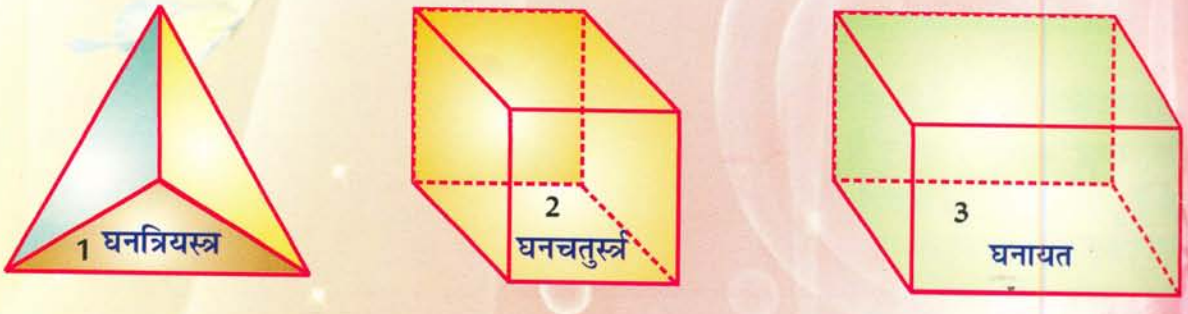

अन्य क्षेत्र आकृतियाँ

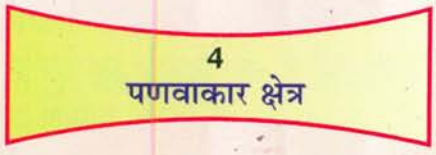

चित्र क्र. 104

त्रिज्या, व्यास और क्षेत्रफल

त्रिज्या (Radius) विष्कंभार्ध—वर्तुल के मध्यबिंदु से परिध को जोड़ने वाली सीधी रेखा को त्रिज्या कहते है। त्रिज्या व्यास से आधी होती है।

व्यास (Diameter) विष्कंभ—वर्तुल के मध्यबिंदु में से होती हुई परिध के दोनो छोरों को जोड़ती सीधी रेखा को व्यास कहते है, यह त्रिज्या से दुगुना होता है।

क्षेत्रफल—अमुक माप के समचौरसखंड अथवा वृत्तक्षेत्र के योजन प्रमाण समचौरस विभाग को क्षेत्रफल कहते हैं। **(चित्र क्रमांक 105)**

चित्र क्र. 105

काल मान

जैन दर्शन में काल-गणना के मान तीन भागों में विभक्त है—**(1) संख्यात काल-मान, (2) असंख्यात काल-मान, (3) अनंत काल-मान।**

'समय' से लेकर 'शीर्ष प्रहेलिका' तक का काल '**संख्यात काल मान**' है। पल्योपम, सागरोपम आदि '**असंख्यात काल-मान**' और पुद्गल-परावर्तन आदि **अनंत काल-मान** है।

प्रस्तुत ग्रंथ में स्थान-स्थान पर संख्यात, असंख्यात और अनंत काल-मानों का प्रयोग हुआ है; अत: यहाँ पर इनकी विस्तृत परिभाषाएँ दी जा रही हैं—

(1) संख्यात काल-मान—काल का अत्यंत सूक्ष्म अविभाज्य भाग 'समय' है। 'समय' से प्रारम्भ करते हुए आवलिका, मुहूर्त, अहोरात्र, तथा आगे 194 अंक रूप शीर्ष प्रहेलिका तक के काल-मान को 'संख्यात' कालमान कहते है।

समय—समय की सूक्ष्मता को व्यवहार में समझाने के लिए अनुयोगद्वार सूत्र में जीर्ण वस्त्र-कर्त्तन का उदाहरण दिया है -

एक तरूण, बलवान और कला निपुण दर्जी किसी एक अति जीर्ण-शीर्ण वस्त्र को एक ही बार में एक हाथ प्रमाण फाड़ डालता है, उतने काल में असंख्यात समय व्यतीत हो जाते हैं, इस सिद्धांत को इस प्रकार समझाया गया है—वस्त्र में अनेक तंतु हैं, प्रत्येक तन्तु अनेक '**पक्ष्मणों**' का समुदाय है; प्रत्येक पक्ष्मण अनेक '**समितियों**' के संगठन से बना है; प्रत्येक 'समिति' अनन्त '**संघातों**' का समुदाय है। प्रत्येक संघात अनन्त **परमाणुओं** के मिलने से बना है। अत: जब अनंत परमाणुओं का क्षरण होगा तभी एक संघात फटेगा। अनंत संघातों के फटने पर ही एक समिति, अनेक समितियों के फटने पर ही एक पक्ष्मण, अनेक पक्ष्मणों के फटने पर ही एक तंतु और अनेक तंतु फटेंगे तभी सम्पूर्ण वस्त्र फटेगा। जिस प्रकार वस्त्र की प्रत्येक क्रिया एक के बाद एक घटित होती है, तथापि हमें सम्पूर्ण वस्त्र एक साथ एक समय में फटा, ऐसा प्रतीत होता है। उसी प्रकार सूक्ष्मातिसूक्ष्म क्रिया में असंख्यात समय पूर्ण हो जाता है।

समय के पश्चात् उसके समूह रूप कालविभाग को निम्न प्रकार से वर्णित किया है—

समय = काल का सूक्ष्मतम अंश

256 आवलिका = 1 क्षुल्लक भव (निगोद का)

संख्यात आवलिका = 1 उच्छ्वास
(अथवा) 17½ क्षुल्लक भव = 1 श्वासोच्छ्वास

1 उच्छ्वास नि:श्वास के काल = 1 प्राण

7 स्तोक = 1 लव

77 लव = 1 मुहूर्त्त (48 मिनट)[2]

जघन्य युक्त असंख्यात समय = 1 आवलिका

संख्यात आवलिका = 1 नि:श्वास[1]

7 प्राण = 1 स्तोक

30 मुहूर्त = 1 अहोरात्रि (एक दिन और रात)

---

1. एक उच्छ्वास में स्थूल गणना से 2880/3773 सैकण्ड होते हैं। इतने ही नि:श्वास में भी।
2. 3773 उच्छ्वास, नि:श्वास का एक मुर्हूत कहा है।

15 अहोरात्र = 1 पक्ष
2 पक्ष = 1 मास
2 मास = 1 ऋतु (हेमंत, शिशिर, बसंत आदि)
3 ऋतु = 1 अयन
2 अयन = 1 संवत्सर (वर्ष)
5 संवत्सर = 1 युग
20 युग = 100 वर्ष
10 शतक = 1000 वर्ष
शतसहस्त्र वर्ष = 1 लाख वर्ष
84 लाख वर्ष = 1 पूर्वांग
84 लाख पूर्वांग = 1 पूर्व[1]
84 लाख पूर्व = 1 त्रुटितांग

इसी प्रकार 84-84 से गुणा करते जाने पर त्रुटित, अड़डांग, अडड, अववांग **अवव**, **हूहूकांग**, **हूहूक**, **उत्पलांग**, **उत्पल**, **पद्मांग**, **पद्म नलिनांग**, **नलिन**, **अर्थनुपूरांग**, **अर्थनुपूर**, **अयुतांग**, **अयुत**, **प्रयुतांग**, **प्रयुत**, **नयुतांग**, **नयुत**, **चूलिकांग**, **चूलिका**, **शीर्षप्रहेलिकांग**, **शीर्षप्रहेलिका** संख्या बनती है। यह संख्या 7582, 6325, 307, 3010, 2411, 5797, 3569, 9756, 9640, 6218, 9668, 4808, 0183, 296 इन 54 अंकों पर 140 बिंदी लगाने पर 194 अंक प्रमाण है। ग्रंथांतरों में इन संख्याओं के क्रम और नामों में अंतर हैं, तथापि संख्या में किसी प्रकार का अंतर नही आता। शीर्षप्रहेलिका का अंतिम संख्यात मान है। इसके बाद गणित का विषय समाप्त हो जाता है।

(2) असंख्यात काल-मान—'शीर्षप्रहेलिका' के बाद 'असंख्यात 'काल-मान' प्रारम्भ होता है। उसे उपमा द्वारा समझाया गया है। उपमा के मुख्य दो भेद हैं—**(1) पल्योपम, (2) सागरोपम।**

पल्योपम काल-मान- बेलनाकार खड्डे या कुएँ को 'पल्य' कहा जाता है। 'पल्य' की उपमा से बताया गया मान '**पल्योपम**' है। पल्योपम के तीन प्रकार हैं—**(1) उद्धार पल्योपम, (2) अद्धा पल्योपम, (3) क्षेत्र पल्योपम। (चित्र क्रमांक 106)**

(1) उद्धार पल्योपम—उत्सेधांगुल प्रमाण एक योजन लम्बे, एक योजन चौड़े एक योजन गहरे एवं तीन योजन से कुछ अधिक परिधि वाले एक गोलाकार पल्य या कुएँ में एक दिन के अथवा सात दिन तक के बालकों के बालाग्र किनारे तक इस प्रकार ठूँस-ठूँस कर भरे गये हों कि उन पर चक्रवर्ती की सेना भी निकल जाये पर वे दबे नहीं। वे इतने सघन हों कि उन बालों को न अग्नि जला सके न हवा उड़ा सके। परिपूर्ण उस पल्य में से

पल्योपमकाल मापने का घनवृत्तपल्य

चित्र क्र. 106

1. एक पूर्व का परिमाण—70 खरब 56 (70,56,00,00,00,000) वर्ष का होता है।

एक-एक बालाग्र प्रतिसमय निकाला जाये, जब तक कि वह पल्य पूर्ण रूप से खाली या निर्लेप न हो जाये—उतने काल को एक '**उद्धार पल्योपम**' कहते हैं।

उद्धार पल्योपम के भी दो भेद हैं—**(1) स्थूल (बादर) उद्धार पल्योपम, (2) सूक्ष्म उद्धार पल्योपम।** स्थूल उद्धार पल्योपम में प्रतिसमय एक बालाग्र निकाला जाता है और सूक्ष्म उद्धार पल्योपम में उन बालों के असंख्य खंड करके फिर प्रतिसमय एक-एक खंड निकाला जाता है।

इतने अधिक बाल निकलने में भी जो संख्या होगी उसे निश्चय में तो संख्यात ही कहेंगे, असंख्यात नहीं। क्योंकि निश्चय से तो बाल संख्यात हैं, अतः संख्यात समय में वे निकल जायेंगे। इसी प्रकार सूक्ष्म उद्धार पल्योपम में भी असंख्य अदृश्य टुकड़ों को निकालने में संख्यात करोड़ वर्ष का समय ही लगता है।

(2) अद्धा पल्योपम—अद्धा पल्योपम के भी दो प्रकार हैं—(1) बादर अद्धापल्योपम, (2) सूक्ष्म अद्धापल्योपम।

सौ-सौ वर्ष की अवधि में एक-एक बाल निकालने में जो समय लगे उसे **बादर (स्थूल) अद्धा पल्योपम** कहते हैं। यह अद्धा पल्योपम संख्यात करोड़ वर्षों का ही होता है। सौ-सौ वर्ष में एक-एक सूक्ष्म बालाग्र के खण्डों को निकालने में जो अवधि लगती है उसे **सूक्ष्म अद्धा पल्योपम** कहते हैं। यह सूक्ष्म अद्धा पल्योपम असंख्यात करोड़ वर्षों का होता है।

(3) क्षेत्र पल्योपम—क्षेत्र पल्योपम दो प्रकार का है—(1) बादर क्षेत्र पल्योपम, (2) सूक्ष्म क्षेत्र पल्योपम।

पूर्व कथित पल्य के आकाश प्रदेशों में से समय-समय एक-एक आकाश प्रदेश का अपहरण करते हुए, जितने काल में पल्य खाली हो वह एक **बादर (व्यवहार) क्षेत्र पल्योपम** है तथा ठसाठस भरे हुए सूक्ष्म बालाग्र-खण्डों को छुए हुए एवं नहीं छुए हुए सभी आकाश प्रदेशों में से प्रतिसमय निकालने में जितना काल लगे वह सूक्ष्म क्षेत्रपल्योपम है। इसमें भी असंख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी परिमाण काल है, किन्तु इसका काल बादर क्षेत्र पल्योपम के काल से असंख्यात गुणा बड़ा है।

सागरोपम—सागरोपम भी तीन प्रकार का हैं—(1) अद्धा सागरोपम, (2) उद्धार सागरोपम, (3) क्षेत्र सागरोपम।

(1) अद्धा सागरोपम—बादर अद्धा पल्योपम के काल को 10 कोटा कोटी से गुणा करने पर बादर अद्धा सागरोपम और सूक्ष्म अद्धा पल्योपम के काल को 10 कोटाकोटि से गुणा करने पर एक **सूक्ष्म अद्धा सागरोपम** होता है। अद्धा सागरोपम के काल से अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी का काल मान किया जाता है। सूक्ष्म अद्धा सागरोपम परिमाण से चारों गति के जीवों की आयु, कर्म स्थिति, काय स्थिति का तथा भव स्थिति (वर्तमान भव की पर्याय) का अंकन किया जाता है।

(2) उद्धार सागरोपम—बादर उद्धार पल्योपम के काल को दस कोटा कोटी (10 करोड़ × 10 करोड़) से गुणा करने पर एक बादर उद्धार सागरोपम होता है और सूक्ष्म उद्धार पल्योपम के काल को दस कोटा कोटी से गुणा करने पर सूक्ष्म उद्धार सागरोपम का काल बनता है। इन दोनों पल्य का परिमाण सागर के समान

अति विस्तृत होने के कारण उसे '**सागरोपम**' कहा जाता है। सूक्ष्म उद्धार सागरोपम के समयों से भी ढाई गुणा अधिक तिर्यक लोक में द्वीप-समुद्रों की संख्या है।

(3) क्षेत्र सागरोपम—दस कोटा कोटी बादर क्षेत्र पल्योपम का एक बादर सागरोपम होता है। इसी प्रकार दस कोटा कोटी सूक्ष्मक्षेत्र पल्योपम का एक सूक्ष्मक्षेत्र सागरोपम होता है।

गणना संख्या—यह मुख्य रूप से तीन प्रकार की हैं—**(1) संख्यात, (2) असंख्यात, और (3) अनंत।**

(1) संख्यात का स्वरूप—गणना संख्या में वही संख्या ली जाती है जिसका वर्ग करने से वृद्धि हो। अत: संख्या का प्रारम्भ 'दो' से होता है 'एक' को गणना संख्या में नही गिना गया है, क्योंकि वर्ग करने पर भी उसकी वृद्धि नहीं होती। 'संख्यात' अंक के तीन प्रकार हैं—**(क) जघन्य संख्यात**—दो की संख्या, **(ख) मध्यम संख्यात**—तीन से प्रारम्भ होकर उत्कृष्ट संख्यात में एक कम, **(ग) उत्कृष्ट संख्यात**—इसका स्वरूप इस प्रकार है—

जम्बूद्वीप के समान विस्तार वाले चार पल्य क्रमश: **1. अनवस्थित, 2. शलाका, 3. प्रतिशलाका, 4. महाशलाका** की असत् कल्पना की जाये। जिनकी गहराई एक हजार योजन की और ऊँचाई साढ़े आठ योजन की हो। इसमें अनवस्थित पल्य की लम्बाई चौड़ाई एक सी नहीं होती, मूल अनवस्थित पल्य जम्बूद्वीप के बराबर 1 लाख योजन का है, उसके बाद आगे के सब अनवस्थित पल्य लम्बाई-चौड़ाई में अधिकाधिक है।

सर्वप्रथम मूलानवस्थित पल्य को सरसों से भर देना, फिर उसका एक-एक दाना जंबूद्वीप से लेकर आगे के प्रत्येक द्वीप-समुद्र में डालते जाना इस प्रकार डालते-डालते जिस द्वीप या समुद्र में मूल अनवस्थित पल्य खाली हो उस द्वीप या समुद्र की लम्बाई-चौड़ाई वाला नया अनवस्थित पल्य बनाया जाये, यह पहला उत्तरानवस्थित पल्य है। फिर इस पल्य को पूर्ण रूप से सरसों से भरना और इसमें से एक-एक सरसों को आगे के प्रत्येक द्वीप तथा समुद्र में डालते जाना, जहाँ यह पहला उत्तरानवस्थित पल्य खाली हो उस द्वीप समुद्र जितना लम्बा-चौड़ा पल्य फिर से बना लेना यह दूसरा उत्तरानवस्थित पल्य है।

इस प्रकार क्रमश: अनवस्थित पल्य बनाते जाना—यह पल्य कब तक बनाना ? इसके उत्तर में बताया गया है कि प्रत्येक अनवस्थित के खाली होने पर एक-एक सर्षप '**शलाका पल्य**' में डालते जाना। इससे यह ज्ञात होगा कि कितने अनवस्थित पल्य बने और खाली हुए। इस शलाका पल्य के भर जाने पर एक-एक सर्षप '**प्रतिशलाका**' में डाला जाता है। प्रतिशलाका के सर्षप की संख्या से ज्ञात होता है कि कितनी बार शलाका पल्य भरा और खाली हुआ। प्रतिशलाका पल्य के एक-एक बार भर जाने और खाली हो जाने पर एक-एक सर्षप '**महाशलाका पल्य**' में डाल दिया जाता है। जिससे कितनी बार प्रतिशलाका पल्य भरा गया व खाली किया गया है, यह ज्ञात हो जाता है। **(चित्र क्रमांक 107)**

इस क्रम से चारों पल्य सर्षपों से ठसाठस भरे जाते हैं। **जितने द्वीप समुद्रों में एक-एक सर्षप डालने से पहले तीन पल्य खाली हो गये हैं, उन सब द्वीप-समुद्र की संख्या और परिपूर्ण चार पल्यों के सर्षपों की संख्या—इन दोनों की संख्या मिलाने से जो संख्या हो उससे एक कम की संख्या को 'उत्कृष्ट संख्यात' कहते हैं।**

जघन्य परित्त असंख्यात का कल्पित माप

महाशलाका पल्य भरने को प्रतिशलाका भरना होगा और प्रतिशलाका को भरने के लिए अनवस्थित से शलाका और शलाका से प्रतिशलाका भरते रहने की पूर्व विधि का बार-बार अनुसरण करना होगा, अंत में महाशलाका पूर्ण होने पर प्रतिशलाका का, प्रतिशलाका पूर्ण होने पर शलाका और शलाका पूर्ण होने पर अनवस्थित पल्य पूर्ण होगा। वह अंतिम अनवस्थित पल्य सबसे अंत में डाले गये सर्षप के द्वीप-समुद्र जितना बड़ा होगा।

चित्र क्र. 107

(2) असंख्यात निरूपण—इसके भी तीन प्रकार हैं—(क) परीत असंख्यात, (ख) युक्त असंख्यात, (ग) असंख्यात-असंख्यात, ये तीनों असंख्यात पुनः जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट इस तरह तीन प्रकार के हैं—***(क) जघन्य परीत असंख्यात***—*उत्कृष्ट संख्यात में एक का प्रक्षेप करने से जघन्य परीत असंख्यात होता* है, **(ख) मध्यमपरीत असंख्यात**—उसके बाद जब तक उत्कृष्टपरीत असंख्यात न बने तब तक की सारी ही संख्या, **(ग) उत्कृष्ट परीत असंख्यात**—जघन्य परीत असंख्यात राशी को जघन्यपरीत असंख्यात राशी से गुणित करके उसमें से एक कम करने पर उत्कृष्ट परीत असंख्यात का परिमाण होता है।

(ख) युक्त असंख्यात—उत्कृष्ट परीत असंख्यात में एक जोड़ने से **जघन्य युक्त असंख्यात** संख्या बनती है। एक आवलिका में जो असंख्यात समय कहे हैं वे जघन्य युक्त असंख्यात के समझने चाहिए। **मध्यम युक्त असंख्यात**—जहाँ तक उत्कृष्ट युक्त असंख्यात संख्या प्राप्त न हो। **उत्कृष्ट युक्त असंख्यात**—जघन्य युक्त असंख्यात की राशि को उसी राशि से गुणा करने से प्राप्त संख्या में से एक कम करने पर उत्कृष्ट युक्त असंख्यात होता है।

(ग) असंख्यात-असंख्यात—उत्कृष्ट युक्त असंख्यात में एक प्रक्षेप करने से उपलब्ध राशि **जघन्य असंख्य-असंख्यात** है। पश्चात् उत्कृष्ट असख्यात-असंख्यात प्राप्त होने से पूर्व तक की संख्या **मध्यम असंख्यात-असंख्यात** है। जघन्य असंख्यात-असंख्यात को उसी राशि से गुणित करके जो संख्या आये उसमें एक कम करने पर प्राप्त राशि **उत्कृष्ट असंख्यात-असंख्यात** है।

(3) अनंत का निरूपण—अनंत तीन प्रकार के हैं—(क) परीतानंत, (ख) युक्तानंत, (ग) अनंत-अनंत।

(क) परितानंत—उत्कृष्ट असंख्यात-असंख्यात में एक (रूप) का प्रक्षेपण करना **जघन्य परीतानन्त,** उत्कृष्ट परीतानन्त के प्राप्त न होने के पूर्व की राशि **मध्यम परीतानन्त,** और जघन्य परीतानन्त को जघन्य परीतानन्त से परस्पर अभ्यास रूप गुणित करके उसमें से एक कम करना **उत्कृष्ट परीतानन्त** है।

(ख) युक्तानन्त—उत्कृष्ट परीतानन्त में एक राशि (अंक) प्रक्षिप्त करने से **जघन्य युक्तानन्त** होता है। अभव्य जीव जघन्य युक्तानन्त जितने होते हैं। उत्कृष्ट युक्तानन्त में एक अंक कम की संख्या **मध्यम युक्तानन्त** हैं। जघन्य युक्तानन्त राशि के साथ अभवसिद्धिक (अभव्य) राशि का परस्पर अभ्यास रूप गुणाकार करके प्राप्त संख्या में से एक न्यून करने पर प्राप्त राशि **उत्कृष्ट युक्तानन्त** की होती है अथवा एक न्यून जघन्य की राशि अनन्तानन्त उत्कृष्ट युक्तानन्त है।

(ग) अनन्त-अनन्त—जघन्य युक्तानन्त के साथ अभवसिद्धिक जीवों (जघन्य युक्तानन्त) को परस्पर 'अभ्यास' रूप से गुणित करने पर प्राप्त पूर्ण संख्या जघन्य अनन्त-अनन्त का परिमाण है अथवा उत्कृष्ट युक्तानन्त में एक प्रक्षेप करने से **जघन्य अनन्त-अनन्त** होता है। तत्पश्चात् (जघन्य अनन्त-अनन्त के बाद) सभी स्थान मध्यम अनन्त-अनन्त होते हैं। क्योंकि उत्कृष्ट अनन्त-अनन्त राशि में कोई परिमाण सम्भव नहीं है। किन्तु कुछ आचार्यों ने उत्कृष्ट अनन्त-अनन्त का तीन बार वर्ग करके उसमें निम्नलिखित छह अनन्त—

1. सिद्ध जीवों की राशि, 2. निगोद के जीवों की राशि, 3. वनस्पतिकायिक जीवों की राशि, 4. तीनों कालों के समयों की राशि, 5. सर्वपुद्गल द्रव्यों की राशि, तथा 6. लोकाकाश व अलोकाकाश के प्रदेशों की राशि इनको मिलाकर फिर सर्वराशि का तीन बार वर्ग करके उस राशि में केवलद्विक (केवल दर्शन, केवल ज्ञान) की अनन्त पर्यायों का प्रक्षेपण कर उत्कृष्ट अनन्तानन्त राशि का परिमाण भी वर्णित किया है। (त्रिलोकसार, गा. 49)

गणना संख्या का संक्षिप्त प्रारूप इस प्रकार हैं –

त्रिविध संख्यात

1.जघन्य	2. मध्यम	3. उत्कृष्ट

नवविध असंख्यात

1. जघन्य परीत-असंख्यात	4. जघन्य युक्त-असंख्यात	7. जघन्य असंख्यात-असंख्यात
2. मध्यम परीत-असंख्यात	5. मध्यम युक्त-असंख्यात	8. मध्यम असंख्यात-असंख्यात
3. उत्कृष्ट परीत-असंख्यात	6. उत्कृष्ट युक्त-असंख्याता	9. उत्कृष्ट असंख्यात-असंख्यात

अष्टविध अनन्त

1. जघन्य परीत-अनन्त	4. जघन्य युक्त-अनन्त	7. जघन्य अनन्त-अनन्त
2. मध्यम परीत-अनन्त	5. मध्यम युक्त-अनन्त	8. मध्यम अनन्त-अनन्त
3. उत्कृष्ट परीत-अनन्त	6. उत्कृष्ट युक्त-अनन्त	

पुद्गल परावर्तन

पुद्गल परावर्त्तन से तात्पर्य है—चौदह राजू लोकवर्ती सभी पुद्गलों का परावर्तन अर्थात् औदारिक आदि शरीर रूप से ग्रहण करके छोड़ना। अनादि काल से चतुर्गति में परिभ्रमण करते हुए जीव ने अनंत पुद्गल परावर्तन किये हैं। यह पुद्गल परावर्तन चार प्रकार का है—**द्रव्य**, **क्षेत्र**, **काल** और **भाव**। पुनः प्रत्येक के सूक्ष्म और बादर ऐसे दो-दो भेद हैं। प्रत्येक पुद्गल परावर्तन स्थूल दृष्टि से अनंत उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी प्रमाण होता है।

(1) द्रव्य पुद्गल परावर्तन—संसार रूपी भयंकर अटवी में परिभ्रमण करता हुआ कोई आत्मा जब चौदह राजू लोकवर्ती औदारिकादि सभी पुद्गलों को अनंत जनम-मरण करके शरीर रूप में क्रम से या अक्रम से ग्रहण करके छोड़ता है। उसमें जितना काल लगता है उसे **बादर द्रव्य पुद्गल परावर्त** कहते हैं। इस पुद्गल परावर्तन में एक समय में औदारिक रूप से जिन पुद्गलों को ग्रहण किया वे औदारिक की गिनती में वैक्रिय रूप से ग्रहण किये वो वैक्रिय में इसी प्रकार तैजस, भाषा, श्वासोच्छवास, मन और कार्मण—इन सातों के प्रतिसमय में जो पुद्गल ग्रहण करें, वे उसमें गिनना **बादर द्रव्य पुदगल परावर्तन** कहलाता है।

सूक्ष्म द्रव्य पुद्गल परावर्त्तन में औदारिकादि सातों वर्गणा के सभी पुद्गलों को क्रम से ग्रहण करके छोड़े। यदि एक वर्गणा के पुद्गल के मध्य दूसरी वर्गणा के पुद्गलों को फरसा है तो वें इस गिनती में नहीं

आयेंगे। अर्थात् औदारिक वर्गणा के पुद्गलों का ग्रहण पूर्ण होने के बाद ही वैक्रिय वर्गणा के पुद्गलों को ग्रहण करके छोड़े इसी प्रकार आगे भी क्रम से करे तब वह **सूक्ष्म पुद्गल परावर्तन** कहा जाता है।

(2) क्षेत्र पुद्गल परावर्त्तन—क्षेत्र अर्थात् लोकाकाश के प्रदेशों की श्रेणी। कोई जीव चौदह राजू लोक के सभी आकाश प्रदेशों को क्रम या उत्क्रम कैसे भी मृत्युकाल से स्पर्श करता है, उसे **बादर क्षेत्र पुद्गल परावर्त्तन** कहते हैं। यद्यपि मरण काल में जीव असंख्य आकाश प्रदेशों का स्पर्श करता है तथापि यहाँ उनमें से एक बार में एक ही आकाश प्रदेश को निश्चित करके गिनती में लिया जाता है, सभी को नहीं। **सूक्ष्म क्षेत्र पुद्गल परावर्त्तन** में जीव प्रथम जिस आकाश प्रदेश में मृत्यु प्राप्त हुआ जब दूसरी बार उसके पास वाले आकाश प्रदेश पर मृत्यु प्राप्त करता है, उसी को ग्रहण किया जाता है।

(3) काल परावर्त्तन—कोई भी एक जीव उत्सर्पिणी अथवा अवसर्पिणी के प्रथम समय में मृत्यु प्राप्त हुआ वही जीव दूसरी बार किसी ओर समय में मृत्यु प्राप्त हुआ और तीसरी बार किसी ओर समय। इस तरह क्रम या उत्क्रम से जब वह एक कालचक्र के सभी समय को मृत्यु द्वारा स्पर्श करता है उसे '**बादर काल पुद्गल परावर्त्तन**' कहते हैं। जब जीव उत्सर्पिणी या अवसर्पिणी के सभी समयों को क्रम से मृत्यु प्राप्त करके स्पर्श करता है, तो उसे **सूक्ष्मकाल पुद्गल परावर्त्तन** कहते हैं।

(4) भाव पुद्गल परावर्त्तन—संयम के असंख्यात स्थानकों से तीव्र, मंद आदि रसबंध के अध्यवसाय स्थान असंख्यात गुणा (असंख्यात लोकाकाश प्रदेश प्रमाण) हैं। इसमें प्रत्येक अध्यवसाय स्थानक में मृत्यु प्राप्त करके जब रसबंध के सभी अध्यवसायों को क्रम या उत्क्रम से स्पर्श करता है उसे **बादर भाव पुद्गल परावर्त्तन** कहते हैं तथा जीव प्रथम सर्व जघन्य अध्यवसाय स्थान में मृत्यु को प्राप्त होकर कालांतर में उससे अधिक कषायांश वाले दूसरे अध्यवसाय स्थान में मरता है, इस तरह कितने ही कालांतर के बाद उससे अधिक कषायांश वाले तीसरे अध्यवसाय में मरता हुआ रसबंध के सभी अध्यवसाय स्थानकों को क्रमशः मृत्यु द्वारा स्पर्श करता है, तब **सूक्ष्म भाव पुद्गल परावर्त्तन** होता है।

ये परावर्त्तन अनंत उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी प्रमाण समझने चाहिये। इसमें भी बादर पुद्गल परावर्त्तन की अपेक्षा सूक्ष्म पुद्गल परावर्त्तन की उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी अनंत गुणी अधिक है।

समयावलि य मुहुत्ता, दिवसमहोरत्त-पक्ख-मासा य।
संवच्छर-जुग-पलिया-सागर-ओसप्पि-परियट्टा॥

इस प्रकार काल माप में समय सबसे सूक्ष्म है, उससे आवालिका, मुहूर्त, दिवस, अहोरात्र, पक्ष, मास वर्ष, युग, पल्योपम, सागरोपम, उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी एवं पुद्गल परावर्त्तन एक-दूसरे की अपेक्षा से बड़े हैं। समय आवलिका में आवलिका आनप्राण में, आनप्राण स्तोक में, स्तोक लव में, लव मुहूर्त्त में, इसी प्रकार पल्योपम सागरोपम में, सागरोपम उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी में और कालचक्र पुद्गल परावर्तन में समाविष्ट हो जाते हैं। पुद्गल परावर्तन भी अतीत-अनागत में और अतीत-अनागत काल सर्व अद्धाकाल में समाविष्ट है। सर्व अद्धाकाल से बड़ा कोई काल नहीं। वह तो आत्मभाव में ही समवतरित होता है।

❑❑

अध्याय 6 : विज्ञानसम्मत विश्व

वर्तमान वैज्ञानिक जिस पृथ्वी का वर्णन करते हैं, उसी पृथ्वी का वर्णन जैन आगमों में स्थान-स्थान पर मिलता है। किन्तु दोनों की मान्यता में आकाश-पाताल जितना अंतर है। जैन भूगोल-खगोल और वर्तमान विज्ञान की मान्यताओं में इतना अधिक अंतर है कि उसके साथ किसी भी प्रकार से हम तालमेल बिठा सकें, यह शक्य नहीं है। अत: विज्ञानसम्मत विश्व को अलग अध्याय देकर हम जैन दृष्टिए मध्यलोक ग्रंथ के आधार पर यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं।

पृथ्वी पर जीव सृष्टि—वैज्ञानिक इस लोक को जैन दर्शन के समान शाश्वत नहीं मानते अपितु एक घटना का परिणाम मानते हैं। उनके अनुसार नारंगी के आकार की गोल यह सम्पूर्ण पृथ्वी; जिसका व्यास लगभग 8 हजार मील और परिधि लगभग 25 हजार मील है, वह आज से करोड़ों वर्ष पूर्व ज्वालायुक्त अग्नि का गोला थी। वह अग्नि धीरे-धीरे ठंडी होती गई। यद्यपि आज पृथ्वी का भूमिभाग ठंडा है, तथापि इसके भीतर अग्नि की तीव्र ज्वालाएँ है और इसी कारण पृथ्वी का भूतल भी थोड़ा उष्ण है। नीचे की जमीन खोदने पर उत्तरोत्तर अधिक उष्णता मिलती है। कभी-कभी यह ज्वाला तीव्र बनकर भूकंप या ज्वालामुखी के रूप में प्रगट होता है। इसी के कारण पर्वत, पृथ्वी, नदी, समुद्र आदि में फेरफार होता रहता है, अग्नि के ताप से पृथ्वी के द्रव्य यथायोग्य दबाव व ठंडक पाकर विभिन्न धातुओं व उपधातुओं के रूप में परिवर्तित होते रहते हैं। वे ही कोयला, लोहा, सोना, चाँदी, पेट्रोल या पानी के रूप में दिखाई देते हैं। जल और वायु ही सूर्य के ताप से बादल बनकर आकाश मंडल पर छा जाते हैं। यह वायुमंडल पृथ्वी के भूतल से कम-कम होता हुआ लगभग 400 मील तक फैला हुआ है। पृथ्वी सब जगह समतल नहीं है। हिमालय का गौरीशंकर (मांउट ऐवरेस्ट) पृथ्वी का सबसे चोटी का भाग माना जाता है, वह समुद्रतल से 29 हजार फुट अर्थात् लगभग साढ़े पाँच मील ऊँचा है। समुद्र तल 35,400 फुट अर्थात् लगभग 6 मील माना जाता है, इस प्रकार **पृथ्वीतल के उपरी और निम्नतल में साढ़े 11 मील का अंतर है**।

पृथ्वी ठंडी होने पर उस पर जमी परतें जो लगभग 70 मील की मानी जाती है, वे साढ़े तीन करोड़ वर्ष पहले जमीं थी। पृथ्वी पर मात्र ऊपर के 34 मील की परत पर ही जीवनी शक्ति है। शेष स्थान पर नहीं। इस आधार पर यह अनुमान किया जाता है कि पृथ्वी पर जीवों की उत्पत्ति 2 करोड़ वर्ष पूर्व और मानव विकास के चिह्न केवल एक करोड़ वर्ष पूर्व के हैं।

जीव विकास का क्रम—आधुनिक जीव-शास्त्र के अनुसार जीव के विकास का क्रम निम्न प्रकार से है—सर्वप्रथम स्थिर जल पर जीवकोश उत्पन्न हुए, वे पत्थर आदि जड़ पदार्थों से तीन बातों में विशेष थे—**(1) वे आहार लेते थे, (2) वे कही भी चलकर जा सकते थे, (3) वे अपने समान अन्य जीवकोश भी तैयार कर सकते थे।** कालक्रम से इनमें से कितने ही जीवकोश धरती में अपनी जड़ें जमाकर वनस्पति बन

गये, कितने ही पानी में ही विकास प्राप्त कर मछली बन गये, फिर पृथ्वी पर भी श्वासोछ्वास की क्रिया कर सकने वाले मेंढक आदि प्राणी अनुक्रम से पैदा होते गये, फिर पेट की ताकत से चलने वाले सांप, अजगर आदि पैदा हुए, इनका विकास दो प्रकार से हुआ—**(क) अंडे से उत्पन्न होने वाले पक्षी, (ख) स्तनधारी—मगरमच्छ, भेड़, बकरी, गाय भैंस घोड़ा आदि।** इन स्तनधारी प्राणियों में एक बंदर की जाति भी उत्पन्न हुई, इन बंदरों ने किसी समय आगे के दोनों पाँव ऊँचे कर पीछे के दो पैरों से चलना सीख लिया, बस, इन्हीं में से मनुष्य जाति का विकास होना प्रारंभ हुआ। जीवकोश से मानवविकास तक की प्रत्येक विकास यात्रा में लाखों करोड़ों वर्षों का अंतर माना जाता है।

इस विकास क्रम में समय-समय पर उस समय की स्थिति और वायुमण्डल के आधार पर विभिन्न प्रकार की जातियों वाले अन्य प्राणी भी उत्पन्न होकर विनाश को प्राप्त होते गये, यह बात इनके अवशेषों से ज्ञात होती है।

पृथ्वी के पाँच विभाग—पृथ्वी पर पानी का तिगुना विस्तार है अर्थात् 29 प्रतिशत स्थल जगह और 71 प्रतिशत पानी है। **पानी के विभाग से एशिया, यूरोप और अफ्रिका मिलकर एक खंड, उत्तर-दक्षिण अमेरिका द्वितीय खण्ड, आस्ट्रेलिया तीसरा खंड, उत्तरी ध्रुव चौथा और दक्षिणी ध्रुव यह पाँचवा इस प्रकार पृथ्वी पाँच खण्डों में विभक्त है।** इसके अतिरिक्त छोटे-बड़े अनेक द्वीप हैं। **(चित्र क्रमांक 108)**

वर्तमान पृथ्वी के पाँच विभाग

चित्र क्र. 108

पहले पृथ्वी के मुख्य खंड परस्पर जुड़े हुए थे। यूरोप-अफ्रिका की पश्चिम ओर की समुद्र रेखा, उत्तर-दक्षिण अमरीका की पूर्व तरफ की समुद्र रेखा बराबर में है तथा हिंद महासागर की द्वीप-समूहों की कड़ी एशिया और आस्ट्रेलिया के साथ जुड़ती दिखाई देती है। अभी नहर खोदकर अफ्रिका को एशिया-यूरोप के भूमिखंड से और उत्तर अमरीका को दक्षिण अमरीका से पृथक् किया गया है। इन भूमिखंडो का आकार, प्रमाण और स्थिति परस्पर भिन्न-भिन्न है।

भारतीय जन्तु विद्या समिति (जियोलोजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया) के पूर्व डॉयरेक्टर **डॉ. बी. एन. चौपड़ा** को वाराणासी के कुओं में आदिम युग के कीड़े का पता चला, जिसके पुरखे करीब दस करोड़ वर्ष पहले पृथ्वी पर वास करते थे। वह कीड़ा एक प्रकार के झींगे (कैंकड़े) की शक्ल का है। यह शीशे के समान पारदर्शी है। इसके 100 पैर हैं। यह कीड़ा आकार में बहुत छोटा है। भू-मण्डल-निर्माण के इतिहास में करीब 10 करोड़ वर्ष पूर्व (मेसोजोइक) काल में यह कीड़ा पृथ्वी पर पाया जाता था। अभी तक इस किस्म के कीड़े केवल आस्ट्रेलिया, टेसमिनिया, न्यूजीलैण्ड और दक्षिण अफ्रीका में देखे जाते हैं। इस कीड़े के भारत वर्ष में प्राप्त होने से भू-विज्ञानवेत्ताओं का यह अनुमान है कि अत्यन्त पुरातन काल में एक समय भारत, आस्ट्रेलिया, दक्षिण अफ्रिका, अमेरिका, टैसमिनिया, न्यूजीलैण्ड और एशिया का दक्षिण भाग एक साथ मिले हुए थे।

एशिया खंड में भारतवर्ष—भारतवर्ष एशिया खंड के दक्षिण-पूर्व (आग्नेय कोण) का भाग है। यह त्रिकोणाकार है। दक्षिण ओर का कोण लंका द्वीप के पास तक गया है, वहाँ से भारत की सीमा उत्तर की ओर पूर्व-पश्चिम दिशा में विस्तृत होती गई है और हिमालय पर्वत की श्रेणियों के ऊपर जाकर पूर्ण होती है। भारत का पूर्व-पश्चिम और उत्तर-दक्षिण विस्तार लगभग दो-दो हजार मील का है। इसके उत्तर में हिमालय पर्वत है, मध्य में विन्ध्य और सातपुड़ा की पर्वतमालाएँ हैं तथा दक्षिण के पूर्व व पश्चिम समुद्र किनारे पर पूर्व घाट ओर पश्चिम घाट की पर्वतश्रेणियाँ फैली हुई हैं।

भारतवर्ष की मुख्य नदियाँ—भारतवर्ष की मुख्य नदियों में हिमालय के मध्यभाग से निकलकर पूर्वी समुद्र में मिलती **ब्रह्मपुत्रा** और **गंगा नदी** है। इसकी सहायक नदियों में **यमुना, चंबल, बेतवा व सोन नदी** है। हिमालय से निकलकर पश्चिम के समुद्र में मिलने वाली **सिंधु नदी** और इसकी सहायक नदियाँ **झेलम, चिनाब, रावी, व्यास** और **सतलुज** है। गंगा और सिंधु की लम्बाई लगभग 1500 मील की है। भारत के मध्य विंध्य और सतपुड़ा के बीच पूर्व से पश्चिम तरफ समुद्र तक बहने वाली **नर्मदा नदी** है। सतपुड़ा के दक्षिण में **तापी नदी** है। दक्षिण भारत की **गोदावरी, कृष्णा, कावेरी** आदि नदियाँ पश्चिम से पूर्व की ओर प्रवाहित होती हैं। **(चित्र क्रमांक 109)**

भारत के उत्तर में सिंधु से गंगा के किनारे तक आर्यजाति तथा सतपुड़ा से दूर दक्षिण में द्रविड़ जाति तथा पहाड़ी प्रदेशों में गोंड, भील, कोल और किरात आदि आदिवासी जाति के लोग रहते हैं।

भारतवर्ष की मुख्य नदियाँ
इण्डस
जेहलम
चिनाब
रावी
व्यास
भाखड़ा बांध
लुणी
यमुना
गंगा
गागरा
गंडक
कोसी
गंगोत्री
चम्बल
बेतवा
ब्रह्मपुत्रा
पद्मा
हुगली
साबरमती
मही
भदर
शत्रुंजय
नर्मदा
ताप्ती
गोदावरी
मांजरा
भीमा
कृष्णा
गोदावरी
कृष्णा
तुंगभद्रा
कावेरी

चित्र क्र. 109

ज्योतिष मंडल व चन्द्रमा—आठ हजार मील विस्तार और पच्चीस हजार मील परिधि वाले भूमंडल के चारों ओर अनंत आकाश है, जिसमें सूर्य, चन्द्र और तारामंडल है। पृथ्वी के सर्वाधिक निकट चन्द्र है, जो पृथ्वी से लगभग ढाई हजार मील दूर है। यह पृथ्वी जैसा गोल और पृथ्वी से कई गुना छोटा एक भूमण्डल है, जो पृथ्वी के चारों ओर परिभ्रमण करता रहता है। इसी के कारण पृथ्वी पर शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष होता है। चन्द्रमा का दिखाई देने वाला प्रकाश स्वयं का नहीं है, वह सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होता है, जो अपने निश्चित् परिभ्रमण प्रमाण में घटता-बढ़ता दिखाई देता है। चन्द्र की पृथ्वी एकदम ठंडी है हमारी पृथ्वी के समान उसमें उष्णता नहीं है। उसके आसपास वायुमण्डल भी नहीं है तथा पानी भी नहीं है, इसी कारण वहाँ श्वासोछ्वास वाले प्राणी और वनस्पति भी नहीं है। वहाँ पर्वत और गुफाओं के सिवा अन्य कुछ नही है। चन्द्र पृथ्वी का ही एक टुकड़ा है जिसे पृथ्वी से अलग हुए पाँच-छह करोड़ वर्ष हुए, ऐसी भूगोल विशेषज्ञों की मान्यता है। **(चित्र क्रं. 110)**

चन्द्र का क्षेत्रफल—वैज्ञानिकों के अनुसार चन्द्रमा सम्बन्धी ज्ञातव्य इस प्रकार है—

- चन्द्र का व्यास 2160 मील अथवा 3546 किलोमीटर है, जो पृथ्वी का चौथा भाग है।
- चन्द्र की परिधि 10864 किलोमीटर है।
- चन्द्र का पृथ्वी से अंतर 381171 किलोमीटर है।

विज्ञान सम्मत सौरमंडल

चित्र क्र. 110

- चन्द्र का तापमान 137 सेंटीमीटर है।
- चन्द्र के मार्ग में तापमान 117 सेंटीमीटर है।
- चन्द्र की सतह पर गुरूत्वाकर्षण पृथ्वी का छठा अंश है।

पृथ्वी पर जिस वस्तु का 27 किला वजन है, वह चन्द्र पर 4-5 किलो होता है। चन्द्र का विस्तार पृथ्वी का सौंवा अंश है और उसकी लम्बाई पृथ्वी का पाँचवाँ भाग है।

चन्द्र की गति प्रतिघंटा 3669 किलोमीटर है। चन्द्र को पृथ्वी की परिक्रमा करने में 27 दिन 7 घंटा और 43 मिनिट लगता है, क्योंकि वह लगभग इसी गति से अपनी जगह पर घूमता है।

चन्द्र के पश्चात् अनुक्रम से शुक्र, बुध, मंगल, गुरू और शनि आदि ग्रह हैं, ये सभी हमारी पृथ्वी के समान ही भूमण्डल वाले हैं तथा सूर्य की परिक्रमा करते हैं और सूर्य के ही प्रकाश से प्रकाशित होते हैं। इन ग्रहों में कोई भी जीवधारी प्राणी नहीं रहता, क्योंकि वहाँ का वायुमण्डल जीवन के साधनों से विपरीत है।

सूर्यमण्डल—इन ग्रहों के पश्चात् पृथ्वी से लगभग साढ़े 9 करोड़ मील दूर सूर्यमंडल है, वह पृथ्वी से 15 लाख गुना बड़ा है, अर्थात् हमारी पृथ्वी जैसे लगभग 15 लाख भूमण्डल उसमें समा जाय उतना विशाल है। सूर्य का व्यास 8,60,000 मील है। यह महाकाय सूर्यमंडल आग का साक्षात् गोला है इसकी ज्वाला लाखों मील दूर तक दिखाई देती है। सूर्य की ज्वालाओं से करोड़ों मील विस्तार वाले सौरमंडल में प्रकाश एवं उष्णता का अनुभव होता है। सूर्य की भूमि पर 10,000 फेरन हीट गरमी है। 'जेम्स जीन्स' नामक वैज्ञानिक का मत है कि, पृथ्वी, बुध, गुरू आदि ग्रह और उपग्रह सूर्य से ही पृथक् हुए टुकड़े हैं, जो आज तक भी सूर्य के आकर्षण से आकर्षित हुए उसी के आस-पास घूम रहे हैं। अपनी पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा 365¼ दिन में तथा प्रत्येक चतुर्थ वर्ष में 366 दिन में पूर्ण करती है। इसी के आधार पर यहाँ, दिन महीना और वर्ष का व्यवहार होता है। हमारी पृथ्वी प्रति घंटा 60 मील की गति से सूर्य की परिक्रमा करती है, इस कारण दिन और रात होते हैं। पृथ्वी का जो गोलार्द्ध सूर्य के सामने होता है, वहाँ दिन और शेष गोलार्द्ध में रात्रि होती है।

तारे तथा प्रकाश वर्ष—यद्यपि आकाश में सूर्य जैसा विशाल ज्योति मंडल अन्य दृष्टिगोचर नहीं होता, किन्तु यहाँ से बहुत नन्हें दिखाई दे रहे तारों में भी कोई-कोई तारा सूर्य के बराबर और कई तारे तो सूर्य से भी अधिक विशाल हैं, वे सूर्य से सैंकड़ों, हजारों, लाखों गुना बड़े हैं। सूर्य से भी अधिक दूरी होने के कारण वे हमें छोटे-छोटे दिखाई देते हैं। **ज्येष्ठा नक्षत्र** इतना विशाल है कि उसमें 7 नील (सात के आगे 13 बिंदु) पृथ्वियाँ समा सकती हैं।

तारों का अंतर समझने के लिये हमारे संख्यावाचक शब्द काम नहीं करते, इसके लिये वैज्ञानिकों ने **'प्रकाश गति'** को माप बनाया है। प्रकाश की गति प्रति सैकंड 1 लाख 86 हजार मील तथा प्रत्येक मिनट में 1 करोड़ 11 लाख 60 हजार मील की है। इस प्रमाण से सूर्य के प्रकाश को हमारी पृथ्वी तक पहुँचने में साढ़े आठ मिनट लगते हैं, तारामंडल हमारी पृथ्वी से इतना दूर है कि इनका प्रकाश हमारे यहाँ तक पहुँचने में वर्षों लग जाते हैं। जितने वर्षों में उनका प्रकाश यहाँ पहुँचता है, उतने ही प्रकाश वर्ष दूर वह तारा कहा जाता है। **'संचूरी'** नाम का तारा जो पृथ्वी के सर्वाधिक निकट है, वह हमारे से साढ़े 4 प्रकाश वर्ष दूर है क्योंकि उसका प्रकाश यहाँ तक आने में इतना ही समय लगता है। इसी प्रकार कोई तारा 10, कोई 20 कोई 50 यहाँ तक कि कोई-कोई तारा तो हमारी धरती से 10 लाख प्रकाश वर्ष दूर है, ओर वे तारे सूर्य से भी लाखों गुना बड़े हैं।

तारों की संख्या असंख्य है। हमें हमारी दृष्टि से तो अधिक से अधिक छठा भाग अर्थात् 6-7 हजार तारें ही दिखाई पड़ते हैं, परंतु जितना शक्तिशाली दूरबीन हो उससे उतने ही अधिक तारों को देखा जा सकता है। वर्तमान में सबसे अधिक शक्तिशाली दूरबीन के द्वारा सम्पर्ण तारों का 20 वाँ भाग देखा गया है अर्थात् 2 अरब से अधिक तारे देखे गये हैं। प्रकाश की न्यूनाधिकता के आधार पर वैज्ञानिकों ने तारों को 20 वर्गों में विभाजित किया है–

वर्ग	संख्या
1.	19
2.	65
3.	200
4.	530
5.	1620

वर्ग	संख्या
6.	4850
7.	14300
8.	41000
9.	117000
10.	324000

वर्ग	संख्या
11.	87000
12.	2270000
13.	5700000
14.	13800000
15.	32000000

वर्ग	संख्या
16.	71000000
17.	15000000
18.	296000000
19.	560000000
20.	10000000000

इनमें पहले, दूसरे और तीसरे वर्ग के तारे अधिक चमकते हैं। आठवें वर्ग तक के तारों को गिनना या देखना असंभव है। किंतु इससे आगे के तारों को दूरबीन से देखा या गिना जा सकता है। जेम्स जीन्स के अनुसार संसार में इतने तारे हैं, जितने अपनी पृथ्वी के सम्पूर्ण समुद्र के किनारों की रेत। अर्थात् असंख्य तारे हैं। **सबसे नजदीक का तारा साढ़े चार प्रकाश वर्ष दूर है** तो असंख्य तारों की यहाँ से परस्पर की दूरी कितनी अधिक होगी यह अनुमान से ही जाना जा सकता है। ये सभी तारे अति वेग से गति करते हैं।

नीहारिका—बिखरे हुए गेंहू के समान अनेक तारों के समूह को '**नीहारिका**' कहते हैं। हम अपनी खुली आँखों से एक-दो नीहारिकाएँ देख सकते हैं, वे देखने में तारे जैसी ही होती हैं। किंतु इनका आकार इतना बड़ा है कि हम बीस करोड़ मील व्यास वाले गोलों की लम्बाई-चौड़ाई का अनुमान करें फिर भी उक्त नीहारिका के सामने यह अनुमान तुच्छ ही होगा और ये इतनी दूरी पर हैं कि 1 लाख 86 हजार मील प्रति सैंकिड चलने वाले प्रकाश को वहाँ से पृथ्वी तक पहुँचने में 10 लाख 30 वर्ष तक लग सकते हैं। (तीर्थंकर, भूगोल विशेषांक) दूरबीन से देखने पर कितनी ही नीहारिकाएँ गोल और कितनी ही शंख के चक्र जैसी है। करोड़ों तारों के झुमके से बना यह एक छोटा विश्व है। शोध करने पर सबसे कम नीहारिकाएँ है, तथापि दूरबीन से लगभग 20 लाख चक्राकार नीहारिकाएँ दिखाई दी है। **(चित्र क्रं. 111-112)**

आकाशगंगा—रात्रि में आकाश में एक श्वेत बालू का मार्ग या गंगा जैसी श्वेत चौड़ी धारा नैऋत्य से ईशान तरफ लम्बी (धारा) दिखाई देती है वही '**आकाशगंगा**' है। '**आकाशगंगा**' यह तारों का एक समूह है, इसमें सूर्य जैसे लगभग दो खरब तारे हैं। इसका आकार अंडे जैसा या हाथ घड़ी या दो जुड़े हुए तवे जैसा बीच में मोटा और किनारे पर पतला है। इसका व्यास 3 लाख प्रकाश वर्ष और मोटाई 10 हजार प्रकाश वर्ष है। **(चित्र क्रमांक 113)**

ग्रह—ज्योतिर्मंडल में ग्रहों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। कुछ ग्रहों की विज्ञान सम्मत जानकारी निम्न कोष्ठक में दी जा रही है–

चित्र क्र. 111

ईगल नेबुला—ईगल अर्थात बाज पक्षी की आकृति का यह एक तारा मंडल है। जिसमें 500 तारों का समूह है। विज्ञान के अनुसार यह Birth Place of Star है। अनेक तारे इसमें जन्म लेते हैं।

स्वान नेबुला

चित्र क्र. 112

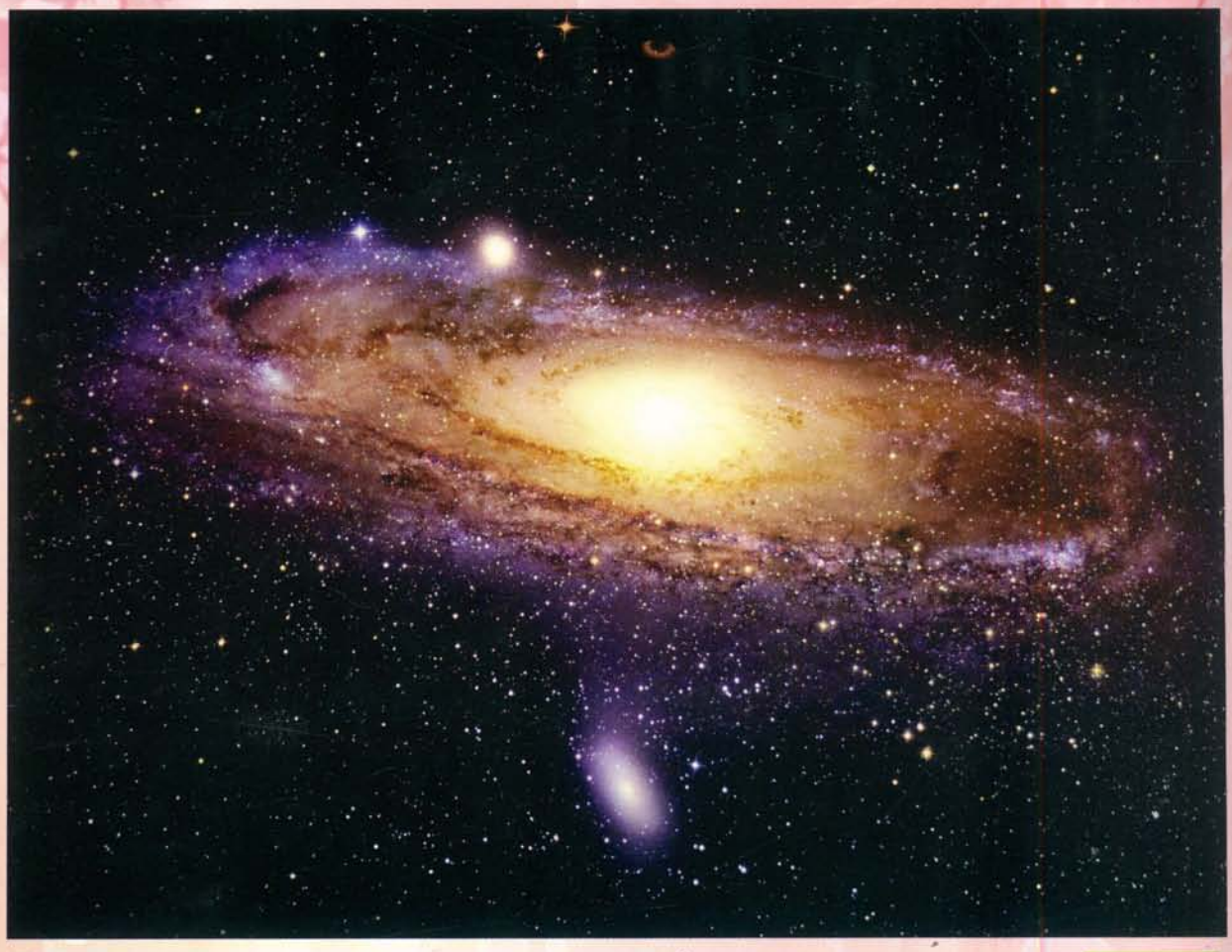

आकाश गंगा

चित्र क्र. 113

ग्रह	सूर्य से अंतर	व्यास	परिक्रमा	उपग्रह
बुध	3,60,00,000 मील	3030 मील	0.22 वर्ष	0
शुक्र	6,72,00,000 मील	7700 मील	0.62 वर्ष	0
पृथ्वी	9,29,00,000 मील	7918 मील	1.00 वर्ष	1
मंगल	14,15,00,000 मील	4230 मील	1.88 वर्ष	2
गुरू	48,32,00,000 मील	86500 मील	11.86 वर्ष	9
शनि	88,59,00,000 मील	73000 मील	29.46 वर्ष	9
अरूण	17,82,20,0000 मील	31900 मील	84.02 वर्ष	4
वरूण	2,79,16,00,000 मील	34800 मील	164.78 वर्ष	1
कुबेर	3,70,00,00,000 मील	3605 मील	250.00 वर्ष	अनिश्चित्

सूर्य तथा उसका ग्रह परिवार मिलकर '**सौरमंडल**' बनता है। जिसे हम '**ब्रह्माण्ड**' कहते हैं, इसमें अनेक सूर्यमंडल हैं। ऐसे सौरमंडलों की संख्या लगभग10 करोड़ है। हमारा सौरमंडल '**ऐरावत पथ**' (Milki Way) नामक ब्रह्माण्ड में है। ऐरावत पथ के चन्द्र रूपी मार्ग के लगभग 2/3 भाग पर एक पीला बिंदु है वही बिंदु सूर्य है, जो अपने ग्रहों को साथ लेकर ऐरावत पथ पर बराबर घूमता है। पूर्व ऐरावत पथ में लगभग 500 करोड़ तारे हैं। इनमें से बहुत से तारे तो दिन में निकलते हैं। अत: सूर्य के प्रकाश में हमें दिखते ही नहीं। तारों के अलावा ऐरावत पथ में गैस और धूल भी अति प्रमाण में है। रात में बहुत से तारों का प्रकाश मिलकर इस गैस और धूल को प्रकाशित करते हैं।

इस प्रकार सम्पूर्ण विश्व का प्रमाण असंख्य है और आकाश का तो कहीं अंत ही नहीं दिखता। तारों के आकाश में जिस रीति से विभाग है तथा आकाशगंगा में जो तारों का पुंज दिखाई देता है, उससे अनुमान लगता है कि तारामंडल सहित सम्पूर्ण लोक का आकार लेन्स (Lens) जैसा है अर्थात् ऊपर-नीचे का भाग उठा हुआ और मध्य का भाग विस्तृत व गोल है। उसकी परिधि पर आकाशगंगा तथा उठे हुए भाग के मध्य सूर्यमंडल है।

उक्त सारा वर्णन वैज्ञानिक मान्यता के अनुसार यहाँ वर्णित किया है यद्यपि वैज्ञानिक सत्य की खोज में लगनशील है, प्रकृति के रहस्यों को उद्घाटित करने में जुटे हैं, तथापि वे यह दावा नहीं करते कि उन्होंने पूर्ण रूप से सत्य का पता लगा लिया है, वे अन्तिम बिंदु तक जा पहुँचे है, जैसा कि महान् वैज्ञानिक न्यूटन का कथन है—"अभी हम तो किनारे के कंकड़-पत्थर ही बटोर रहे हैं, ज्ञान का महासागर तो हम से अभी बहुत दूर है।" वस्तुत: विज्ञान शोध और प्रयोग के स्तर पर है, बहुत संभव है कि जब विज्ञान की शोध पूर्ण हो जाये तो वे भी महावीर की भाषा बोलने लगे।

❑❑

जैन गणितानुयोग में आगमों के सन्दर्भ सूत्र

क्रम.	विषय	आगम सूत्र के नाम
1.	लोक अधिकार	— भगवती सूत्र, शतक 11, उद्देशक 3 — भगवती सूत्र, शतक 13, उद्देशक 4
2.	दिशाओं का वर्णन	— भगवती सूत्र, शतक 10
3.	जम्बूद्वीप अधिकार	— जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, वक्षस्कार 1
4.	भरत क्षेत्र अधिकार	— जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, वक्षस्कार 1
5.	कालचक्र वर्णन	— जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, वक्षस्कार 2
6.	चक्रवर्ती की विजय यात्रा	— जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, वक्षस्कार 3
7.	जम्बूद्वीप के अवशेष, क्षेत्र, पर्वत, नदियाँ	— जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, वक्षस्कार 4
8.	मेरु पर्वत, चार वन	
9.	तीर्थंकर का देवों द्वारा जन्माभिषेक	— जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, वक्षस्कार 5
10.	नरक पृथ्वी और नरकावास	— जीवाजीवाभिगम, प्रतिपत्ति 3, उद्देशक 1
11.	नैरयिकों का वर्णन	— जीवाजीवाभिगम, प्रतिपत्ति 3, उद्देशक 2
12.	अन्तर्द्वीपों का वर्णन	— जीवाजीवाभिगम, प्रतिपत्ति 3, उद्देशक 4
13.	जम्बूद्वीप की जगती द्वार	— जीवाजीवाभिगम, प्रतिपत्ति 3, उद्देशक 4
14.	लवण समुद्र, पाताल कलश, जलशिखा	— जीवाजीवाभिगम, प्रतिपत्ति 3, उद्देशक 4
15.	अढ़ाई द्वीप और बाहर के द्वीप-समुद्र	— जीवाजीवाभिगम, प्रतिपत्ति 3, उद्देशक 4
16.	देवों की परिषद्, संख्या, स्थिति	— जीवाजीवाभिगम, प्रतिपत्ति 3, उद्देशक 4
17.	वैमानिक देवलोक पृथ्वीपिंड, ऊँचाई आधार	— जीवाजीवाभिगम, प्रतिपत्ति 3, उद्देशक 4
18.	भवनपति देवों के भवनों की संख्या, ऋद्धि आदि	— जीवाजीवाभिगम, प्रतिपत्ति 3, उद्देशक 4
19.	व्यन्तर देवों के नगर	— जीवाजीवाभिगम, प्रतिपत्ति 3, उद्देशक 4
20.	ज्योतिष देवों का अधिकार	— जीवाजीवाभिगम, प्रतिपत्ति 3, उद्देशक 4
21.	भवनपतियों के आवास, उत्पत्ति	— भगवती सूत्र, शतक 13
22.	व्यन्तरों के आवास, उत्पत्ति	— भगवती सूत्र, शतक 13
23.	ज्योतिषि देवों के आवास, उत्पत्ति	— भगवती सूत्र, शतक 13
24.	वैमानिक देवों के आवास, उत्पत्ति	— भगवती सूत्र, शतक 13
25.	ज्योतिष मंडल अधिकार	— सूर्य-चन्द्र प्रज्ञप्ति, 1 से 20 प्राभृत, जीवाजीवाभिगम प्रतिपत्ति 3, उद्देशक 4, जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, सप्तम वक्षस्कार
26.	दिन व रात्रि का कालमान	— भगवती सूत्र, शतक 5, उद्देशक 1
27.	तमस्काय	— भगवती सूत्र, शतक 6, उद्देशक 5
28.	आठ कृष्णराजियाँ	— भगवती सूत्र, शतक 6, उद्देशक 5
29.	लोकान्तिक देव	— भगवती सूत्र, शतक 6, उद्देशक 5
30.	सिद्धशिला एवं सिद्धात्माएँ	— औपपातिक सूत्र
31.	क्षेत्रमान	— अनुयोगद्वार, उपक्रम 3
32.	कालमान	— अनुयोगद्वार, उपक्रम 3

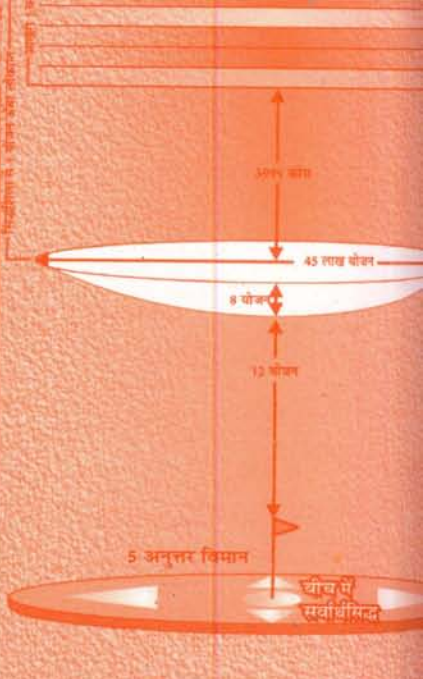

कर्क व मकर संक्रांति में सूर्य

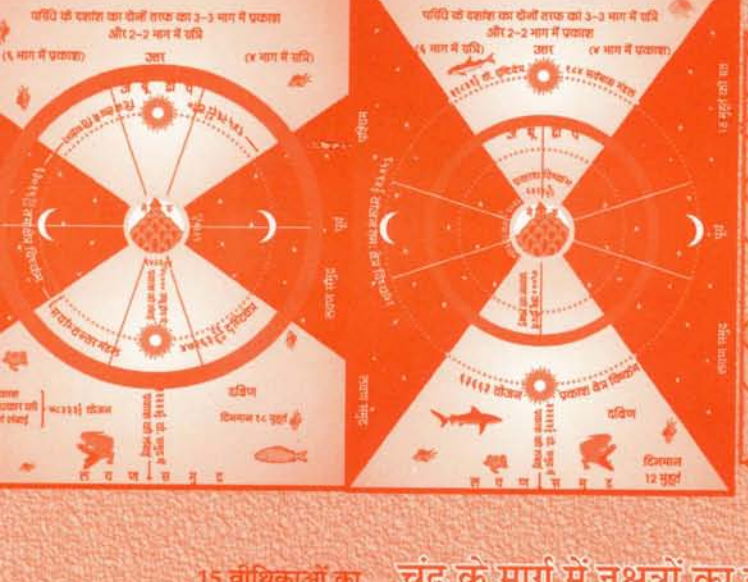

वैमानिक के प्रतरों का दूरवर्ती दर्शन

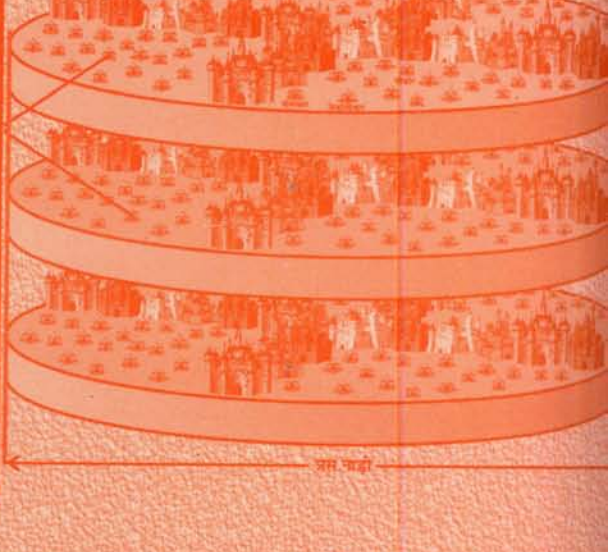

चंद्र के मार्ग में नक्षत्रों का संचार

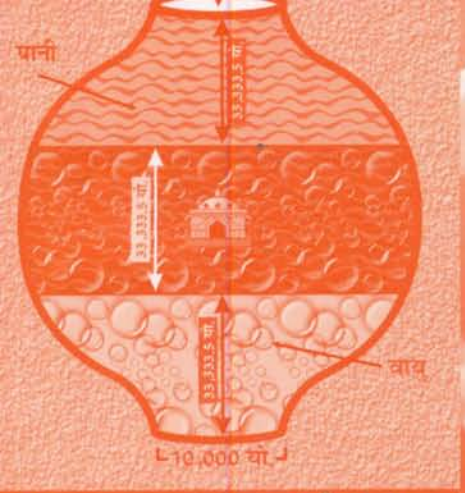

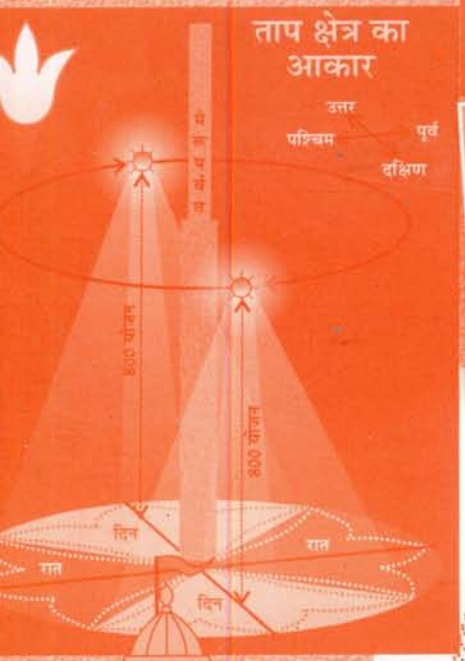

तमस्काय का बाह्य दर्शन

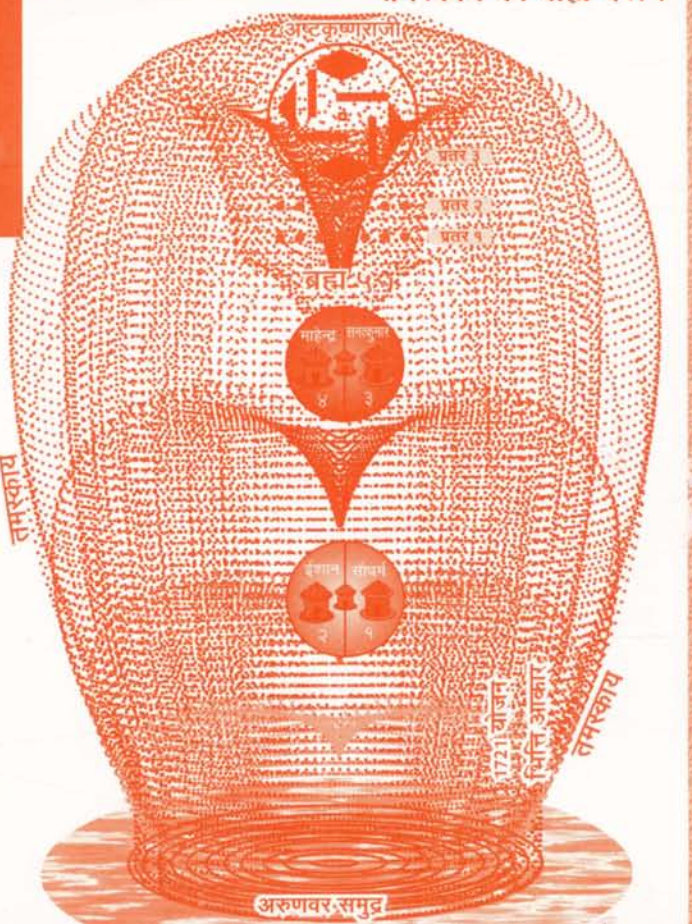

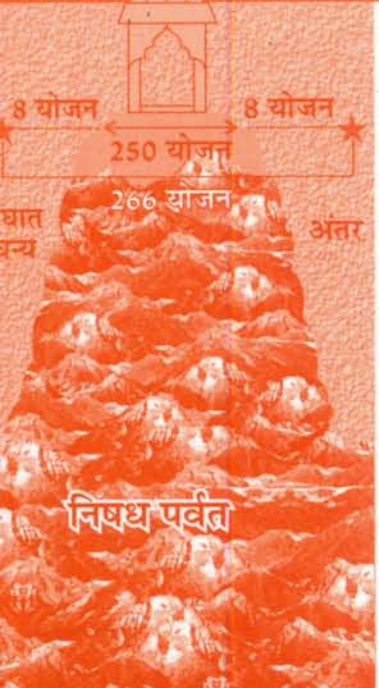

साध्वी डॉ. विजयश्री 'आर्या'

कृतिकार का परिचय

जन्म : 10 फरवरी 1952, उदयपुर (राज.)

माता-पिता : श्रीमती रतनदेवीजी आनन्दीलालजी मेहता

दीक्षा : विजयादशमी, 12 अक्टूबर 1967, कोल्हापुर रोड, दिल्ली

गुरुवर्या : पंजाब प्रवर्तिनी महासती श्री केसरदेवीजी म. सा. की वरिष्ठ शिष्या अध्यात्मयोगिनी महाश्रमणी श्री कौशल्यादेवीजी म. सा.

दीक्षा प्रदाता : शेरे पंजाब उपाध्याय श्री प्रेमचन्दजी म. सा.

अध्ययन : बत्तीस आगम, जैन सिद्धान्ताचार्य, M.A., Ph.D.

शोधग्रंथ : जैन श्रमणियों का वृहद् इतिहास

शिष्या-प्रशिष्याएँ : सात

विशेषता : धार्मिक एवं लौकिक शिक्षा में 13 बार सर्वप्रथम रूप से पुरस्कृत, छह स्वर्ण-पदक विजेता, दस हजार साध्वियों के इतिहास की एकमात्र लेखिका कवियत्री, जीवन-चरित्र से लेकर शोध ग्रंथ तक अनेक ग्रंथों का सृजन व संपादन, स्वाध्याय, ध्यान, जप-तप, शिविर, ग्रंथालय, विभिन्न मंडल, उपकरण भंडार आदि द्वारा जिनशासन की प्रभावना।

अद्यतन 48 वर्षावासों की सूची : दिल्ली 10, उदयपुर 2, मुम्बई 4, सिकंदराबाद 2, हैदराबाद 3, बैंगलोर 3, मैसूर 2, चेन्नई 2, पूना, जालना, आलंदी, घोड़नदी, धूलिया, नासिक (महा.), दोड्डबालापुर (कर्नाटक), विजयवाड़ा (आन्ध्र प्रदेश), भावनगर (गुजरात), जयपुर (राज.), जम्मू, फरीदकोट, अमृतसर, समाना (पंजाब), साहरनपुर, साहिबाबाद, आगरा (उत्तर प्रदेश), ग्वालियर, इंदौर (मध्य प्रदेश), अमरावती (विदर्भ)।

Designed by **Sanjay Surana**, Shree Diwakar Prakashan, Agra